The PARIŚIṢṬAS OF THE ATHARVAVEDA

Edited by

GEORGE MELVILLE BOLLING, Ph. D.

And

JULIUS VON NEGELEIN, Ph.D.

Edited with Hindi Notes

by

RAM KUMAR RAI

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
VARANASI (INDIA)

(Atharvaveda-pariśiṣṭa)

अथर्ववेद-परिशिष्ट / सम्पादक जार्ज मेलवील बोलिंग, तथा जुलियस फॉन नेजलीन ; हिन्दी टीका सहित सम्पादन रामकुमार राय. — 1. संस्करण. — वाराणसी : चौखम्भा ओरियन्टालिया, 1976.

xv, 391 p. ; 23 cm. — (चौखम्बा-प्राच्यविद्या-ग्रन्थमाला ; संख्या 1)

Added t.p.: The Pariśiṣtas of the Atharvaveda.
Series romanized: Caukhambhā-prācyavidyā-granthamālā.
In Sanskrit; notes in Hindi; prefatory matter in English.
Comprises a transcription in Devanagari of the original romanized critical edition published by Otto Harrassowitz, Leipzig.

(Continued on next card)

चौखम्भा-प्राच्यविद्या-ग्रन्थमाला

संख्या १

अथर्ववेद-परिशिष्ट

सम्पादक

जार्ज मेलवील बोलिंग, पीएच० डी०

प्राध्यापक ग्रीक भाषा, संयुक्त प्राध्यापक तुलनात्मक भाषाविज्ञान
और संस्कृत, कैथोलिक युनिवर्सिटी, अमेरिका,

तथा

जुलियस फॉन नेजलीन, पीएच० डी०

मानद प्राध्यापक, कौनींग्सबर्ग युनिवर्सिटी

हिन्दी टीका सहित सम्पादन

रामकुमार राय

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

वाराणसी (भारत)

प्रकाशक—
चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३०२२ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

प्रथम संस्करण १९७६
मूल्य रु० ७५–००

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी

CHAUKHAMBHA PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

NO. 1

THE

PARIŚIṢṬAS OF THE ATHARVAVEDA

Edited by

GEORGE MELVILLE BOLLING, Ph. D.

Professor of Greek and Associate Professor of Comparative Poilology and Sanskrit in the Catholic University of America

And

JULIUS VON NEGELEIN, Ph. D.

Privatdocent in the University of Koenigsberg

Edited with Hindi Notes

by

RAM KUMAR RAI

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

VARANASI (INDIA)

Publishers :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)

Telephones : 62695, 63022.   Telegram : Gokulotsva

First Edition : 1976

Price Rs. 75-00

Printers—Vidya Vilas Press, Gopal Mandir Lane, Varanasi.

संस्तव

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि चौखम्भा ओरियन्टालिया (वाराणसी) द्वारा अथर्ववेद-परिशिष्ट का पुनः प्रकाशन हो रहा है। इस प्रकाशन का महत्त्व इसलिए और अधिक हो गया है कि यह संस्करण नागरी लिपि में प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। इससे पूर्व प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन १९०९ ई० में हुआ था। परन्तु वह संस्करण रोमन-लिपि में था। वह भी बहुत दिनों से दुर्लभ हो गया है। उक्त संस्करण का संपादन-संशोधन किया था दो प्रसिद्ध प्राच्यविद्या एवं भाषाशास्त्र के विशिष्ट विद्वानों ने।

जार्ज मेलवील बोलिङ्ग तथा जुलियस फान नेजलीन नामक दो पाश्चात्य विद्वानों ने जिस श्रम, अध्यवसाय एवं वैदुष्य के साथ संपादन किया था वह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य था।

पहले अलग-अलग कार्य करते हुए दोनों विद्वानों ने आगे चलकर संमिलित प्रयास से इस कार्य को सम्पन्न किया। श्रीवेबर महोदय एवं श्री मॉरिस ब्लूमफील्ड ने इस ग्रन्थ पर कुछ कार्य किया था। उन्हीं दोनों विद्वानों ने अलग-अलग इस विशिष्ट ग्रन्थ के संपादन की संपादकों को प्रेरणा दी थी। १८९८ ई० के आस पास वेबर ने फान नेजलीन को तथा ब्लूमफील्ड ने बोलिंग को अथर्ववेद-परिशिष्ट के संपादन की दिशा में संप्रेरित किया। उन दोनों पण्डितों ने कार्यों के विवरण का-इस ग्रन्थ के अपने **प्राक्कथन** में स्वयं उल्लेख किया है। उसे देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कितने श्रम, मनोयोग और अध्यवसाय के साथ उक्त संपादन-कार्य संपन्न हुआ था। उस समय तक अथर्ववेद-परिशिष्ट की जितनी सामग्री मिल सकी थी— उन सब के आधार पर श्रमसाध्य निष्ठा द्वारा दोनों विद्वानों ने **परिशिष्ट** का संपादन किया था। जिस-जिस व्यक्ति या संस्था द्वारा सहायता मिल सकती सबको प्राप्त करने की एवं उसके उचित उपयोग की दिशा में उन दो विद्वानों ने कुछ भी उठा नहीं रखा था।

आशा यह थी कि यह ग्रन्थ और भी अधिक पूर्ण एवं सुसंपादित रूप में हमारे सामने प्रकाशित हो सकेगा। प्रथम संपादन के बाद अन्वेषित सामग्री का सदुपयोग करते हुए भारत में इसका पूर्ण संस्करण छपकर सामने आएगा। पर स्वातंत्र्योत्तर भारत में ऐसा कुछ अब तक न हो पाया। अतः चौखम्भा ओरियन्टालिया एवं नागरी लिपि के रूपान्तरकारी संपादक श्री रामकुमार राय धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस चिर प्रतीक्षित कार्य को संपन्न किया।

प्रत्येक परिशिष्ट के आरम्भ में हिन्दी में सम्बद्ध परिशिष्ट का सार संक्षिप्त रूप से देने के कारण एवं अन्त में उद्धरण-सूची और शब्दानुक्रमणिका के कारण ग्रन्थ का महत्त्व बढ़ गया है।

यदि हिन्दी अनुवाद के साथ यह 'परिशिष्ट' प्रकाशित हुआ होता तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक हुई होती। फिर भी जिस रूप में यह ग्रन्थ सामने आया वह कम महत्त्व का नहीं है। इस ग्रन्थ में नित्य, नैमित्तिक तथा विभिन्न अवसरों, पर्वों परिस्थितियों आदि से संबद्ध कर्मों का—आख्यानों, संवादों आदि द्वारा महत्त्वपूर्ण वैदिक-धार्मिक विधिविधानों सहित वर्णन मिलता है। प्रस्तुत अपूर्ण से भासमान इस कोशात्मक परिशिष्ट-ग्रन्थ के बहत्तर (७२) परिशिष्टों में न जाने कितने शास्त्रीय विधान, विचार और उपाय आदि वर्णित हैं।

अतः दुष्प्राप्य, दुर्लभ, चिरप्रतीक्षित एवं महत्त्वपूर्ण इस 'अथर्ववेदपरिशिष्ट' के प्रस्तुत संस्करण का प्राच्यविद्या के अनुशीलनकर्त्ता पण्डितों में निश्चय ही समादर होगा। इस सत्प्रयास का हम स्वागत करते हैं। हमें विश्वास है कि इसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होगा और तब हिन्दी अनुवाद-सहित यह हमारे सामने आएगा। इसी आशा के साथ प्रकाशक तथा 'हिन्दी नोट्स' के साथ वर्त्तमान ग्रन्थ प्रस्तुतकर्त्ता संपादक को बधाई देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

करुणापति त्रिपाठी
वाइस चांसलर,
संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

बुद्धपूर्णिमा
२०३३ वि०

PREFACE

The Publication of Atharvaveda Pariśiṣṭas in Devanāgarī script was a long felt need. The work, which was one of the last Vedic Texts to reach publication, could be published in the Roman script only as long back as the year 1909, by two eminent Sanskrit Philologists—Dr. Bolling and Dr. Negelein. That edition, too, soon became so rare that most of the Indian and foreign Libraries today do not possess a single copy of it. Moreover, its Roman script kept it inaccessible to the orthodox Indian Vedic scholars. Therefore, I took up the task of transcribing it into Devanāgarī on the suggestion of the leading Publishers Messers Chaukhambha Orientalia. In this task, as far as possible, I have tried to remain faithful to the Roman script edition because I could not secure any manuscript of the work. My effort all along had been to make the rendering as correct as possible. However due to my limited knowledge of the subject as well as my personal limitations some mistakes cannot be ruled out. For such errors I can only apologise and request the scholars to correct me so that any future edition of the work may be made free of such errors.

Besides rendering the Text into Devanāgarī, I also intended to append a Hindi translation but as this would have delayed the publication by an year or two, and my Publishers being eagre to bring it out as soon as possible I had to postpone the translation for future.

The importance of the Pariśiṣṭas can hardly be disputed. They contain elaborate ritualistic and procedural details of numerous important Vedic (Atharvan) Rites, and without a knowledge of these Pariśiṣṭas the method and procedure of many such Rites may remain obscure. Therefore their publication might throw new light on the procedural aspects of many hitherto seemingly mysterious Rituals.

In the end I would be failing in my duty if I do not thank my publishers for undertaking the publication of such a work which inspite of its unique importance, may not be commercially much rewarding. They therefore deserve the highest credit for bringing out this work into Devanāgarī script for the first time in its history.

Ram Kumar Rai

PREFACE

The work that has previously been done upon the Pariśiṣṭas of the Atharvaveda centres around the names of our respective teachers Abrecht Weber and Maurice Bloomfield. The impulse to the present edition also proceeded, independently and about the same time, from each of these scholars; for in the year 1898 the task of editing these texts was suggested by Weber to von Negelein, and by Bloomfield to Bolling. The latter turned immediately to the manuscripts, visiting for that purpose in the summer of 1899 Berlin and Munich. The former first devoted himself to certain preliminary studies, as described in his lecture, *Zur Religionsgeschichte Indiens : Die Atharvaparisista*, delivered before the International Congress of Orientalists in Copenhagen printed *in the Orientalische Literatur-Zeitung, Oktober 1918, sp. ff.*, while he postponed until 1903 the the work upon the manuscripts. In the spring of 1905 through the mediation of Professor Lanman we learned of each other's work, and decided in the interest of science to unite our forces. Since that time we have collaborated to the fullest extent that the unfortunately great separation of our residences permits. Except for the statement to be made with regard to the collation of the manuscripts, we have made no efforts to distinguish the part of the work that each has done. Every part of the text has passed repeatedly through the hands of each of us, and we are jointly responsible for the result.

We feel no hesitation in declaring that a perfect text of the *Pariśiṣṭas* is at present unattainable. In explanation of this avowal, we may be permitted to call attention to the nature of the difficulties which have frustrated previous projects for editing these texts, and so have caused the Pariśiṣṭas *of the Atharvaveda* to be one of the last Vedic Texts to reach publication, in spite of the fact that the desirability of publishing them has long been recognized. In part these difficulties lie in the nature of the work, which is a collection of tracts of various dates, dealing in various styles with a great variety of subjects. To great extent the separate texts are themselves compilations, made with varying degrees of skill from various sources. Successive processes of expansion have been brought to bear both upon the collection as a whole, and also upon some of its parts. The result is an intricate series of problems of higher criticism which cannot be easily distinguished from those of the lower criticism. The purpose of our text is to present merely the last stages of this process of development, and even for this purpose the available material is not entirely adequate. Our manuscripts suffice for the reconstruction of their archetype, a manuscript written about five hundred years ago. But, although it is about as good as the manuscripts used by Hemadri and Sāyaṇa, this archetype itself was evidently grossly corrupt. Our effort has been to present this text purged of its errors, as far as this could be accomplished by comparison of quotations from our texts, and an exceedingly conservative process of emendation. and to present with it the complete evidence upon which this reconstruction is based.

Under these limitations the advisability of the publications may seem to some doubtful, but the following reasons have led us to take the opposite view. Large portions of the text are either entirely satisfactory, or at least are in such a condition that their general meaning can be determined. The facts that can be ascertained from them seem to us to have an important bearing upon many phases of Hindu philology, in a way that is succinctly set forth in Negelein's lecture; and our judgment in this matter is confirmed by that of eminent scholars. Secondly, experience has shown that it is extremely unlikely that there exists any manuscript which is not derived from our archetype; and, as long as this is the case, such a text as we now present must remain the foundation for all further attempts at the interpretation of these texts. This task it is our intention to prosecute, and we hope ultimately to publish a translation of the *Pariśiṣṭas* together with an exegetical commentary. Before doing this we plan the publication of a volume dealing with the many grammatical and lexicographical peculiarities which texts present, and containing also a number of unpublished texts that throw light upon the subject matter of the *Pariśiṣṭas*. The preparation of this volume is already well advanced, and we have every reason to hope that its appearance will not be long delayed.

It remains for us to express our gratitude for the assistance which has been rendered to us in various ways by many persons. Of the scholars to whose suggestion this edition is due, Professor Weber was taken from us shortly after the work was begun, but

the help that he has given did not end with his life. He had promised the loan of his emendated copy of the Chambers Codex, but had stipulated that it should be used only after the constitution of our text. The purchase of his books by the Library of Congress in Washington rendered it possible for us to use this copy under the conditions that he wished. The crediting of the few emendations which we had not either adopted from other manuscripts or independently made, is the only form of acknowledgement in detail that the plan of our publication would permit. This, however, is inadequate to express fully the help which his copy has given us, or to show the way in which Weber dealt with the problems of a difficult text known only from a single corrupt manuscript. His book contains the material for an instructive article illustrative of the method of textual criticism, and for an interesting contribution to the biography of a great scholar, and we hope that it may be worked up from these points of view. On the other hand, we have enjoyed throughout our work the inestimable advantages derived from the constant advice, the kind sympathy and encouragement of Professor Bloomfield. Professor Pischel, also, was deeply interested in the progress of the work, and up to the moment of his departure for India, exerted himself in many ways for the furtherance of our plans. The grief which all students of Hindu philology feel on account of the sad termination of that jonrney, is intensified for us, because it has deprived us of the opportunity to express to him publically in his life-time our appreciation of the many and deep obligations under which he has placed us.

For the use of the various manuscripts we are indebted to the generosity of their owners. Besides, Professor Bloomfield has increased our already great obligations to him by obtaining for us from the Bombay Government the continued use of A and B and by placing at our disposal his manuscript of Kesava's commentary. Mr. F. W. Thomas, as librarian of the East India Office, has also most kindly devoted a great deel of time to aid us in procuring from India numerous manuscripts that we desired. The late Dr. A. W. Straton also generously found time, in the midst of his manifold duties as Registrar of the Punjab University and Principal of the Oriental College of Lahore, to assist us by having copies of manuscripts made, and by enquiring in Kashmir for other manuscripts. We wish to express to all these gentlemen our appreciation of their services, and also acknowledge gratefully the courtesy of the authorities of the various libraries in which we have worked, especially of Dr. Stern in Berlin, of Dr. Boll in Munich, and Mr. Putnam in Washington.

To the Rt. Rev. Dennis J. O'Connell, Titular Bishop of Sebaste, who was Rector of the Catholic University of America during the time of the work, our especial graitude is due for the kind interest which he has always felt in it, and which he finally manifested by contributing generously the sum of five hundred dollars towards defraying the costs of publication.

We wish also to thank most heartily Professor Sieg for many valuable suggestions and for his great kindness in consenting to read the proof of the entire work.

Finally we would gratefully acknowledge the ready spirit of cooperation in which the firm of Waisenhaus has met our wishes, and the exceptional promptness and accuracy with whieh they have performed their portion of the work.

George Melville Bolling
Julius von Negelein

विषय-सूची

१. नक्षत्रकल्पः

१. नक्षत्रों का नाम ।

२. प्रत्येक नक्षत्र में तारों की संख्या ।

३. नक्षत्रों से सम्बद्ध ऋषिकुल

४. नक्षत्रों के शासक

५. नक्षत्रों का विस्तार

६–८. प्रत्येक नक्षत्र द्वारा प्रभावित वस्तुयें (वर्गीकरण अंशतः भौगोलिक है)।

९–१०. प्रत्येक नक्षत्र के आधीन राजा के कार्य ।

११. अवे. १९.७, १-५; ये निम्नलिखित कृत्यों के मंत्र हैं ।

१२–१७. नक्षत्रों से सम्पन्नता प्राप्त करने के कृत्य तथा उनसे रहस्यात्मक रूप से सम्बद्ध वस्तुयें ।

१८–२२. दिन के किसी भाग पर नक्षत्र के प्रभुत्व के अनुसार अन्य मन्त्रों से सम्पन्न किये जाने वाले उपरोक्त प्रकार के कृत्य ।

२३–२५. पुण्य प्राप्त करने वाले कृत्य ।

२६. अवे. १९.८, १-७; इनके व्यवहार के सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं है ।

२७–३०. चारों दिशाओं के अनुसार नक्षत्रों का वर्गीकरण, प्रत्येक नक्षत्र में यात्रारम्भ के पूर्व ग्राह्य भोजन का प्रकार; ऐसे शकुन जिनके दिखाई पड़ने पर एक कोस तक लौट आना आवश्यक है ।

३१–३२. सामरिक अभियान पर राजा के प्रस्थान करने के समय के सांस्कारिक कर्म ३१.१-६; शुभशकुन ३१.७; ऐसी वस्तुयें जिनकी प्रदक्षिणा आवश्यक है ३१.८-३२.४; अपशकुन तथा उनके निवारण के उपाय ३२.५-११, नक्षत्रों का कोई सन्दर्भ नहीं दिया गया है ।

३३. प्रत्येक नक्षत्र के प्रभाव के अन्तर्गत रोगों की अवधि ।

३४. नक्षत्रों को समर्पित की जाने वाली बलियाँ; प्रत्येक नक्षत्रों को समर्पित की जाने वाली वस्तुओं का नाम २.४; सामान्य नियम ५-६ ।

३५. विभिन्न दिशाओं को प्रस्थान करनेवालों के लिये शुभ शकुन । नक्षत्रों का कोई सन्दर्भ नहीं दिया गया है ।

३६. सेना संगठित करने के समय के सहायक शकुन तथा उनके अनुरूप आवश्यक सांस्कारिक कर्म । नक्षत्रों का कोई सन्दर्भ नहीं है ।

३७–५०. नक्षत्र-स्नानों से सम्बद्ध कृत्यः व्यवहार्य मन्त्र ३७–४१; नक्षत्र दैवता-मन्त्राः = शान्तिकल्प ७-११; कृत्य का वर्णन ४२; जल में मिश्रित की जाने वाली

वस्तुयें तथा प्रत्येक नक्षत्रानुसार शुभफलप्राप्ति ४३-४५; भोजन और दक्षिणा प्रदान करने से सम्बद्ध सामान्य नियम ४६; इस प्रकार के भोजन और दक्षिणा वितरण के लिये प्रत्येक नक्षत्रानुसार विशेष नियम और उनसे सम्बद्ध शुभफल ४७-५० ।

१. (क) परिशिष्ट है जिसमें सकलपाठ में पैप्पलाद शाखा के मन्त्र प्रतीक दिये गये हैं ।

परिशिष्ट १

नक्षत्रकल्पः

श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमोऽथर्वात्मने वामदेवाय शिवाय ।
श्रीसरस्वत्यै नमः ॥

१. १. १. अथ नक्षत्रकल्पं व्याख्यास्यामः ॥

२. कृत्तिका रोहिणी मृगशिरार्द्रा पुनर्वसू पुष्याश्लेषा मघाः फाल्गुनी फल्गुन्यौ हस्तश्चित्रा स्वातिर्विशाखे अनुराधा ज्येष्ठा मूलं पूर्वाषाढा उत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणः श्रविष्ठा शतभिषः पूर्वप्रोष्ठपदोत्तरप्रोष्ठपदौ रेवत्यश्वयुजौ भरण्यः ॥ १ ॥

२. १. षट् कृत्तिका, एका रोहिणी, तिस्रो मृगशिर, एकार्द्रा, द्वे पुनर्वसू, एकः पुष्यः षडाश्लेषाः, षण्मघाः, चतस्रः फल्गुन्यः, पञ्चहस्ता, एका चित्रा, एका स्वातिर्द्वेविशाखे, चतस्रोऽनुराधा, एका ज्येष्ठा, सप्त मूलम् , अष्टावषाढा, एकोऽभिजित्, तिस्रःश्रवणः पञ्च श्रविष्ठा, एका शतभिषा, चतस्रः प्रोष्ठपदौ, एका रेवती, द्वे अश्वयुजौ, तिस्रो भरण्यः ॥

२. इति संख्यापरिमितं ब्रह्म ॥ २ ॥

३. १. आग्निवेश्यः कृत्तिका, रोहिण्यानुरोहिणी, श्वेतायिनं मृगशिर, आर्द्रा बार्हद्रवी, वात्स्यायनौ पुनर्वसू, भारद्वाजः पुष्यो, जातूकर्ण्योऽश्लेषा, वैयाघ्रपद्यो मघाः, पाराशर्यौ पूर्वे फाल्गुन्यावौपशिव्या उत्तरे, माण्डव्यायनो हस्तश्चित्रा गौतमी, कौण्डिन्यायनः स्वातिः, कापिले विशाखे, मैत्रेय्यनुराधा, कौशिकी ज्येष्ठा, कौत्सं

मूलं, हारितयज्ञी पूर्वाषाढा, काश्यप्युत्तरा, शौनकोऽभिजिद्, आत्रेयः श्रवणो, गार्ग्यः श्रविष्ठा, दाक्षायणी शतभिषग्वात्स्यायन्यौ पूर्वे प्रोष्ठपदे, आगस्त्यावुत्तरे, शाङ्खायनी रेवती, कात्यायन्या-वश्वयुजौ, मातृभ्यो भरण्यः, वसिष्ठः कश्यपादित्यश्चन्द्रमा ब्रह्माणो नक्षत्रेषु ॥ ३ ॥

१.४.१. कृत्तिका अग्निदेवत्या रोहिण्यां तु प्रजापतिः ।
सौम्यं मृगशिरं विद्यान्मरुतश्चात्र दैवतम् ॥
२. रुद्रस्याद्रादितिः पुनर्वसू पुष्ये विद्याद् बृहस्पतिम् ।
अश्लेषाः सर्पदैवत्या मघासु पितरः स्मृताः ॥
३. भगस्तु पूर्वयोः फल्गुन्योरर्यमोत्तरयोरपि ।
हस्ते च सविता दैवं चित्रा तु त्वष्टृदैवता ॥
४. स्वातौ तु दैवतं वायुरिन्द्राग्नी तु विशाखयोः ।
अनुराधासु मित्रो वै ज्येष्ठायामिन्द्रमहादेवौ ॥
५. अहिर्बुध्न्यश्च मूलस्य निर्ऋतिश्चात्र दैवतम् ।
आपः पूर्वास्वषाढासु विश्वे देवास्तथोत्तरे ॥
६. अभिजिद्ब्रह्मदेवत्यः श्रवणे विष्णुरुच्यते ।
श्रविष्ठा वसुदेवत्या शतभिषग्वरुणेन्द्रयोः ॥
७. अज एकपाद् दिशश्च आदित्यश्च तथोत्तरे ।
रेवती पूषदैवत्या अश्विन्यामश्विनौ स्मृतौ ॥
८. भरण्यो यमदेवत्या देवताः संप्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥

५. १. कृत्तिका मघा मूलञ्च तथा पूर्वाणि द्वन्द्विनाम् ।
एतानि पुरस्ताद्भागान्यह्ःपूर्वाणि जानीयात् ।
२. आर्द्रां शतभिषजं स्वातिमाश्लेषा भरणीरपि ।
नक्तंभागानि ब्रुवते ज्येष्ठया सह ब्रह्माणम् ॥
३. पुनर्वसू विशाखे च उत्तराणि च द्वन्द्विनाम् ।
रात्रीमुभयतः पक्षौ भजन्ते या च रोहिणी ॥

१.५.४. मृगशिरः पुष्यो हस्तश्चित्रा तु सहानुराधैः ।
श्रवणश्चश्रविष्ठाश्च रेवत्यश्वयुजौ नव ॥

५. एतान्युपरिष्टाद्भागानि रात्रीपूर्वाणि जानीयात् ।
मुहूर्तोऽभिजिदुच्यते ॥

६. पुरस्ताद्भागान्यनागतेनोपरिष्टाद्भागान्यतिक्रान्तेनु-
भयतोभागानि वर्तमानेन नक्तं भागानि समं चन्द्रेण वा ॥

७. षडनागतयोगीनि स्थितयोगीनि द्वादश ।
नवातिक्रान्तयोगीनि तथा योगः प्रदृश्यते ॥ ५ ॥

६. १. बहूनि जातानि ग्रहो हिनस्ति कृत्तिकासु तिष्ठन्नुतदीर्घमायुः ।
अजावयो मूषिकाश्च व्यथन्ते विशो ब्रह्मणः सहम्लेच्छवांश्च ॥

२. कलिङ्गानां व्यथते ननु राजा हिरण्यकारांश्च निहन्तिकृत्स्नम् ।
अयस्कारा लोहकारा आहिताग्निश्च
कृत्स्नं नियन्ति सहाग्नितप्तैः ॥

३. अयो लोहं रजतं जातरूपं हिरण्यमिश्रं यच्च पतन्ति सारम् ।
काशाः कुशा यच्च सुवर्णवर्णं यच्चाग्नि-वर्णं फल-मूल-पुष्पम् ॥

४. ये तत्र जाताः सरांसि शुष्यन्त्यपयन्ति नद्यः
प्रजा व्यथन्ते पशवो मृगाश्च ।
प्रजापतेर्हृदये पीड्यमाने सर्वं जगद् व्यथते सप्रदेशम् ॥

५. महाभौमो राजा मरिष्यतीति विद्यादेकारिणांछवकामिन्वकासु ।
नक्षत्रभागे नियन्ति योजधानाः तथा हि नूनं त्रिणवेन सृष्टम् ॥

६. तथा स निन्ये निधानदर्शनाय तत्र तेषां सहाक्षेमं तस्य विद्यात् ।
परित्य ये पूर्वपदान्बलेन उत्तिष्ठन्ति वीर्यवन्तो मृगाणाम् ॥

७. भगेन देव्युपयन्ति दिव्यमार्द्राभागे सहिनो भवन्ति ।
तत्र दैवान्मानुष्यांश्च पुनर्वस्वोर्नक्षत्रभागे निनियोजधानाः ॥

१.६.८. तथा हि नूनं
पुष्यो भाग एकधा ब्राह्मणानां
तथा विदुर्नक्षत्रवेदितारः ।
तथा हि नूनं

९. शतद्रयः कैशिका दक्षिणार्धा
आन्ध्राश्च योगहासया प्रवृद्धाः ॥
अश्लेषाभागे सहिनो भवन्ति
तत्र ॥

१०. वेणुन्पितस्त्रिरुजाहुर्देवताम् ।
मघा भागे अष्टमे देवसृष्टम् ।
संयुज्यन्ते देवप्रसादनेन
तत्र ॥ ६ ॥

७. १. राज्ञां राकायामथ मद्र-कैकया
मनोमापायनसहपरिसुन्नियोजसहान्तौ ।
तुन्यमथ सप्तमात्रं पूर्वभागे नवके फल्गुनीषु ॥

२. मत्स्या मागधाश्चेदयश्च शाल्वा मत्स्या उभे फल्गुनीषु ।
संयुज्यन्ते देवप्रसादनेन तत्र ॥

३. पूर्वाचार्या इच्छमानाश्च सर्वे यकृत्क्लोम सह भागेन हस्ते ।
संयुज्यन्ते देवप्रसादनेन तत्र ॥

४. ये पूर्वार्धे निर्जीहते चरन्तः
शान्ता मृगा जन्तुपशवोऽपगामिनस्ते ।
पशवो भवताश्च सर्वे चित्रायाभागे सहिनो भवन्ति ॥

५. तत्राच्युतकेशं वाहनं जयार्थं कुमार्योऽनड्वान्सहतेऽत्र ये ।
विज्ञायते देवसृष्टं पुराणं स्वातिं भजन्ते तृणवश्च सर्वे ॥

१.७.६. वृक्षा वृक्षमूलमिक्ष्वाकवश्च विशाखायां योजिताः सांपदेन ।
तस्मिन्गृहीते भयमेव तेषां दैवोपसृष्टे तु बलेन कार्यम् ॥
[ये तत्र जाताः]

७. ये पश्चार्धे निजीहते चरन्त आसवो मृगा उत्तरार्धाश्चान्ध्राः ।
अनुराधासु मगध-वङ्ग मत्स्याः सर्वे समग्राः सहिनो भवन्ति तत्र ॥

८. पश्चैकधा जनपदा भवन्ति सयुजःकासौबलदादौष्यधाः ।
वाह्लीका ज्येष्ठा उपयन्ति भक्त्या तत्र ॥

९. इक्ष्वाकूणां निर्मथ्या मूलमाहुः ।
तथा विदुर्नक्षत्रवेदितारस्
तथा हि नूनं ॥

१०. काम्बोजाः कालमृषाश्च क्रन्दा उच्छुष्माणः श्वानश्च
चावधूममर्कटाश्च पूर्वाषाढा उपयन्ति भक्त्या तत्र ॥ ७ ॥

८. १. विश्वे देवाः सह पश्चालज्येष्ठा आपश्च याः पान्तु भूतं भविष्यत् ।
उत्तराषाढा उपयन्ति भक्त्या तत्र ॥

२. नार्कविन्दा नार्विदाला नसृङ्गावौ नैषधा जन्तवो मतङ्गाः ।
अभिजितं हार्थविज्ञाय भेजिरे तत्र ॥

३. पाश्चालाः श्रवणमुपैति भक्त्या
सुन्वन्तश्चोभे विद्वान्भूता निनियोज देवः ॥
पूर्वकर्ता भूतभविष्यकालस्
तथा हि नूनं

४. कुरून्श्रविष्ठास्तथा शिवास्तथा-
हुर्नक्षत्रभागे निनियोजधानाः ॥
तथा हि नूनम्

५. अङ्गादयो जनपदा गुहाशयाप्सु च ये क्षिपन्ति
शतभिषजि भेषजस्य भेजिरे तत्र ॥

१.८.६. खड्गा हस्तिनो गवया वराहा अहीनरा कुन्तयश्चापि सर्वे ।
पूर्वौ प्रोष्ठपदा उपयन्ति भक्त्या तत्र ॥

७. उशीनरा उत्तरयोः प्रोष्ठपदयोर्नक्षत्र भागे विनियोजधानाः ।
तथा हि नूनम् ।

८. आवृताः शूद्राः सह कारवश्च दक्षिणपूर्वे यूकभिः सह
रेवतीं हार्थविज्ञाय भेजिरे तत्र ॥

९. अच्युतकेशं वाहनश्च पदार्थमुच्चावच-जनपदा महान्तः ।
अश्वयुजौ हार्थविज्ञाय भेजिरे तत्र ॥

१०. उभये कीकटाः कौशलाश्च रहश्चवो ये च प्रसुप्ताश्चरन्ति
भरणीः सहार्थविज्ञाय भेजिरे
तत्र तेषां सहाक्षयमस्य विद्यात् ॥ ८ ॥

९.१. करिष्यमाणः संग्रामं प्रतिराजेन क्षत्रियः ।
ब्राह्मणं पूर्वमन्विच्छेद विद्वांसं शास्त्रवित्तमम् ॥

२. उत्पातान्यस्तु यान्विद्याद्दिव्यान्तरिक्ष पार्थिवान् ।
तं वै लिप्सितुमर्हति राजा राष्ट्रे जिजीविषुः ॥

३. ग्रहाणां यः स्थितिं विद्यान्नक्षत्राणाञ्च संपदम् ।
अनभ्यक्तमुपासीत नक्षत्रसमताञ्च यत् ॥

४. आयुधीयान्बिभ्राद्राजा कृत्तिकासु न रिष्यति ।
तद्धि तेजस्वि नक्षत्रं बहुलम् दिवि रोचते ॥

५. अथो हि कृत्तिका इति नक्षत्रं भानुमत्तमम् ।
आग्नेयमग्निनक्षत्रं राजा ह्यस्मिन्प्रवर्धते ॥

६. रोहिण्यां सार्धमासीत रज्जुपल्यानि कारयेत् ।
मृगशिरस्यश्वान्बिभृयात्सास्य सेना न रिष्यति ॥

७. सौम्यं सोमस्य नक्षत्रं राजा ह्यस्मिन् प्रवर्धते ।
आर्द्रायां मृगयां यायादमित्रेभ्यश्च हावयेत् ॥

१.९.८. पुनर्वस्वाभियुञ्जीत पुष्येणैतां प्रयोजयेत् ।
इषीकां छेदयन्राजा अश्लेषासु न रिष्यति ॥
९. मघाभिः सार्धमासीत न यायादुच्छ्रयश्चन ।
फल्गु द्वाराणि कारयेत्परिचरांश्च वाहयेत् ॥
१०. तोरणानि च संहन्युः फलकानि च तक्षयेत् ।
..................उत्तराभ्यां च हावयेत् ॥ ९ ॥

१०. १. हस्तेन चित्रामाकांक्षेन्नक्षत्रस्य परिग्रहम् ।
अनेकदर्शी स्याच्चित्रायां पुरा स्वातेरभिप्लवात् ॥
२. स्वातौ शिशून्नियोजयेज्जवार्थान् रथवाहिनः ।
अथास्मिन् कन्यामुपवासयेत क्षिप्रं सा लभते पतिम् ॥
३. प्रदातीन्कारयन्राजा विशाखायां न रिष्यति ।
लेपयेत्प्रदती राजा अनूराधासु क्षत्रियः ॥
४. ज्येष्ठायां हस्तिनं पश्येदभिषेकांश्च कारयेत् ।
..................राजा पुत्रांश्च योधयेत् ॥
५. मूलेन परिखां खानयेत्पुरं चितेन योजयेत् ।
नैर्ऋतं राजनक्षत्रं वध्याननेन घातयेत् ॥
६. त्रिरात्रं सार्धं दीक्षयित्वा आषाढासु व्रतं चरेत् ।
अभिजित्यभियुञ्जीत श्रवणेन चिकीर्षतु ॥
७. श्रविष्ठाभिः सृजेद्रसान् ॥
८. शतभिषजि भिषक्कर्म भैषज्यं चात्र कारयेत् ।
प्राचीनप्रोष्ठपदयोरयायाद् ० ० ० ० ० ० ॥
९. उत्तराभ्यामभियुञ्जीत गृहेषु रेवत्यां वसेत् ।
वि सेनां कारयेद्राजा अश्विन्यां भरणीषु च ॥ १० ॥

११. १. चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥

१.११.२. सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
३. पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥
४. अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥
५. आ मे महच्छतभिषग्वरीय
आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म
आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ११ ॥

१२.१. कृत्तिका रोहिणी मृगशिरार्द्रा पुनर्वसू पुष्याश्लेषा मघाः पूर्वे फल्गुन्यौ तन्नवममशिर्दशममहोरात्रे एकादशद्वादशे,

२. एतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धत इति वेद

३. अथ यं कामयत्येतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धीरन्निति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवं विद्वान्कुर्यात्

४. प्राश्वमिध्ममुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयाच्चित्राणि साकं दिवि रोचनानि स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

५. एवं चेदस्मै करोत्येतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धते ॥ १२ ॥

१३.१. उत्तरे फल्गुन्यौ हस्तश्चित्रा स्वातिर्विशाखे अनूराधा ज्येष्ठा मूलं पूर्वाषाढा तन्नवममादित्यो दशमं नामरूपपूर्वपक्षापरपक्षावेकादशद्वादशे

१.१३.२. एतान्येवास्मै°

३. अथ यम्°

४. प्राश्वमिध्मम्°

५. एवम्° ॥ १३ ॥

१४. १. उत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणः श्रविष्ठा शतभिषक्प्रोष्ठपदौ रेवत्यश्वयुजौ भरण्यस्तद्दशमं········पौर्णमास्यमावास्ये द्वादशत्रयोदशे,

२. एतान्येवास्मै°

३. अथ यम्°

४. प्राश्वमिध्मम्°

५. एवम्° ॥ १४ ॥

१५. १. ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इतिहासपुराणं वाकोवाक्यमिदावत्सरः परिवत्सरः संवत्सरो दशमं शीतोष्णे एकादशद्वादशे,

२. एतान्येवास्मै°

३. अथ यम्°

४. प्राश्वमिध्मम्°

५. एवम्° ॥ १५ ॥

१६. १. प्राणोऽपानो व्यानः समान उदानश्चक्षुः श्रोत्रं वाङ्मनस्तन्नवमं·····दशमं नामरूपे एकादशद्वादशे,

२. एतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धत इति वेद,

३. अथ यं कामयत्येतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धीरन्निति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवं विद्वान्कुर्यात् ,

४. प्राश्वमिध्ममुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हीरसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथजुहुयाच्चित्राणि साकं दिवि रोच-

नानि स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

१.१६.५. एवं चेदस्मै करोत्येतान्येवास्मै नक्षत्राणि श्रियं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यं समिन्धते ॥ १६ ॥

१७. १. अजन्यजनिर्यशोऽजनिर्वर्चोऽजनिस्तेजोऽजनिः सहोऽजनिर्महोऽजनिर्ब्रह्माजनिर्ब्राह्मणवर्चसमजनिः सर्वेषां लोकानां सर्वेषां देवानां सर्वेषां वेदानां सर्वेषां भूतानां सर्वासां स्रवन्तीनां जनिताधिपतिरजनिर्भवतीति वेद,

२. अथ यं कामयेत सर्वेषां लोकानां सर्वेषां देवानां सर्वेषां वेदानां सर्वेषां भूतानां सर्वासां स्रवन्तीनां जनिताधिपतिरजनिः स्यादिति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवं विद्वान्कुर्यात् ॥

३. प्राश्नमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयाच्चित्राणि साकं दिवि रोचनानि स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एवं प्राशयति रसान् ॥

४. एवं चेदस्मै करोति सर्वेषां लोकनां सर्वेषां देवानां सर्वेषां वेदानां सर्वेषां भूतानां सर्वाषां स्रवन्तीनां जनिताधिपतिरजनिर्भवति ॥ १७ ॥

१८. १. त्रिष्ठितश्रवा वै नामैतन्नक्षत्रं यत्पूर्वाह्णेऽधितिष्ठति वितिष्ठत्यस्य पुण्याकीर्तिरैनं पुण्या कीर्तिर्गच्छत्युपैनं पुण्या कीर्तिस्तिष्ठति नास्मात्पुण्या कीर्तिरपक्रामति कीर्तिमान्प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन भवतीति वेद,

२. अथ यं कामयेत वितिष्ठेदस्य पुण्या कीर्तिरैनं पुण्या कीर्तिर्गच्छेदुपैनं पुण्या कीर्तिस्तिष्ठेन्नास्मात्पुण्या कीर्तिरपक्रामेत्कीर्तिमान्प्रजया पशुभिः श्रियागृहैर्धनेन स्यादिति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवंविद्वान्कुर्यात् ॥

१.१८.३. प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयाद्विषासहिं सहमानं स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

४. एवं चेदस्मै करोति वितिष्ठत्यस्य पुण्या कीर्तिरैनं पुण्या कीर्तिर्गच्छत्युपैनं पुण्या कीर्तिस्तिष्ठति नास्मात्पुण्या कीर्तिरपक्रामति कीर्तिमान्प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन भवति ॥ १८ ॥

१९. १. वर्चो वै नामैतन्नक्षत्रं यन्मध्याह्नैनं वर्चो गच्छत्युपैनं वर्चस्तिष्ठति नास्माद्वर्चोऽपक्रामति वर्चस्वी प्रजया पशुभिः श्रियागृहैर्धनेन भवतीति वेद ।

२. अथ यं कामयेतैनं वर्चो गच्छेदुपैनं वर्चस्तिष्ठेन्नास्माद्वर्चोऽपक्रामेद्वर्चस्वी प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन स्यादिति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवंविद्वान्कुर्यात् ॥

३. प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयाद्वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

४. एवं चेदस्मै करोत्यैनं वर्चो गच्छत्युपैनं वर्चस्तिष्ठति नास्माद्वर्चोऽपक्रामति वर्चस्वी प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन भवति॥१९॥

२०. १. तेजो वै नामैतन्नक्षत्रं यदपराह्नैनं तेजो गच्छत्युपैनं तेजस्तिष्ठति नास्मात्तेजोऽपक्रामति तेजस्वी प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन भवतीति वेद,

२. अथ यं कामयेतैनं तेजो गच्छेदुपैनं तेजस्तिष्ठेन्नास्मात्तेजोऽपक्रामेत्तेजस्वी प्रजया पशुभिः श्रियागृहैर्धनेन स्यादिति तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवंविद्वान्कुर्यात् ॥

३. प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयात्तेजोऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

१.२०.४. एवं चेदस्मै करोत्यैनं तेजो गच्छत्युपैनं तेजस्तिष्ठति नास्मात्तेजोऽपक्रामति तेजस्वी प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेन भवति ॥ २० ॥

२१. १. विष्ठितश्रवा वै नामैतन्नक्षत्रं यत्पूर्वाह्णे,

२. वर्चो वै नामैतन्नक्षत्रं यन्मध्याह्ने;

३. तेजो वै नामैतन्नक्षत्रं यदपराह्णे,

४. ऽकाले त्वेवा प्रयुक्तानि भवन्ति ॥ २१ ॥

२२. १. विष्ठितश्रवा वै नामैतन्नक्षत्रं यत्पूर्वरात्रे,

२. वर्चो वै नामैतन्नक्षत्रं यन्मध्यरात्रे,

३. तेजो वै नामैतन्नक्षत्रं यदपररात्रे,

४. स्वे स्वे काले प्रयुक्तानि भवन्ति ॥

५. यो वै रात्रियान्वेवाप्रयुक्तानि भवन्ति ॥ २२ ॥

२३. १. यो वा अह्नः पुण्याहं वेद पुण्याही भवति
पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ॥

२. सूर्यो वाह्नः पुण्याहं तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवंविद्वान्कुर्यात् ॥

३. प्राश्वमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जहुयाद्विषासर्हिं सहमानं स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

४. एवं चेदस्मै करोति पुण्याही भवति पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ॥ २३ ॥

२४. १. यो वै रात्र्याः पुण्याहं वेद पुण्याही भवति पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ॥

२. चन्द्रो वै रात्र्याः पुण्याहं तस्मादेतस्मिन्नक्षत्र एवं विद्वान्कुर्यात् ॥

३. प्राश्वमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रसान्बर्हिष्याधायान्वालभ्याथ जुहुयाद्यद्राजानं स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा रसेषु संपातानानीय संस्थाप्य होमांस्तत एनं प्राशयति रसान् ॥

१.२४.४. एवं चेदस्मै करोति पुण्याही भवति पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ॥ २४ ॥

२५. १. यो वा अहोरात्रयोः पुण्याहं वेद पुण्याही भवति पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ।

२. ब्राह्मणो वा अहोरात्रयोः पुण्याहम्

३. तं पृच्छेत्केनाजितेति,

४. स चेद्ब्रूयात्कर्तव्यमिति तथा कुर्यात् ।

५. पुण्याही भवति पुण्याहमस्मै भवति पुण्याह एव कुरुते ॥ २५ ॥

२६. १. यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे
अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति
सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥

२. अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि
सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च
नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥

३. स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥

४. अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्त्सवितः सुव ॥

५. अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नसिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥

६. इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥

१.२६.७. स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्या-मस्तु ॥ २६ ॥

२७. १. दध्योदनं भुक्त्वा कृत्तिकाभिरभ्युदियात्सिद्धार्थो हैव पुनरा-गच्छति ॥

२. आर्षभेण मांसेन रोहिण्यां मृगमांसैर्मृगशिरसि रुधिरमार्द्रायां गृहपति भक्तं पुनर्वस्वोः घृतपायसं पुष्ये सर्पिर्मांसैरश्लेषासु ॥

३. एतानि खलु प्राग्द्वाराणि नक्षत्राणि भवन्ति ॥

४. स यत्रैव प्राचीं दिशमभ्युत्थितः शस्त्रहस्तेन वा कण्ठ-हस्तेन वा वध्यघातेन वा समेयान्निवर्तेतार्वाक्खल्वेतत्क्रोशादूर्ध्वं क्रोशादव्याघातुकमर्थस्य भवति ॥ २७ ॥

२८. १. तैलेन कृशरं भुक्त्वा मघाभिरभ्युदियात्सिद्धार्थो हैव पुनरा-गच्छत्य्,

२. आविकैर्मांसैर्भुक्त्वा पूर्वयोः फल्गुन्योरभ्युदियाद्रसैरुत्तरयोः ग्रैयंगवं हस्ते चित्रं भक्तं भुक्त्वा चित्रयाभ्युदियात्यानि ज्येष्ठानि तेषां भुक्त्वा स्वातावभ्युदियादपूपान्विशाखयोर्,

३. एतानि खलु दक्षिण द्वाराणि नक्षत्राणि भवन्ति ॥

४. स यत्रैव दक्षिणां दिशमभ्युत्थितः शयनहस्तेन वा स्तरण-हस्तेन वा सन्दीहस्तेन वा नीवीहस्तेन वा जानुहस्तेन वा समेयान्निवर्तेतार्वाक्खल्वेतत्क्रोशादूर्ध्वं क्रोशादव्याघातुकमर्थस्य भवति ॥ २८ ॥

२९. १. खलकुलैर्भुक्त्वानुराधाभिरभ्युदियात्सिद्धार्थो हैव पुनरा-गच्छति ॥

२. ज्येष्ठं भक्तं भुक्त्वा ज्येष्ठयाभ्युदियान्मूलैर्भुक्त्वा मूलेनाभ्यु-दियाद्······भुक्त्वा पूर्वाभिरषाढाभिरभ्युदियाद्रसैरुत्तराभिर्नव-नीतेन पायसं भुक्त्वाभिजित्यभ्युदियाद्······भुक्त्वा श्रवणेनाभ्यु-दियाद्,

१.२९.३. एतानि खलु पश्चिमद्वाराणि नक्षत्राणि भवन्ति ॥

४. स यत्रैव प्रतीचीं दिशमभ्युत्थितः पाशहस्तेन वा जालहस्तेन वा मत्स्यबन्धेन वा समेयान्निवर्तेतार्वाक्खल्वेतत्क्रोशादूर्ध्वं क्रोशादव्याघातुकमर्थस्य भवति ॥ २९ ॥

३०.१. विदलसूपेन भुक्त्वा श्रविष्ठाभिरभ्युदियात्सिद्धार्थो हैव पुनरागच्छति ॥

२. शाकं शतभिषजि गोधा गव्यैर्मांसैर्भुक्त्वा पूर्वयोः प्रोष्ठपदयोरभ्युदियाद्रसैरुत्तरयोर्गृहिणीभक्तं भुक्त्वा रेवत्याभ्युदियादक्षतमाषैर्भुक्त्वाश्विन्योरभ्युदियात्तिलतण्डुलान्भक्षयित्वा भरणीभिरभ्युदियाद् ॥

३. एतानि खलूदग्द्वाराणि नक्षत्राणि भवन्ति ॥

४. स यत्रैवोदीचीं दिशमभ्युत्थितः पानहस्तेन वा किण्वहस्तेन वाक्षीवेण वा समेयान्निवर्तेतार्वाक्खल्वेत्क्रोशादूर्ध्वं क्रोशादव्याघातुकमर्थस्य भवति ॥ ३० ॥

३१. १. अथ राज्ञोऽभिप्रयाणस्यानयन्ति प्रदक्षिणमुखं श्वेतं अजं ब्राह्मणं शुक्लवाससम् ॥

२. सुप्रतिष्ठितमविश्रान्तं वृषभं शृङ्गिणं हरिम् ।
सचेन्नदति संसृष्टस्तामाहुः सिद्धिमुत्तमाम् ॥

३. गजं ध्वजं रथं छत्रं वर्म योधानलंकृतान् ।
भूषणानि च सर्वाणि प्रशस्तान्यायुधानि च ॥

४. वादित्राणि च सर्वाणि पताका विविधास्तथा ।
शुक्लाः सुमनसो लाजा अक्षतागौरसर्षपाः ॥

५. फलानि पूर्णपात्राणि धूपगन्धाञ्जलं तिलाः ।
अर्चयित्वा देवताः सर्वा ब्राह्मणान्प्रतिपूज्य च ॥

६. पुरोहितं पुरस्कृत्य सहृदो मन्त्रिणस्तथा ।
एवं प्रयातो लभते विजयं नात्र संशयः ॥

१.३१.७. कल्याण नामधेयञ्च गजमव्यंगदर्शनम् ।
कुमारीं दधिपात्रेण गृहीतेन स्वलंकृताम् ।
८. यदि चेदधिगो जालिम सूर्याचन्द्रमसोर्गृहे ।
अश्विना रासभेन्द्रेण यानं कुर्यातप्रदक्षिणम् ॥ ३१ ॥

३२. १. प्रादक्षिण्यमग्नेर्गवां ब्राह्मणानां राज्ञो ।
रथस्य नरवाहनस्य शकटस्य चतुर्युक्तस्य षड्युक्ताष्टयुक्तस्य च ॥
२. ह्रदस्य दक्षिणावर्तस्य कुमारस्याभ्युत्थितस्य च ।
मनुष्यपूर्णपिटकस्य पृथिव्या उत्थितस्य च ॥
प्रबद्धस्यैकपशोः,
३. उलूची कालशकुनिः क्षिप्रश्येनोऽथ वर्तिका ।
एते द्विजाः प्रादक्षिण्याश्चापश्चात्र प्रदृश्यते ॥
४. क्रौञ्चनकुलप्रियवृक्षचैत्यानां नित्यं वयसाम् ॥
५. तिर्यग् न्यग्वाधिपतितं विपरीतं हीनाङ्गाङ्गातिरिक्तं
विकृत नग्नमुण्ड बण्डश्वित्रस्यामश्यावदन्तकुनखिजटिलः
काषायाविकयोश्चर्माब्राह्मणयोर्,
६. एतेषां किंचिद्दृष्ट्वा न गच्छेद्,
७. यदि गच्छेद्
अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्दुषो रातिम् ।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम्
इत्येतां जयेत् ॥
८. निषज्यतो दस्यून्छादयन्निन्द्रेति वा ;
९. स्तुहि श्रुतमिति वा ॥
१०. देवीं वाचमजनयन्त देवास्
तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु,
इति गर्दभमुखेन प्रतिनदति प्रतिलोम प्रतिकृत्यास्य ॥

१.३२.११. सर्वाश्च पापिका वाचोनेष्टाः कुचेलदर्शनं च ।
अनर्थां हिंसार्थम् ! तद्दर्शनाय। पापं वा जिहीर्षतां सिद्धिः ॥ ३२ ॥

३३. १. अथ रोगपरिमाणान्य्,
२. उत्तरास्त्रषाढास्तूत्तरयोः प्रोष्ठपदयोर्मासम् ।
३. रोहिण्यां विंशति रात्रम् ।
४. पुनर्वस्त्रोरूनविंशतिरात्रं पूर्वाणि द्वन्द्विनाम् ।
५. मृगशिरसि षोडशरात्रमभिजिति श्रवणे च,
६. आर्द्रायां पञ्चदशरात्रमनुराधाश्रविष्ठाभरणीषु च,
७. पुष्ये द्वादशरात्रं हस्ते स्वातौ च ।
८. शतभिषजि नवरात्रं मासे वा कालं कुरुते ।
९. ज्येष्ठायां मूले चाष्टरात्रम् ।
१०. रेवत्यां सप्तरात्रम् ।
११. कृत्तिकाश्लेषा मघा उत्तरे फाल्गुन्यौ चित्रा विशाखे अश्वयुजौ च सप्तस्वेतेषु दशरात्रम् ॥ ३३ ॥

३४. १. अथ बलयः ॥

२. शुक्ल उपशुरसूपेशुक्लोसप्तमून्मोदनः ।
अष्टमः पललोदनो धानाः सक्तवोऽथ शष्कुली ॥

३. चित्रश्च कृकवाकुश्च शुक्लः कम्बूकपिण्डकः ।
सर्वबीजानि मूलानि उदपात्रं च पायसौ ॥

४. पशु घृतं कशीका च आर्द्रमांसानि पायसौ ।
पथ्यायां माषसक्तवः पायसोऽथ तिलोदनः ॥

१.३४.५. सर्वत्र गन्धपुष्पाणि लाजानुलेपिकास्तथा ।
अनुद्वारं च नक्षत्रं दैवतं चात्र योजयेत् ॥
६. दीपाश्च मण्डले दीप्ता : शुचिश्चापि बलिं हरेत् ।
योऽस्मिन्यस्त्वा मातुरिति विपरिहरेत् ॥ ३४ ॥
३५.१. सश्वेतसक्तुकांसश्च प्राचीनार्थस्य मङ्गलम् ।
स्रवं च मांसपेशी च दक्षिणार्थस्य मङ्गलम् ॥
२. कुमारी दधिकंसश्च प्रत्यगर्थस्य मङ्गलम् ।
अनड्वान्ब्रह्मचारी च उदगर्थस्य मङ्गलम् ॥
३. कुमारीं दधिपात्रेण गृहीतेन स्वलंकृताम् ।
प्रदक्षिणां तु तां कुर्याद्ध्रुवं स्यात्सिद्धिरिष्यते ॥ ३५ ॥

३६. १. सेनां चेदभ्युत्थितां मन्द्रः प्रतिगर्जेद्राजा वामात्यो वा मरिष्यतीति विद्यात्तत्र वारुणीं जपेत् । उदुत्तमं वरुणपाशमिति ॥

२. सेनां चेदभ्युत्थितां धूमोऽनुगच्छेद्विजेष्यतीति विद्यात् । त्वेषस्ते धूमित्यनुमन्त्रयेत् ॥

३. सेनां चेदभ्युत्थितां वातोऽनुवायाद्विजेष्यतीति विद्याद्वात आ वत्वित्यनुमन्त्रयेत् ॥

४. सेनां चेदभ्युत्थितां मृगो व्यभिमृशेदर्थं तस्या विनश्यतीति विद्यात् । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा इत्यनुमन्त्रयेत् ॥

५. सेनां चेदभ्युत्थितां पक्षिणो व्यतिपतेयुर्मांसोदनं च तत्र दद्यात् । अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्रा इत्यनुमन्त्रयेत् ॥

६. सेनां चेदभ्युत्थितां कपिञ्जलः प्रतिवदेद्भद्रं वदेति तिस्रः कापिञ्जलानि स्तवनानि वदन्ति ॥

७. यो अभ्यु बभ्रुणायसि स्वपन्तमत्सि पुरुषं शयानं अगस्वलम् । अयस्मयेन ब्रह्मणाश्ममयेन वर्मणा पर्यस्मान्वरुणोदधद् इत्यभ्यवकाशे संविशति । अभ्यवकाशे संविशति ॥ ३६ ॥

३७. १. अग्निर्देवो यज्वनः कृष्णवर्त्मा।
वैश्वानरो जातवेदा रसाग्रभुक्।
स नक्षत्राणां प्रथमेन पावकः
कृत्तिकाभिर्ज्वलनो नोऽनुशाम्यताम्।
२. प्रजापतिर्यः ससृजे प्रजा इमा
देवान्त् स सृष्ट्वा विनियोज्य कर्मसु।
स सर्वभुक्सर्वयोगेषु रोहिणी
शिवाः क्रियाः कृणुतां कर्मसिद्धये॥
३. विद्याविदो ये अभिशोचमानवा
अर्चन्ति शक्रं सह देवतागणैः।
स नो योगे मृगशिरः शिवाः क्रियाः
श्रेष्ठराजः कृणुतां कर्मसिद्धये॥
४. देवं भवं पशुपतिं हरं कृशं
महादेवं शर्वमुग्रं शिखण्डिनम्।
सहस्राक्षमशनिं यं गृणन्ति
स नो रुद्रः परिपातु न आर्द्रया॥
५... ..या विप्रैः कविभिर्नमस्यते
दाक्षायणी देवपुरादिभिर्नृभिः।
सा नः स्तुता प्रथमजा पुनर्वसुः
शिवाः क्रियाः कृणुतां कर्मसिद्धये॥ ३७॥

३८. १. यस्य देवा ब्रह्मचर्येण कर्मणा
महासुरं तिग्मतयाभिचक्रिरे।
तं सुबुधं देवगुरुं बृहस्पतिमर्चामि
पुष्येण सहाभिपातु मा॥
२. या नः स्तुतः परिहिणोमि मेधया
तप्यमानमृषिभिः कामशोचिभिः।

जरत्कारसूनोर्ऋषिभिर्मनीषिभिस्
ता अश्लेषा अभिरक्षन्तु नोरगैः ॥

१. ३८. ३. ये देवत्वं पुण्यकृतोऽभिचक्रिरे
ये चापरे ये च परे महर्षयः ।
अर्चामि सूनुर्यमराजगान्पितॄञ्छिवाः
क्रियाः कृणुतां च नो मघा ॥

४. यो योजयन्कर्मणा चर्षणीधृतो ।
भूमिं चेति भगः प्रजाः प्रसादयन् ।
तद्देवत्ये शिवतमामलंकृते
फल्गुन्योरीडे भजनं च पूर्वयोः ॥

५. स्तुतं पूर्वैरर्यमणं मनीषिभिः
स्तौमि देवं जगति वाचमेरयन् ।
तद्देवत्ये शिवतमामलंकृते
फल्गुन्यौ न उत्तरे देवतातये ॥ ३८ ॥

३९. १. श्यावैर्युक्तः शितिपाद्धिरण्यये ।
यस्य रथः पथिभिर्वर्तते सुखैः ।
स नो हस्तेन सविता हिरण्यभुग्घिरण्यपाणिः
सविता नोऽभिरक्षतु ॥

२. त्वष्ट्रे नमः क्षितिसृजे मनीषिणे
भूतगोप्त्रे परमकर्मकारिणे ।
सा नः स्तुता कृणुतां कर्मसिद्धये
चित्रां देवी सह येगेन रूपभृत् ॥

३. यः प्राणिनां जीवयन्खानि सेवते
शिवो भूत्वा मातरिश्वा रसाग्रभुक् ।
व्वजोऽन्तरिक्षस्य स सर्वभूतभृद्वायुर्देवः
स्वातिना नोऽभिरक्षतु ॥

१.३९.४. यावीडितावात्मविद्भिर्मनीषिभिः
सहितौ यौ त्रीणि सवनानि सामगौ ।
इन्द्राग्नी वरदौ नमस्कृतौ
विशाखयोः कुर्वतामायुषे श्रीः ॥

५. विश्वे देवा यमृषिमाहुर्मित्रं
भरद्वाजमृषितः प्रसामवित् ।
तं जगत्या गाथया स्तौम्युग्रैः
स मामनूराधाभिर्भृतकण्वोऽभिरक्षतु ॥ ३९ ॥

४०. १. शतक्रतुर्यो निजघान शम्बरं
वृत्रं च हत्वा सरितः प्रसर्जतः ।
स नः स्तुतः प्रीतमनाः पुरंदरो ।
मरुत्सखा ज्येष्ठया नोऽभिरक्षतु ॥

२. या धारयत्योजसातिदेवपदं
माता पृथिवी च सा सर्वभूतभृत् ।
सा नः स्तुता कृणुतां कर्मसिद्धये
मूलं देवी निर्ऋतिः सर्वकर्मसु ॥

३. पर्जन्यसृष्टास्ति सृणीभिरावृतं
यास्तर्पयन्त्यभितः प्रवृद्धये ।
ताः स्तौम्यापो वारुणीः······
पूर्वा आषाढा स्वधयास्तु योजने ॥

४. यास्त्रिंशतं त्रींश्च मदन्ति देवा
देवनाम्नो निर्मितांश्च भूयसः ।
ता नोऽषाढा उत्तरा वसो विश्वे
शिवाः क्रियाः कृणुतां सुरमताः ॥

१.४०.५. यः सर्वज्ञः सर्वकृत्सर्वभूतभृद्
यस्मादन्यत्र परं किंचनास्ति ।
अनिर्मितः सत्यजितः पुरुष्टुतः
स नो ब्रह्माभिजिता नोऽभिरक्षतु ॥ ४० ॥

४१. १. स्थानाच्युते स्थानमिन्द्राय पातवे
देवभ्यश्च य ईरयंस्त्रिर्विचक्रमे ।
तं स्विद्धि स्वर्गं नाकपृष्ठं विश्वं
विष्णुर्देवः श्रवणेनाभिरक्षतु ॥

२. अष्टौ शतानि श्वेतकेतूनां यानि
त्वंचसत्वं निजघान भूयसः ।
अनादेशेनोभयतश्च वीडिताः
श्रविष्ठाभिर्नोऽभिरक्षन्तु वाजिनः ॥

३. वाजा देवी देवमृणानिकाकुभावुभावाजस्य
नतकर्मणा शिवा ।
तव व्राजं स्तौमसि देवभोजनौ
प्रत्यग्भिषक्शतभिषक्शिवौ नः ॥

४. शुनासीरौ नः प्रमुमूतु जिह्मसौ
तौ तौ पितृभ्यो ददतुः स्तनौ शुभौ ।
तौ पूर्वजौ कृणुतामेकपादजः
प्रतिष्ठानौ सर्वकामाभयाय च ॥

५. सर्वार्थाय कृणोमि कर्मसिद्धये
गविष्टुतायानेककारिणे नमः ।
सोऽहिर्बुध्न्यः कृणुतामुत्तरौ शिवौ ।
प्रतिष्ठानौ सर्वकामाभयाय च ॥

१.४१.६. यं महाहेममृषितः प्रसामविद्भरद्वाजश्चन्द्रमसौ
दिवाकरम् ।
सजुष्टानामश्वयुजौ भयाय च
स नः पूषा कृणुतां रेवतीं शिवाम् ॥

७. जीर्णं सन्तं यौ युवानं हि चक्रतुर्ऋषिं
धिया च्यवनं सोमपौ कृतौ ।
तौ नश्चित्तिभिर्भिषजामस्य सत्करौ
······प्रजामश्विन्यामश्विनौ शिवौ ॥

८. यस्य श्यामशबलौ रक्षतः स्वधा
दुष्कृत्सुकृद्विविधा चर्षणीधृतौ ।
तौ सवित्र्या च सवितुर्धर्मचारिभिर्यमो
राजा भरणीभिर्नोऽभिरक्षतु ॥ ४१ ॥

४२. १. अथ नक्षत्रस्नानानां विधिं वक्ष्यामि सांपदम् ।
ग्रहदैवतपूजां च येषु यत्र यथाविधि ॥

२. नक्षत्रयोगकालज्ञः कृत्वा तन्त्रं यथाविधि ।
यजेद्ग्रहान्हविष्येण यथोक्तेन च देवताः ॥

३. प्रशस्त लक्षणं कुम्भं ससंभारजलं बुधः ।
संपाताभिहितं कृत्वा मन्त्रैर्विधिमनुस्मरन् ॥

४. सावित्र्या शान्तिसूक्तै महाव्याहृतिभिस्तथा ।
अपां स्तोत्रैः पवित्रैश्च नक्षत्रस्तुतिभिस्तथा ॥

५. नक्षत्रदैवतान्मन्त्रान्प्रतिनक्षत्रमावपेत् ।
काम्यांश्चैवावपेन्मन्त्रान् कर्मलिङ्गविधानवित् ॥

६. संपात्याथाभिमन्त्र्य वा नक्षत्रस्नानकोविदः ।
स्नापयेदर्थिनं वाग्भिः पुण्याभिरभिमन्त्रितम् ॥

१.४२.७. एष एव विधिर्दृष्टः सदस्येभ्यश्च दक्षिणा ।
पूर्वमाप्याययेद्देहं पश्चाद्दद्यात्तु दक्षिणाम् ॥
८. अनेन विधिना स्नात्वा दद्याच्चैवात्र दक्षिणाम् ।
प्राप्णोत्यनुनयं पुंसः स वेदफलमश्नुते ॥
९. आत्मानं निर्मलीकृत्य देयानिष्ट्वा ग्रहांस्तथा ।
विद्वद्भ्यो दक्षिणा देया द्विजानन्नेन तर्पयेत् ॥ ४२ ॥

४३. १. कृत्तिकाभिः शिरीषस्य अश्वत्थस्य वटस्य च ।
स्नापयेत्पत्त्रभङ्गेन य इच्छेद्राजपूजितम् ॥
२. रोहिण्यां स्नापयेद्वैश्यं सर्वबीजैरलंकृतम् ।
अक्षतानन्तरं कृत्वा तथा सौभाग्यमर्हति ॥
३. यदा मृगशिरो युज्येत्तदा स्नानं विधीयते ।
मुक्तामणिसुवर्णेन धनार्थी तेन स्नापयेत् ॥
४. श्रीवेष्टक सर्जरसतगरोशीरपत्त्रकैः ।
आर्द्रायां वणिजः स्नाताः सुलाभांस्तु लभन्ति ते ॥
५. पुनर्वसुभ्यां गोमार्गादाहरेदग्रमृत्तिकाम् ।
गोपीठे स्नापयेद्गोऽर्थी क्षिप्रं गोमान्भविष्यति ॥
६. रक्तशालिसहस्रेण तावद्भिर्गौरसर्षपैः ।
सहस्रवीर्यानन्त्या च मदयन्तीप्रियङ्गुभिः ।
त्रीन्पुष्यान्ब्राह्मणः स्नातः पार्थिवं लभते यशः ॥
७. अश्लेषास्वाहारयेदुभयतः कूलमृत्तिकाः ।
अश्वारोहं स्नापयेत्तेन क्षिप्रवाही भविष्यति ॥
८. मघाभिस्तु तिलैः स्नायादुत्पलैः कमलैस्तथा ।
तस्मिंस्तु मासे सा कन्या क्षिप्रं च लभते पतिम् ॥
९. अथ पूर्वयोः फल्गुन्योः शतपुष्पा प्रियङ्गवः ।
मध्वेव च तृतीयं स्यात्सौभाग्यं भोगवर्धनम् ॥

१.४३.१०.अथोत्तरयोः फल्गुन्योरक्षता गौरसर्षपाः ।
एतत्स्नानं प्रयुञ्जीत प्रजास्थापनमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

४४. १. हस्तेन सर्वकारूणां चौराणां चापि नित्यशः ।
नदीगिरितटाकेषु मृत्तिकास्नानमुत्तमम् ॥

२. चित्रायां चित्रमाल्यैस्तु सर्वगन्धैरलंकृतम् ।
योषार्थी स्नापयेत्तेन क्षिप्रं स लभते प्रियाम् ॥

३. स्वातिना तु गन्धैः स्नायादुत्पलैः कुमुदैस्तथा ।
तस्मिंस्तु मासे सा कन्या क्षिप्रं निर्व्यूह्यते ततः ॥

४. खड्गस्य च विषाणेन गजस्य ऋषभस्य वा ।
विशाखाभ्यामभिषिक्तो राजा पृथिवीमभिशासयेत् ॥

५. अनूराधास्वाहारयेद्वल्मीकशतमृत्तिकाः ।
कर्षणं स्नापयेत्तेन धनधान्येन वर्धते ॥

६. ज्येष्ठयां ज्यैष्ठ्यकामं तु अभिषिञ्चेत्पुरोहितम् ।
रसैश्च मिश्रधान्यैश्चाभिषिक्तः प्राशयेद्रसान् ॥

७. मूलेन सर्वतो भद्रमुपविष्टा वरवर्णिनी ।
शमीपत्त्रसहस्रेण स्नानात्पुत्रं प्रसूयते ॥

८. अथ पूर्वास्वषाढासु या स्नायादहते पटे ।
जातरूपेण कल्याणी भोगं भुङ्क्ते पतिप्रिया ॥

९. अथोत्तरास्वषाढासु यः स्नायाच्चेदुपोषितः ।
महाह्रद उशीरेण दासीदासेन वर्धते ॥

१०. वचयोत्पलकुष्ठैश्च ब्राह्मी सिद्धार्थकैस्तथा ।
अभिजिद्ब्राह्मणः स्नातः पार्थिवं लभते यशः ॥ ४४ ॥

४५. १. श्रवणेन स्रवन्तीनां यः स्नायात्संगमेषु च ।
स संगच्छति स्वर्णेन हिरण्येन धनेन वा ॥

१.४५.२. श्रविष्ठाभिर्धनकामं तु स्नापयेद्यत्र चन्दनैः ।
एतत्स्नानं प्रयुञ्जानो धनधान्येन वर्धते ॥
३. शतभिषग्भिषक्कामोऽभिषिश्चेच्छान्तिकर्मसु ।
सोऽभिषिक्तो हतपाप्मा सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥
४. अथ पूर्वयोः प्रोष्ठपदयो रोचनयाञ्जनेन च ।
स्नाता गजविषाणेन राजानं जनयेत्सुतम् ॥
५. अथोत्तरयोः प्रोष्ठपदयोः प्रसन्नापञ्चकं मधु ।
गन्धर्वं स्नापयेत्तेन राजग्राही भविष्यति ॥
६. खड्गस्य च विषाणेन जलेन मधुसर्पिषा ।
रेवत्यां क्षत्रियः स्नातो राजा पृथिवीमभिशासते ॥
७. अश्विन्यां स्वस्तिकं माल्यं मदयन्ती प्रियङ्गुभिः ।
रूपाजीवायास्तत्स्नानं सौभाग्यं भोगवर्धनम् ॥
८. भरणीभिर्भद्रमुस्तैस्त्वेलासिद्धार्थकैस्तथा ।
स्नाता पतिकुलं गच्छेदसपत्नमकण्टकम् ॥ ४५ ॥

४६. १. सर्वज्ञः सर्वग शंस नारद अज्ञानमन्यस्मादनूनप्रज्ञात्स्वर्गस्य लोकस्य देहाद्यैर्यात्प्रथिभिरुपपन्नो मनुष्यः ॥
२. उपोषितः शुचिशीलः पुण्यगन्धो यदा भवेत् ।
प्रागस्तंगमनभोजनाद्यदेनं नित्यमतन्द्रितः ॥
३. समयाचार पूर्वाभिः कर्मसिद्धिः प्रशस्यते ।
तं कामदुघं स्वर्गकामः परेत्य प्रतिपद्यते ॥ ४६ ॥

४७. १. कृत्तिकाभिः पायसं सर्पिषा सह भोजयेत् ।
तं कामदुघं स्वर्गकामः परेत्य प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥

४८. १. रोहिण्यामक्षतैर्मांसैः सर्पिर्मिश्रं सहोदनम् ।
दुग्धान्नपानं मंहेत सेऽक्षतो यमसादने ॥
२. मृगशिरसि मंहेत अजां धेनुं पयस्विनीम् ।
सास्मै सर्वान्कामान्दुग्ध्वा एति पूर्वा पयस्विनी ॥

१.४८.३. आर्द्रायां क्षरं दद्यात्तैलमिश्रमुपोषितः ।
पुनर्वसुभ्यां मंहेत मध्वपूपांस्त्वनुत्तमान् ॥
४. रुक्मं पुष्येण मंहेत सोऽक्षतो यमसादने ।
अश्लेषा रजतं दद्यात्सौरभेयेण प्रेषितः ॥
५. सर्पान्निर्हन्ति प्रेतस्य परिपन्थि सुखाद्धयात् ।
मघाभिस्तु तिलान्दद्यान्मधुमिश्रान्स्मरन्पितॄन् ॥
६. कामैस्तत्रोपतिष्ठन्ति अमी ये सोमयाजिनः ।
फाणितेनेष्टका मिश्रा दद्यात्पूर्वयोः फल्गुन्यो-
र्मधुनोत्तरयोः ॥
७. पूर्वोत्तरयो फल्गुन्योर्दुहते मधुफाणिते ॥ ४८ ॥
४९. १ बृहद्धस्तिरथं युक्तं हस्तेन तु ददन्नरः ।
सवितुः स्थानमाप्नोति दिव्यं कामजवां सभाम् ॥
२. चित्रायां वृषलीं दद्यात्सर्वपुष्पैरलंकृताम् ।
गन्धैः शुश्रूषमाणस्तु ध्रुवे स्थाने सुगन्धिः प्रपद्यते ॥
३. स्वातावेकधनं दद्याद्यदस्य प्रियं गृहे ।
असज्जमानो गच्छेत अशरीरो यथा मनः ॥
४. धेनुं तु रूपसंपन्नामनड्वाहौ तु वा वहौ ।
विशाखाभ्यां मधुमन्थं प्रापयेत्स्थानमुत्तमम् ॥
५. अनूराधासु प्रावरणमन्नं तु शुचि ज्येष्ठायां च ।
दद्याच्चान्नं ब्राह्मणेभ्यो भक्षैरुच्चावचैः सह ॥
६. सुरां मूलेन मंहेताब्राह्मणीभ्य उपोषितः ।
मातुस्तेनानृणो भवति संकराच्च विमुच्यते ॥
७. उदमन्थमषाढासु पूर्वासु मधुनोत्तरम् ।
८. अभिजिद्दुहितरं दद्यान्मधुपर्कपुरोगमाम् ।
उत्तमे ब्रह्मणः स्थाने सर्वकामैः प्रमोदते ॥ ४९ ॥

१.५०.१. कम्बलं श्रवणे दद्याद्वस्त्रान्तरमुपोषितः ।
श्रविष्ठाभिर्वस्त्रयुगं गन्धाञ्छत भिषग्भवेत् ॥
२. अजं संपच्योदनं दद्यात्पूर्वयोः प्रोष्ठपदयोरौरभ्रेण सहोत्तरयोः ॥
३. धेनुं च रूपसंपन्नां गौर्गृष्टिः पूर्णदोहनीम् ।
रेवत्यां त्रिवत्सां दद्याच्छुभकाण्स्योपदोहिनीम् ॥
४. वस्त्रेणानड्वाहौ संबध्वा दद्यादश्वयुजोर्नरः ।
दश वर्षसहस्राणि लोम्निलोम्नि महीयते ॥
५. अष्टौ वर्षसहस्राणि अजधेन्वा पयोऽश्नुते ।
दश वर्ष सहस्राणि गोधेन्वा पयोऽश्नुते ॥
६. अनड्वाहं तु यो दद्यात्सुहृदं साधुवाहिनम् ।
वीरं प्रजानां भर्तारं प्राप्नोति दशधेनुदम् ॥
७. यदा वत्सस्य पादौ द्वौ शिश्वापि प्रदृश्यते ।
तदा गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥
८. भरणीभिः कृष्णतिलां दद्यात्तिलधेनुं पयस्विनीम् ।
तया दुर्गाणि तरति क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥
९. नक्षत्राणां यथा सोमो ज्योतिषामिव भास्करः ।
भाति दिव्यं दिवं ज्योतिः पावकः शुचिरुत्तमः ॥
१०. एवमुक्तं नक्षत्रदक्षिणां यो ददातीह जीवलोके ।
अपहत्य तमः सर्वं ब्रह्मलोके महीयते ।
यथा यष्टुस्तथाध्येतुरेषा ब्राह्मी प्रतिश्रुतिरेषा
ब्राह्मी प्रतिश्रुतिरिति ॥ ५ ॥
इति ब्रह्मवेदपरिशिष्टं नक्षत्रकल्पाभिधानं
कृत्तिकारोहिणी समाप्ता ॥ १ ॥

१.क१.१. ॐ यद्राजानं शकधूमं नक्षत्राण्यकृण्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्ततो राष्ट्रमजायत ॥

१.क१.२. भद्राहमस्तु नः सायं भद्राहं प्रातरस्तु नः ।
भद्राहस्मभ्यं त्वं शकधूम सदा कृणु ॥
३. यो नो भद्राहमकरः सायं प्रातरथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥
४. यदाहुः शकधूमं महानक्षत्राणां
प्रथमजं ज्योतिरग्रे ।
तन्नः सतीमभिकृणोतु रयिं च नः
सर्ववीरं नियच्छात् ॥
५. योऽस्मिन्यक्षमः पुरुषे प्रविष्ट इषितं दैव्यं सहः ।
अग्निष्टं घृतबोधनोपस्कन्दनो
विदूरमस्मत्सोऽन्येन समृच्छात् ॥
तस्मै प्रसुवामसि ॥

१.ख१.६. यस्त्वा मातुरुत वा पितुः
पारिजायमानमभिसंबभूव ।
न त्वद्यमधिनासयाम
सोऽन्यस्मै सयातै प्रविष्टः ॥
७. अलिक्लवा गृध्राः कङ्काः सुपर्णाः
श्वापदाः पतत्रिणो वयांसि
शकुनयोऽमुष्यामुष्यायणस्या मुष्याः
पुत्रस्या दहने चरन्तु ॥ १ ॥

कृत्तिकारोहिणी मध्ये पैप्पलादा मन्त्राः ॥

२. राष्ट्रसंवर्गः

प्रथम और अन्तिम विधान पुरोहित के पद पर एक अथर्वन् की नियुक्ति है।

१. इस प्रकार की नियुक्ति का राजा के लिये महत्व।

२. केवल अथर्वन् ही अपशकुनों का प्रतिकार कर सकता है।

३. १–४. पुरोहित को दिये जानेवाले उपहार : पुरोहित की अनुपस्थिति के भयंकर प्रभाव।

३.५.–५.२. पैप्पलाद और शौनक शाखाओं के सुयोग्य अथर्वन् पुरोहित की नियुक्ति के लिये निश्चित पुरस्कार। किसी अन्य वेद अथवा जलद और मौद सम्प्रदायों के किसी अथर्वन की नियुक्ति के भयंकर परिणाम।

५.३—६.१. अथर्ववेद का प्रशस्ति।

६.२—३. अयाज्ययाजक-पाप।

६.४—५. जो लोग पवित्रता को केवल संन्यास, प्रार्थना, अथवा संस्कार पद्धतियों (?) मात्र का ही परिणाम मानते हैं उनके प्रति अथर्वनों का उपेक्षात्मक दृष्टिकोण।

राष्ट्रसंवर्गः

२.१.१. ॐ ब्रह्मणे ब्रह्मवेदाय रुद्राय परमेष्ठिने।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि शेषमाथर्वणं विधिम्॥

२. दैवं प्रभवते श्रेष्ठं हेतु-मात्रं तु पौरुषम्।
दैवेन तु सुगुप्तेन शक्तो जेतुं वसुंधराम्॥

३. दैवात्पुरुषकाराच्च दैवमेव विशिष्यते।
तस्माद्दैवं विशेषेण पूजयेत्तु महीपतिः॥

४. दैवकर्मविदौ तस्मात्सांवत्सर-पुरोहितौ।
गृह्णीयात्सततं राजा दान संमानरञ्जनैः॥

५. अपिता तु यथा बालस्तथासांवत्सरो नृपः।
अमातृको यथा बालस्तथाथर्वविवर्जितः॥
अरिमध्ये यथैकाकी तथा वैद्यविवर्जितः॥

६. धर्मेण पृथिवीं कृत्स्नां विजयिष्यन्महीपतिः ॥
विद्या लक्षणसंपन्नं भार्गवं वरयेद्गुरुम् ॥
७. चतुर्विधस्य कर्मणो वेदतत्त्वेन निश्चयम् ।
प्रजापतिरथै को हि न वेदत्रयमीक्षते ॥ १ ॥

२. १. अथर्वभिन्नं यच्छान्तं तच्छान्तं नेतरैस्त्रिभिः ।
विज्ञानं त्रिषु लोकेषु जायते ब्रह्मवेदतः ॥
२. अथर्वा सृजते प्योरमद्भुतं शमयेत्तथा ।
अथर्वा रक्षते यज्ञं यज्ञस्य पतिरङ्गिराः ॥
३. दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानामनेकधा ।
शमयिता ब्रह्मवेदज्ञस्तस्माद्रक्षिता भृगुः ॥
४. ब्रह्मा शमयेन्नाध्वर्युर्न छन्देगो न बह्वृचः ।
रक्षांषि रक्षति ब्रह्मा ब्रह्मा तस्मादथर्ववित् ॥
५. सेनाया रक्षणे तस्मात्स्वराष्ट्रपरिवृद्धये ।
शान्त्यर्थं च महीपालो वृणुयाद्भार्गवं गुरुम् ॥ २ ॥

३. १. गुरवे पार्थिवो दद्यात्कोटिं वरणदक्षिणाम् ।
अर्धमर्थं महीभागं तृतीयं तु त्रिभागतः ॥
२. एवं भूमिप्रमाणेन कोटिभागं विनिर्दिशेत् ।
येन वा परितुष्येत गुरुस्तत्पार्थिवश्चरेत् ॥
३. घ्नन्ति दैवोपसर्गाश्च न च देवोऽभिवर्षति ।
वीरास्तत्र न सूयन्ते यद्राष्ट्रमपुरोहितम् ॥
४. न हविः प्रतिगृह्णन्ति देवताः पितरो द्विजाः ।
तस्य भूमिपतेर्यस्य गृहेनाथर्वविद्गुरुः ॥
५. समाहिताङ्ग प्रत्यङ्गं विद्याचारगुणान्वितम् ।
पैप्पलादं गुरुं कुर्याच्छ्रीराष्ट्रारोग्यवर्धनम् ॥ ३ ॥

४. १. तथा शौनकिनं वापि वेदमन्त्रविपश्चितम् ।
राष्ट्रस्य वृद्धिकर्तारं धनधान्यादिभिः सदा ॥

२.४.२. अथर्वणादृते नान्यो नियोज्योऽथर्वविद्गुरुः ।
नृपेण जयकामेन निर्मितोऽग्निरिवाध्वरे ॥

३. बह्वृचो हन्ति वै राष्ट्रमध्वर्युर्नाशयेत्सुतान् ।
छन्दोगो धननाशाय तस्मादाथर्वणो गुरुः ॥

४. अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा यस्य स्याद्बह्वृचो गुरुः ।
देशराष्ट्रपुरामात्य नाशस्तस्य न संशयः ॥

५. यदि वाध्वर्यवं राजा नियुनक्ति पुरोहितम् ।
शस्त्रेण वध्यते क्षिप्रं परिक्षीणार्थवाहनः ॥ ४ ॥

५. १. यथैव पङ्गुरध्वानमपक्षी चाण्डजो नभः ।
एवं छन्दोगगुरुणा राजा वृद्धिं न गच्छति ॥

२. पुरोधा जलदो यस्य मौदो वा स्यात्कदाचन ।
अब्दाद्दशभ्यो मासेभ्यो राष्ट्रभ्रंशं स गच्छति ॥

३. पलालकमिदं सर्वमृग्यजुःसामसंस्थितम् ।
सारं सारपरं धान्यमथर्वाङ्गिरसो विदुः ॥

४. त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयोऽग्नयः ।
अर्धमात्रे लयं यान्ति वेदश्चाथर्वणः स्मृतः ॥

५. न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः ।
अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥ ५ ॥

६. १. गुरुणा पैप्पलादेन वेदमन्त्रविपश्चिता ।
वर्धते धनधान्येन राष्ट्रमेवं न संशयः ॥

२. स्तब्धं नृशंसं प्रमत्तं श्रद्धाहीनमशास्त्रगम् ।
भूतिकामो न याचेत दातारमपि पार्थिवम् ॥

३. सहस्राणां शतं जप्त्वा गायत्र्यायाज्ययाजकः ।
पूयते भ्रूणहाप्येवं चाण्डालान्नाद एव च ॥

२.६.४. सर्वद्रव्य परित्यागाच्छुद्धिरन्यैरुदाहृता ।
अन्यैश्चतुर्णां वेदानामधीत्याद्योत्तमा ऋचः ॥

५. याजनादभिचाराद्वा क्वचिद्वा मन्त्रकर्मणि ।
पूतानेव द्विजान्प्राहुरग्निकाञ्चन वर्चस इति ॥६॥

इति राष्ट्रसंवर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

३. राजप्रथमाभिषेकः

[यह परिशिष्ट स्वयं कौशिक सूत्र की १७वीं खण्डिका की—जिसका सन्दर्भ संकेत भी किया गया है—परिशिष्ट है।

१. एक श्लोक के अपवाद के अतिरिक्त इस सूत्रवत् गद्य में समारोह में आवश्यक वस्तुओं की सूची दी गई है; इस बात के भी अनेक तार्किक प्रमाण दिये गये हैं कि इन वस्तुओं को क्यों सर्वथा नवीन होना चाहिये। पुरोहित का विस्तार से वर्णन किया गया है और किसी अन्य परिवार में भी पुरोहित के पद पर रह चुके पुरोहित के प्रति आपत्ति की गई है। दक्षिणा का भी उल्लेख है।

२.१. दक्षिणा सम्बन्धी नियमों को छन्दबद्ध भाषा में दुहराया गया है।

२.२—३.८. पुरोहित के कुछ दोषों तथा किसी ऐसे पुरोहित की नियुक्ति के, जो अथर्वन् न हो, दुष्परिणामों का श्लोक और त्रिष्टुभ में विवेचन किया गया है।]

राजप्रथमाभिषेकः

३.१.१. ॐ अथ राजप्रथमाभिषेके प्रकृतिद्रव्याणि परीक्षेत ॥

२. तद्यथा ॥

३. रथ सिंहासनासिछत्रचामरध्वजगजवाजिवस्त्रालंकार-सांवत्सरचिकित्सकपुरोहितादीन्य,

४. उपयुक्तानि नोपयोजयेत् ॥

५. श्मशानानल देवतानि निहितानि द्रव्याणीत्य,

६. आचार्यपुरोहितवज्रमुखतैत्याह दुर्मतिः स भारद्वाजो,

७. न ह्यग्नेरिवोपयुक्तस्योपयोगो विद्यत इति-पराशरो,

८. ब्रह्मा ब्रह्माण्डाग्निरिवाप्रमेयो,

९. नान्यकुलोपयुक्तो,

१०. यस्यान्यकुलोपयुक्तः पुरोधाः शान्तिक पौष्टिक-प्रायश्चित्तीयाभिचारिकनैमित्तिकोर्ध्वदेहिकान्यथर्व-विहितानि कर्माणि कुर्यात् स तस्य प्रत्यङ्गिरो भूत्वा हस्त्यश्वरथपदातिकं प्रकृतिमुखेभ्यो······

३.१.११. वरिष्यन्न पुनः कुर्यादन्यं राजा पुरोहितम् ।
निर्माल्यमिव तं राजा नान्यो भूयः समाचरेत् ॥

१२. स्वजस्रं ह्यग्नौ हेतुर्भगवतो व्याधितपतितोन्मत्ताभिशस्त-
निन्दितप्रहीणप्रध्वस्तसंप्रसारणमृत्विक् ॥

१३. तस्मात्कुलीनं श्रोत्रियं भृग्वङ्गिरोविदं विनयाकृति-
शौचाचारयुक्तमलोलुपं व्रतनियमचारित्रवृत्त-
लक्षणगुणसंपन्नं संधिविग्रहचिन्तकं माहेन्द्रजाल-
प्रभृतिकर्मादिष्वभिविदकं जितस्थानासनं
हिमातपवर्षसहं ह्रीधृतिकमार्जवं शमदमदयादान-
शक्तिसंपन्नं बृहस्पत्युशनसोः स्थानाकृति प्रमाणं
वर्णाश्रुतवपुषा चानुमेयं तेजस्विनं गम्भीरं
सत्वयुक्तं गुरुं वृणीयाद्भूपतिरिति ॥

१४. मधुपर्काद्येन विधिना यथार्थं संपाद्य-
दक्षिणां दद्यात् ,

१५. कोटिमध्यात्तृतीयं भागं,

१६. यथाभूमिप्रमाणेन वा,

१७. हस्त्यश्वं नरयानं दिव्यमाभरणमातपत्रं
हिरण्यं क्षितिगोधनधान्यरत्नादिकं च गुरवे
दद्याद् ,

१८. येन वा परितुष्येत ॥

१९. अभिषेकः संहिताविधौ व्याख्यातः ॥ १ ॥

२. १. हस्त्यश्वं गुरवे दद्यान्नरयानं तथैव च ।
दिव्यमाभरणं चैव आतपत्रादिमेव च ॥

२. उच्छिष्टार्थं न गृह्णीयान्मङ्गलार्थं महीपतिः ।
मन्त्रौषध्यो न सिध्यन्ति राजा तत्र विनश्यति ॥

३.२.३. नातिदीर्घं नातिह्रस्वं नातिस्थूलं कृशं तथा ।
न च हीनातिरिक्ताङ्गं क्वचित्कुर्यात्पुरोहितम् ॥

४. हीनाधिकाङ्गं पतितं विवर्णम्
स्तेनां जडं क्लीबमशक्तियुक्तम् ।
भिन्नस्वरं काणं विरूपनेत्रं
द्वेष्यं च राजा गुरुं नैव कुर्यात् ॥

५. हीनाधिकाङ्गे पुरराष्ट्रहानिः
काणे जडे वाहनकोशनाशः ।
स्तेने त्वशक्ते च समस्तदोषाः
क्लीबे विवर्णे नृपतिर्विनश्येत् ॥ २ ॥

३. १. भिन्नस्वरे जायते गात्रभेदो
द्वेष्ये गुरौ विप्रतिपत्तिमाहुः ।
विवर्णनेत्रे पतिते तु पुत्रान्-
अध्वर्युणा च निहन्ति पौत्रान् ॥

२. कृष्णे केशक्षयं विद्याद्रक्ते वाहनसंक्षयः ।
पिङ्गलः पार्थिवं हन्याद्राष्ट्रं हन्यात्तु केकरः ॥

३. बह्वृचं हि नियुञ्ज्याद्यः पौरोहित्ये तु पार्थिवः ।
स तारपङ्के हस्तीव सह तेनैव मज्जति ॥

४. अध्वर्युं हि नियुञ्ज्याद्यः पौरोहित्ये तु पार्थिवः ।
उत्तितीर्षुरिवास्मानमादत्ते स्ववधाय सः ॥

५. वधबन्धपरिक्लेशं कोशवाहनसंक्षयः ।
करोत्येतान्वयेऽवस्थास्तपोयुक्तोऽपि सामगः ॥

६. अन्वयाकृतिसंपन्नं तस्माद्भृग्वङ्गिरोविदम् ।
गोत्राङ्गिरसवासिष्ठं राजा कुर्यात्पुरोहितम् ॥

३. ३. ७. मखेषु राष्ट्रेषु पुरेषु चैव
सेनासु राज्ञां स्वनिवेशनेषु ।
य उत्पातास्त्रिविधा घोररूपास्
तान्सर्वाञ्छमयेद्ब्रह्मवेदवित् ॥
८. तस्माद्गुरुं वेदरहस्ययुक्तं
चतुर्विधे कर्मणि चाप्रमत्तम् ।
शान्तं च दान्तं च जितेन्द्रियं च
कुर्यान्नरेन्द्रः प्रियदर्शनं च ॥
प्रियदर्शनं चेति ॥ ३ ॥

इति राजप्रथमाभिषेकः समाप्तः ॥ ३ ॥

४. पुरोहितकर्माणि

१. १–१९. स्वस्त्ययनकर्म, अर्थात् राजा के प्रत्येक उपकरण की प्रतिदिन प्रातःकाल स्वस्ति ।

१.२०–२४. ऐसी आठ भाग्यशाली वस्तुओं के नाम जिनका राजा को प्रतिदिन दर्शन और पूजन करना चाहिये । इन वस्तुओं की रचना से सम्बद्ध आख्यान ।

२. ऐसे कर्म, विशेष रूप से स्वर्णदान और तिलदान, जिन्हें राजा को प्रतिदिन अवश्य सम्पन्न कर लेना चाहिये ।

३. रात्रिकालीन सुरक्षा की प्राप्ति के लिये भोजन से निर्मित रात्रिदेवी की प्रतिमा के सम्मुख किये जाने वाले एक कर्म का उल्लेख ।

४. पैठीनसि द्वारा आरम्भ किये गये इसी समान एक कर्म का (आंशिक उल्लेख) ।

५. इसी प्रकार का एक अन्य कर्म ।

६. अथर्वन् पुरोहित रखने का महत्त्व-प्रतिपादन ; महाशान्ति, भूमिदोह और गोतर्पण आदि कर्मों के नियमित सम्पादन के लिये निर्धारित फलों का उल्लेख । (इस परिशिष्ट की परिशिष्ट ६९.६.५–७.५ के साथ समानता है ।)

पुरोहितकर्माणि

४.१.१. ॐ अथ पुरोहितकर्माणि ॥ राज्ञः प्रातरुत्थितस्य कृतस्वस्त्ययनस्या ।

२. अथ पुरोहितः स्नातानुलिप्तः शुचिः शुक्लवासाः सोष्णीषः सविता प्रसवानामिति व्याख्यातम् ॥

३. इममिन्द्र वर्धयेत्युक्तम् ॥

४. परिधत्तेति द्वाभ्यां राज्ञो वस्त्रमभिमन्त्र्य प्रयच्छेत् ॥

५. यदाबध्नन्नित्यलंकारान् ॥

६. सिंहेव्याघ्र इति सिंहासनम् ॥

७. यस्ते गन्ध इति गन्धान् ॥

८. एहि जीवं त्रायमाणमित्यक्षिणी अङ्क्ते ॥

९. वातरंहा इत्यश्वम् ॥

१०. हस्तिवर्चसमिति हस्तिनम् ॥

११. यत्ते माता यत्ते पितेति नरयानम् ॥

१२. खड्गं चाभिमन्त्रयामीति खड्गम् ॥

४.१.१३. खड्गं चाभिमन्त्रयामि यः शत्रून्मर्दयिष्यति ।
मर्दिताः शत्रवोऽनेन वशमायान्तु ते सदेति ॥

१४. पर्यङ्कमासनं खड्गं ध्वजं छत्रं सचामरम् ।
रथमश्वगजं श्रेष्ठं धनुर्वर्म शरेषुधिम् ॥

१५. आञ्जनं सन्धमाल्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
सर्वाञ्छान्त्युदकेनैतानभ्युक्ष्येच्चाभिमन्त्रयेत् ॥

१६. दूर्वादीन्मूर्ध्नि निक्षिप्य स्वस्त्ययनैरभिमन्त्रयेत् ।
अभयं द्यावापृथिवी इत्यभिमन्त्रितो ।
ब्राह्मणान्प्रणिपत्य प्राक् ॥

१७. युष्मत्प्रसादाच्छान्तिमधिगच्छामीति ॥

१८. तथास्त्वित्युक्तो निर्गच्छेदिति ॥

१९. एवं कृतस्वस्त्ययनो यदेवावलोकयति तत्सिध्यति ॥

२०. तदपि श्लोकाः ॥

२१. असुरैः पीड्यमानस्तु पुरा शक्रो जगत्प्रभुः ।
कारयामास विधिवत्पुरोधस्त्वे बृहस्पतिम् ॥

२२. स वृतो भयभीतेन शमनार्थं बुभूषता ।
मङ्गलानि ससर्जाष्टावभयार्थं शतक्रतोः ॥

२३. प्रोक्तानि मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।
भूमिः सिद्धार्थकाः सर्पिः शमी व्रीहियवौ तथा ॥

२४. एतानि सततं पुण्यानि संपश्यन्नर्चयन्नपि ।
न प्राप्नोत्यापदं राजा श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १ ॥

२. १. अथ राजकर्माणि ।

२. विश्वावसौ मुहूर्ते स्नातोऽभिषेकमन्त्रैरभिमन्त्रितः ॥

३. अनुलेपनैरनुलिप्तः ॥

४. पूर्वोक्तेन विधिना वस्त्रालंकारादिभिः

५. सुवर्णनिष्कं कृष्णलं वा वामहस्तेन संगृह्य ॥

४.२.६. यद्दुःकृतं यच्छबलं सर्वं पाप्मानं दहत्वित्य्
७. अनेन मन्त्रेण सुवर्णं शरीरे निघृष्य दक्षिणेन हस्तेन विप्राय दद्याद् , ।
८. धेनुं चारोगाम् ,
९. अपरिमितगुणान्तिलान्सौवर्णमये ताम्रमये वा पात्रे स्थापयित्वा यदज्ञानादित्यभिमन्त्र्य विप्राय दद्यात् ॥
१०. यदज्ञानात्तथा ज्ञानाद्यन्मया शबलं कृतम् ।
तत्सर्वं तिलदानेन दह्यतामिति हि प्रभो ॥
११. भूमिश्च सस्यसंपन्ना ब्राह्मणे वेदपारगे ।
यथाशक्ति प्रदेया हि बृहस्पतिवचो यथा ॥
१२. स भुक्त्वा त्रिविधान्भोगान्सप्तसागरमेखलाम् ।
पृथिवीं प्राप्य मोदेत चन्द्रवत्पृथिवीपतिः ॥
१३. अन्नं तु त्रिविधं नित्यं प्रदद्यात्तु द्विजातये ।
तूर्यघोषेण संयुक्तः कृतस्वस्त्ययनस्तथा ॥
१४. गृहदेवांस्तु संपूज्य कार्यश्चाप्युत्सवो गृहे ।
छत्रादीनि च यानानि पूजयेद्विधिवत्स्वयम् ॥
१५. पुष्पैश्च विविधैः शुभ्रैः फलैश्चाप्यर्चयेद्बुधः
तस्मात्सर्वाणि सततं दानानि तु महीपतिः ।
दत्त्वा श्रद्धान्वितो विप्रैर्वृतो भुञ्जीत वाग्यतः ॥ २ ॥
३. १. अथ पिष्टमयीं रात्रिं चतुर्भिर्दीपकैः सह ।
अर्चितं गन्धमाल्येन स्थापयेत्तस्य चाग्रतः ॥
२. नमस्कृत्वा ततो रात्रिमर्चयित्वा यथाविधि ।
धूपेन चान्नपानेन स्तोत्रेण च समर्चयेत् ॥
३. पाहि मां सततं देवि सराष्ट्रं ससुहृज्जनम् ।
उषसे नः प्रयच्छस्व शान्तिं च कुरु मे सदा ।
येत्वां प्रपद्यन्ते देवि न तेषां विद्यते भयम् ॥

४.३.४. रात्रिं प्रपद्ये जननीं सर्वभूतनिवेषनीम् ।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम् ॥
५. संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रिं भद्रे पारमशीमहि ॥
६. यां सदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।
सायं प्रातर्नमस्यन्ति सा मां रात्र्यभिरक्षत्विति ॥ ३ ॥

४. १. आ रात्रि पार्थिवमिषिरा योषा त्रायमाण इत्य् रात्र्याणि ।
२. ममोभा मह्यमाप इति शुक्ताभ्यामन्वालभ्य जपेत् ।
३. यो नः स्व इति पञ्चभिः सर्षपाञ्जुहुयात् ॥
४. योऽस्मिन्यस्त्वा मातुरिति दीपेन नृपस्योपरि त्रिष्परिहृत्य परिष्कृते प्रयच्छेत् ॥
५. अभयमित्यृचा चतस्रः शर्कराः प्रदक्षिणं प्रतिदिशं क्षिपेत् ॥
६. एह्यश्मानमातिष्ठेति पञ्चमीमधिष्ठापयेत् ॥
७. न तं यक्ष्मा ऐतु देव इति गुग्गुलकुष्ठधूपं दद्यात् ॥
८. यस्ते गन्धस्त्र्यायुषमिति भूतिं प्रयच्छेत् ॥
९. दूष्या दूषिरसीति प्रतिसरमाबध्य ।
१०. अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तादिति शर्करान्प्रदक्षिणं प्रतिदिशं क्षिपेत् ॥
११. बहिर्निःसृत्योत्तरेण गत्वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य सुहृदे कुर्याच्छृद्धते कुर्यात् ॥
१२. नैशमभयं कर्म मौसलीपुत्रः पैठीनसिः ॥ ४ ॥

५. १. अथातो रात्रिसूक्तानां विधिमनुक्रमिष्यामः ॥
२. शुचिः शुक्लवासाः पुरोहितः ॥
३. पार्थिवस्य पश्चिमाम्संध्यामुपास्य दर्भैः पवित्रपाणी राजानमभिगम्य,

४.५.४. पिष्टमयीं रात्रिं कृत्वा ।
५. अन्नपान धूपदीपैरर्चयित्वा माल्यैश्च ॥
६. प्रज्वलितैश्चतुर्भिर्दीपकैरर्चयित्वा ॥
७. आ रात्रि पार्थिवमिषिरा योषेति सूक्तद्वयेन रात्रिमुपस्थाय ॥
८. त्रायमाणे विश्वजिते अह्ने च त्वेति राजानं प्रदक्षिणं त्रिः कृत्वा,
९. राजवेश्मनि द्वारे विसर्जयित्वा ॥
१०. न तं यक्ष्मा ऐतु देव इति गुग्गुलु कुष्ठधूपं दद्याद् ,
११. यस्ते गन्ध इति भूतिमभिमन्त्र्य,
१२. त्र्यायुषमिति राज्ञे रक्षां कृत्वा ॥
१३. असपत्नमिति शर्करामभिमन्त्र्याङ्गुष्ठात्प्रदक्षिणं प्रतिदिशं क्षिपेत् ।
१४. शान्ता द्यौरिति जपित्वा राजानं वासगृहं नयेत् ॥
१५. भूतिना रक्षां कृत्वा निष्क्रम्यै-
१६. वमेवमहरहः कुर्यात् ॥ ५ ॥

६.१. यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः ।
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥
२. यस्य राज्ञो जनपदे स नास्ति विविधैर्भयैः ।
पीड्यते तस्य तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव मज्जति ॥
३. तस्माद्राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम् ।
दानसंमानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् ॥
४. नित्यं च कारयेच्छान्ति ग्रहऋक्षाणि पूजयेत् ।
भूमिदोहान्प्रकुर्वीत देवतायतनेषु च ॥
५. चतुष्पथेषु गोष्ठेषु तीर्थेष्वप्सु च कारयेत् ।
गोतर्पणं च विधिवत्सर्वदोषविनाशनम् ॥
६. य एवं कारयेद्राजा सर्वकालं जितेन्द्रियः ।
अनन्तं सुखमाप्नोति कृत्स्नां भुङ्क्ते वसुंधराम् ॥६॥

इति पुरोहितकर्माणि समाप्तानि ॥ ४ ॥

५. पुष्याभिषेकः

[पुष्य नक्षत्र में राजा के लिये किया जानेवाला शुद्धिकर्म ।
१–४.१. कर्म की तैयारी : जलप्राप्ति; उसमें रखे जाने वाले पौधे; उसका आशीर्वाद, सिंहासन को तैयार करना ; बलिसम्बन्धी निर्देश ।
४.२–५. शुद्धिकर्म ।
४.५–५.७. राजा द्वारा प्रदत्त उपहार और समापन कर्म ।]

पुष्याभिषेकः

५.१.१. ॐ अथ पुष्याभिषेकस्य विधिं वक्ष्यामि सांपदम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तं राजा कुर्यात्पुरोहितम् ॥
२. सौवर्णराजतैस्ताम्रैः कलशैः पार्थिवैरपि ।
सहस्रेण शतेनाथ तोयग्रहणमिष्यते ॥
३. चतुर्णां सागराणां तु नदीनां च शतस्य तु ।
अभिषेकाय राज्ञस्तु तोयमाहृत्य यत्नतः ॥
४. एकद्वित्रिचतुर्णां वा सागरस्य तु पञ्चमम् ।
ओषधीस्तेषु सर्वेषु कलशेषूपकल्पयेत् ॥
५. सहा च सहदेवी च बला चातिबला तथा ।
मदयन्ती वचा श्वेता व्याघ्रदन्ती सुमङ्गला ॥ १ ॥
२.१. शतावरी जयन्ती च शतपुष्पा सचन्दना ।
प्रियङ्गु रोचनोशीरममृता च ससारिका ॥
२. अश्वत्थप्लक्षबिल्वानां न्यग्रोधपनसस्य च ।
शिरीषाम्रकपित्थानां पल्लवैः समलंकृतान् ॥
३. हेमरत्नौषधीबिल्वपुष्पगन्धाधिवासितान् ।
आच्छादितान्सितैर्वस्त्रैरभिमन्त्र्य पुरोहितः ॥
४. सावित्र्युभयतः कुर्याच्छं नो देवी तथैव च ।
हिरण्यवर्णाः सूक्तं च अनुवाकाद्यमेव च ॥

५.२.५. धरणी पादपीठं स्याद्दूर्वामूलाङ्कुराञ्छुभान् ।
तस्योपरि न्यसेत्पीठं हैमं रौप्यमथापि व ॥ २ ॥

३. १. अनडुद्व्याघ्रसिंहानां मृगस्य च यथाक्रमम् ।
चत्वारि चर्माण्येतानि पूर्वादारभ्य विन्यसेत् ॥
२. चातुर्होत्र-विधानेन जुहुयाच्च पुरोहितः ।
चतुर्दिक्षु स्थितैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
३. बिल्वाहारः फलाहारः पयसावापि वर्तयेत् ।
सप्तरात्रं घृताशी वा ततो होमं प्रयोजयेत् ॥
४. गव्येन पयसा कुर्यात्सौवर्णेन स्रुवेण तु ।
वेदानामादिभिर्मन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्वकैः ॥
५. शर्मवर्मा गणश्चैव तथा स्यादपराजितः ।
आयुष्यश्चाभयश्चैव तथा स्वस्त्ययनो गणः ॥ ३ ॥

४. १. एतान्पञ्च गणान्हुत्वा वाचयेत द्विजोत्तमान् ।
हिरण्येनाक्षतार्घेण फलैश्च मधुसर्पिषा ॥
२. पुण्याहं वाचयित्वास्य आरम्भं कारयेद्बुधः ।
तिष्यनक्षत्रसंयुक्ते मुहूर्ते करणे शुभे ॥
३. उच्चैर्घोष इति तूर्याण्यभिमन्त्र्य पुरोहितः ।
सर्वतूर्यनिनादेन अभिषिक्तो ह्यलंकृतः ॥
४. सिंहासनं समारुह्य पीठिकां वा यथाक्रमम् ।
चामरछत्रसंयुक्तं प्रतिहारविभूषितम् ॥
५. मत्तद्विपचतुष्कं च चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ।
उपविष्टस्ततो राजा प्रजानां कार्येद्धितम् ॥
अकरा ब्राह्मणा गावः स्त्रीबालजडरोगिणः ॥ ४ ॥

५. १. ततस्तु दर्शनं देयं ब्राह्मणानां नृपेण तु ।
श्रेणीप्रकृतिमुख्यानां स्त्रीजनं च नमस्करेत् ॥

५.५.२. आशिषस्ते हि दास्यन्ति तुष्टा जनपदा भुवि ।
एवं प्रजानुरज्येत पृथिवी च वशा भवेत् ।
३. पुरोहितं मन्त्रिणं च सेनाध्यक्षं तथैव च ॥
आश्वाध्यक्षं गजाध्यक्षं कोष्ठागारपतिं तथा ॥
४. भाण्डागारपतिं वैद्यं दैवज्ञं च यथाक्रमम् ।
यथार्हेण च योगेन सर्वान्संपूजयेन्नृपः ॥
५. राज्यं पुरोहिते न्यस्य शेषाणां च यथाक्रमम् ।
स्थानान्तराणि चान्यानि दत्त्वा सुखमवाप्नुयात् ॥
६. दूर्वासिद्धार्थकान्सर्पिः शमीव्रीहियवौ तथा ।
शुक्लानि चैत्र पुष्पाणि मूर्ध्नि दद्यात्पुरोहितः ॥
७. अथर्वविहितो ह्येष विधिः पुष्याभिषेचने ।
राजास्नातो महीं भुङ्क्ते शक्रलोकं स गच्छति ॥ ५ ॥

इति पुष्याभिषेकः ॥ ५ ॥

६. पिष्टरात्र्याः कल्पः

[यह भोज्य सामग्रियों से निर्मित रात्रि की प्रतिमा के सम्मुख किया जानेवाला कृत्य है ।

१. कृत्य की तैयारी ; प्रतिमापूजन तथा उसके बाद राक्षसों आदि को राजा की शैय्या से दूर रखने का एक कृत्य ।

२. यह प्रत्यक्षतः परिशिष्ट ४.५.९–१६ के समान है ; प्रतिमा का विसर्जन और कृत्य की समाप्ति ।

पिष्टरात्र्याः कल्पः

६.१.१. ॐ अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्यास्यामः ॥

२. अहतवासाः पुरस्तात्तल्पस्य गोमयेन स्थण्डिलमुपलिप्या-

३. हतवस्त्रेण सिंहासनमवछाद्य ॥

४. यां देवाः प्रतिनन्दन्तीति रात्रिमावाहयेत् ॥

५. संवत्सरस्य प्रतिमामिति पिष्टमयीं प्रतिकृतिं कृत्वोदंमुखी-
मुपवेशयेत् ॥

६. छत्रं हिरण्मयं दद्यादासनं च हिरण्मयम् ॥
दद्याच्छुभ्राणि वासांसि शुभ्रं चैवानुलेपनम् ॥

७. शुभ्रमन्नं तथा दद्यात्प्रभूतांश्चैव मोदकान् ।
धूपं च विविधं नित्यं प्रदीपांश्च प्रकल्पयेत् ॥

८. आ मा पुष्टे च पोषे चेत्येताभिरुपस्थाय ।

९. रक्षोघ्नैर्मन्त्रैः सर्षपानभिमन्त्र्य,

१०. आवतस्त इति जपन्समन्तात्तल्पस्यावकीर्य,

११. अयं प्रतिसर इति प्रतिसरमाबध्य शर्करान्प्रतिदिशं क्षिपेत् ॥

१२. धूपशेषं राज्ञे दद्याद् ,

१३. अभयप्रदं कर्म ॥

६.१.१४. पश्चात्सर्वेषु कोणेषु द्विमुखीमेकमुखीं वा ।
सर्वतोविजयां रक्षामेकां वा तेषु चतुर्मुखीम् ॥
१५. एकमुखीं वा सर्वत्राप्रतिरथजप इत्येके
१६. सर्वत्र शर्कराक्षेपश्चेति ॥ १ ॥
२. १. गृहीत्वा पिष्टरात्रिं तु वेश्मद्वारे विसर्जयेत् ।
२. वनस्पतिरसो मध्य इति गुग्गुलकुष्ठधूपं दद्याद्
३. यस्ते गन्ध इति भूतिमभिमन्त्र्य
४. त्र्यायुषमिति राज्ञे रक्षां कृत्वा
५. असपत्नमिति शर्करानभिमन्त्र्याङ्गुष्ठादभिप्रदक्षिणं प्रतिदिशं क्षिपेत् ॥
६. शान्ताद्यौरिति जपित्वा राजानं वासगृहं नयेत् ॥
७. भूतिना रक्षां कृत्वा निष्क्रम्यै-
८. वमेवमहरहः कुर्यादिति ॥ २ ॥

इति पिष्टरात्र्याः कल्पः समाप्तः ॥ ६ ॥

७. आरात्रिकम्

[एक रात्रिकर्म जिसकी प्रमुख विशेषता यह है कि राजा के चारों ओर दीपक की तीन बार परिक्रमा कराई जाती है । प्रस्तुत परिशिष्ट में यह आख्यान आता है कि जब दानव-पुरोहित ने अभिचार कर्म द्वारा इन्द्र को अनिद्रा रोग से त्रस्त कर दिया तब इन्द्र की रक्षा के लिये बृहस्पति अथर्वन् ने इस कर्म तथा विधान का आविष्कार किया था ।]

आरात्रिकम्

७.१.१. ॐ न सुष्वाप पुरा शक्रो दानवानां पुरोधसा ।
प्रयुक्तैरौषधैर्योगैर्मन्त्राणां जपहोमतः ॥

२. प्रणिपत्य बृहस्पतिमथर्वाणं पुरंदरः ।
दानवैः परिभूतोऽहं त्राहिमामित्युवाच ह ॥

३. ततोऽसावेवमुक्तस्तु प्रभूतबलवर्धनम् ।
आरोग्यदं भूतिकरं क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ॥

४. आरात्रिकं हि कर्तव्यं तस्य त्रातुमिदं तदा ।
कृत्वा पिष्टमयं दीपं सुवर्तिस्नेहसंयुतम् ॥

५. अतिनिहः प्रान्यानिति द्वाभ्यामेनं प्रदीपयेत् ।
पात्रे सपुष्पे संस्थाप्य सर्षपांश्च सहाक्षतैः ॥

६. प्रियङ्गु शतपुष्पां च दूर्वां चैव शतावरीम् ।
सपापहारिणीं भूतिं तत्रैव च बलिं न्यसेत् ॥

७. अप्सरोभीः परिवृतो गुरुर्गत्वा पुरंदरम् ।
प्राप्तासत्त्वं सुमनसमासने प्रमुखं स्थितम् ॥

८. प्रेतो यन्त्वेकशतं च दीपं समभिमन्त्रयेत् ।
त्रिः परिभ्रामयेद्राज्ञो मन्त्रिणाथ सुमङ्गलम् ॥

९. शाम्यन्त्यस्य ततो रोगा ग्रहा विघ्नविनायकाः ।
स्वस्त्यस्तु नृपराष्ट्राय स्वस्तिगोब्राह्मणाय च ॥

७.१.१०. ततस्तु शङ्खध्वनिना दीपं गृहीत्वा
स तोयधाराम्प्रयतोऽपि निर्हरेत् ।
पुरोहितो ज्योतिषिकोऽपि वा स्वयं
हितैषिणी धात्र्यथवोपकारिता ॥
११. आचाम्याथ ह राजानमाचम्यादौ पुरोहितः ।
ब्राह्मणाय यथाशक्ति रुक्मं प्रातः प्रदापयेत् ॥
१२. मूलकर्मादिकं तस्य पञ्चगुह्यककारितम् ।
भयं राज्ञो न भवति तेजो वीर्यं च वर्धते ॥
१३. एवं विधानमखिलं विहितं यथावदे-
तत्समस्तशुभदं गदितं नृपाणाम् ।
नैवापदः समुपयान्ति नृपं
कदाचिदारात्रिकं प्रतिनिशं क्रियते तु यस्य ॥

इत्यारात्रिकं समाप्तम् ॥ ७ ॥

८. घृतावेक्षणम्

१. एक कर्मविधि जिसे प्रतिदिन सम्पन्न करना चाहिये ।

इसकी प्रमुख बात यह है कि राजा को घृतयुक्त पात्र में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखना चाहिये ।

१. इस कर्म की दक्षिणा और प्रभावकता ।

घृतावेक्षणम्

८.१.१. ॐ अथ घृतावेक्षणं वक्ष्यामः ॥

२. प्रातः प्रातः शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण
वा प्रबोधितो राजा शयनगृहादुत्थायापराजितां
दिशमभिनिष्क्रम्योपाध्यायं प्रतीक्षेत ॥

३. अथ पुरोहितः स्नातानुलिप्तः शुचिः शुक्लवासाः कृतमङ्गलविरचितोष्णीषी शान्तिगृहं प्रविश्य देवानां नमस्कारं कृत्वा स्वस्तिवाचनमनुज्ञाप्य विनीतवदुपविशेत् ॥

४. यमस्य लोकाद्यथा कलां यो न जीवोऽसीति स्वस्त्ययनं कृत्वोल्लिख्याभ्युक्ष्य परिस्तीर्य शन्तातीयेन तिलान्घृताक्ताञ्जुहुयात् ।

५. तान्हुत्वा सौवर्णराजतमौदुम्बरं वा पात्रं घृतपूर्णं सहिरण्यं घृतस्य जूतिः सहस्रभृङ्गो यमस्य लोकादुरु विष्णो वि क्रमस्वेत्यभिमन्त्र्याज्यं तेज इति तदालभते ॥

६. आज्यां तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।
आज्येन देवास्तृप्यन्ति आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

७. भौमान्तरिक्षदिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतम् ।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्प्रणाशमुपगच्छत्विति ॥

८. तस्मिन्घृतपात्रस्थं हि सर्वमात्मानं च पश्येत् ॥

८.१.९. दध्ना शिरो हृदयमन्वालभ्य जपेत् ॥

१०. उच्चा पतन्तमिति द्वाभ्यां

११. सूर्यस्यावृतमिति प्रदक्षिणमावृत्य शेषं कारयेदित्य-

१२. अत्र श्लोकाः ॥ १ ॥

२. १. अयं घृतावेक्षणस्य प्रोक्तो विधिरथर्वणा ।
उपास्यो नित्यकालं तु राज्ञा विजयकाङ्क्षिणा ॥

५. एतत्समाहरेत्सर्वं प्रयतस्तु समाहितः
राजा विजयते राष्ट्रं नश्यन्ते तस्य शत्रवः ॥

३. द्विजोत्तमाय कपिलां राजा दद्यात्तु गां शुभाम् ।
आशीर्वादं ततस्तेन श्रुत्वा तन्मुखनिःसृतम् ॥

४. गुरुणा वाचितो यस्माद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
पुत्रान्पौत्रांश्च मैत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥

५. आयुष्यमथ वर्चस्यं सौभाग्यं शत्रुतापनम् ।
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं घृतस्यावेक्षणं स्मृतमिति ॥ २ ॥

इति घृतावेक्षणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

श्रीसाम्ब । यमस्य लोकादध्या बभूविथिति ऋचः ६
यथा कलां यथा शफमिति ऋचः
६ घृतस्य जूतिरिति ऋचश् ४
घृतावेक्षणमध्येपैप्पलादा मन्त्राः

॥ ;

९. तिलधेनुविधिः

पुरोहित को तिलधेनु का दान देने की सांस्कारिक विधि।

१.१.-२.४. इस प्रकार की धेनु का निर्माण और इस अवसर पर उच्चरित मन्त्र।

इस स्तर पर मूल कुछ अस्तव्यस्त हो जाता है। यहां सम्भवतः कुछ छूट गया है क्योंकि कर्म की विधि तथा दक्षिणा सम्बन्धी वक्तव्य यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। सम्पादक के विचार से श्लोकों की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिये: ३.१—३ ख; २.५—८; ३.४—५; ३.३ ग घ को २.७ क ख का ही दूसरा पाठ होने के कारण हटा देना चाहिये। तदनन्तर ऐसी अन्य गायों की सूची दी गई है जिनका इसी विधि के अनुसार दान देना चाहिये। इस कृत्य के बिना दिये गये उपहारों की निरर्थकता। सभी पापों के विनाशक के रूप में इस कृत्य की प्रशंसा।

४. १–४. दानदाता के परलोक जाने का वर्णन।

४. ५–६. दानगृहीता की पात्रता; इसकृत्य का समय।

४. ७. इस परिशिष्ट के पठन और श्रवण की फलश्रुतिः।

तिलधेनुविधिः

९.१.१. ॐ अथ

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनीम्।
तिलाः श्वेतास्तिलः कृष्णास्तिला गोमूत्रवर्णकाः॥

२. तिलानां तु विचित्राणां धेनुं वत्सं च कारयेत्।
द्रोणस्य वात्सकं कुर्याच्चतुर्द्रोणा तु गौः स्मृता॥

३. सुवासायां शुचौ भूमौ धूपपुष्पैरलंकृता।
कृष्णाजिने तु कर्तव्या बहूनां वापिकारयेत्॥

४. कर्णौ रत्नमयौ कुर्याच्चक्षुषी दीपकौ तथा।
घ्राणे तु सर्वगन्धांस्तु जिह्वायां शारदं घृतम्।

५. दन्तेषु मौक्तिकं दद्याल्ललाटे ताम्रभाजनम्।
ऊधसि तु मधूशीरमपाने च घृतं मधु॥ १॥

९.२.१. हृदये चन्दनं दद्याज्जङ्घयोरिक्षुकाण्डकम् ।
सुवर्णशृङ्गी रौप्यखुरी रौप्यलाङ्गूलदक्षिणा ॥

२. वस्त्रछन्ना तु दातव्या कांस्यपात्रं तु दोहनी ।

३. प्रजापतिश्चेत्यभिमन्त्र्य विप्राय दद्यात्,

४. तत्र श्लोकाः ॥

५. धेनुं वत्सं च यो दद्याद्विनाथर्वाभिमन्त्रिताम् ।
विनानेन विधानेन देवत्वं नोपजायते ॥

६. विश्वरूपाः स्थिताः सर्वा धेनवः परिकीर्तिताः ।
धेनुत्वं न स प्रयाति विना सूक्ताभिमन्त्रिताम् ।
निष्फलं नश्यते सर्वं विनाभिमन्त्रितं सताम् ॥

७. बालत्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम् ।
वयः परिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरेषु च ॥

८. यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः ।
संध्ययोर्यत्कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥ २ ॥

३. १. प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद्ब्राह्मणपुङ्गवे ।
कृष्णाजिनं गुडधेनुं घृतधेनुं तथैव च ॥

२. सुवर्णरत्नधेनुं च जलधेनुं तथा पराम् ।
क्षीरधेनुं मधुधेनुं शर्करालवणं तथा ॥

३. रसादिधेनूः सर्वान्या अनेन विधिना स्मृताः ।
यत्तु बाल्ये कृतं पापं यौवने चैव यत्कृतम् ॥

४. मानकूटं तुलाकूटं कन्यानृतगवानृतम् ।
उदक्ष्ठीवितं चैव मुसलं चापि लङ्घितम् ॥

५. वृषलीगमनं चैव गुरुदारानिषेवणम् ।
सुरापानस्य यत्पापं तिलधेनुः प्रशाम्यति ॥ ३ ॥

९.४.१. या सा यमपुरे घोरे नदी वैतरणी स्मृता ।
यत्रलोहमुखाः काकाः श्वानश्चैव भयावहाः ॥
२. वालुकान्ताः स्थलाश्चैव पच्यन्ते यत्र दुष्कृतः ।
असिपत्त्रवनं यत्र शालूकाः शाल्मली तथा ॥
३. तान्सुखेन व्यतिक्रम्य धर्मराजाश्रमं व्रजेत् ।
स्वागतं ते महाभाग स्वस्ति तेऽस्तु महामते ॥
४. विमानमेतद्योग्यं ते मणिरत्नविभूषितम् ।
अत्रारुह्य नरश्रेष्ठ गच्छ त्वं परमां गतिम् ॥
५. मा च चारभटे दद्यान्मा च दद्यात्पुरोहिते ।
मा च काणे विरूपे च कुष्ठिव्यङ्गे तथैव च ॥
६. वेदान्तगाय दातव्या वेदान्तगसुताय वा ।
एकैकस्मै च दातव्या माघमासे तु पूर्णिमाम् ॥
७. य इमां पठते नित्यं यश्चेमां शृणुयादपि ।
देवलोकमतिक्रम्य सूर्यलोकं स गच्छति ॥
सूर्यलोकं स गच्छतीति ॥ ४ ॥
इति तिलधेनुविधिः समाप्तः ॥ ९ ॥

नवमं परिशिष्टम् ॥

१०. भूमिदानम्

पर्वतों, नदियों, वृक्षों, महासागरों आदि के चिह्नों से अंकित पृथिवी की गोचर्माकार सुवर्ण प्रतिमा का पुरोहित को दान करने की सांस्कारिक विधि।

१. १–५. प्रारम्भिक नियम

१. ६–२०. कृत्य, जिसे एक आज्यतन्त्र में प्रविष्ट कर दिया जाता है।

१. २१–२२. कृत्य की प्रभावकता।

भूमिदानम्

१०.१.१. ॐ अथ रोहिण्यां सकलायामुपोषितो ब्रह्मा सर्वबीजरसरत्नगन्धावकीर्णं तीर्थोदकपूर्णकलशमादायातिसृष्टो अपामित्यभिषेकमन्त्रैर्यथोक्तैर्दातारमभिषिञ्चति ॥

२. व्रतेन त्वं व्रतपत इति व्रतमुपैति,

३. याचितारदातारावयाचिताशिनावधःशायिनौ भवतो।,

४. व्रतोपचारं,

५. यथाशक्त्यैकरात्रं पञ्चरात्रं द्वादशरात्रं वा व्रतं चरित्वा,

६. श्वो भूते तन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वान्वारभ्याथ जुहुयात् ॥

७. कामसूक्तं कालसूक्तं पुरुषसूक्तं महाव्याहृतिभिः संख्यापूर्विकाभिः सर्वऋत्विजो जुहुत्य-

८. अथ सुवर्णमयीं भूमिं भूमेः प्रतिकृतिं गोचर्ममात्रां कृत्वा,

९. मण्डपवेद्यां समानीय वेद्युत्तरतो यस्यां वेदिमित्युपस्थाप्य,

१०. गिरयस्ते पर्वता इति पर्वतानवस्थाप्य,

११. हिरण्यरजतमणिमुक्ताप्रवालादिभिरुपशोभयेद्यदद: संप्रयतीरिति,

१२. सा मन्दसानेति नदीः कल्पयित्वा रसैश्च परिपूरयेद्

१३. अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामीति समुद्रान्,

१०.१.१४. वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्निति बृहस्पतिनेति वनस्पतीन्यांश्च,

१५. यज्ञे त्वा मनसा संकल्पयेन्मनसा संकल्पयतीह भवतीह भवतीह भवति,

१६. निधिं बिभ्रती बहुधेति नमस्कारयित्वा

१७. सत्यं बृहदित्यनुवाको ये देवा दिव्येकादश स्थेति पुण्याहं वाचयेत् ,

१८. संस्थापयेन्

१९. नव दिवो देवजनेनेत्यभिमन्त्र्य ब्राह्मणेभ्यो दद्याद् ,

२०. दातुरेषास्मै रोहिणी कामं निकामं वा दुग्ध इति

२१. यथा रोहन्ति बीजानि फालकृष्टे महीतले ।
एवं कामाः प्ररोहन्ते प्रेत्येह मनसः सदा ॥

२२. सर्वेषामेव दानानां यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्तत्प्राप्नोति विप्रेभ्यो दत्त्वा भूमिं यथाविधि ॥
दत्त्वा भूमिं यथाविधीति ॥ १ ॥

इति भूमिदानं समाप्तम् ॥ १० ॥

दशमं परिशिष्टम् समाप्तम् ॥

११. तुलापुरुषविधिः

राजा द्वारा पुरोहित को अपने भार के बराबर सुवर्ण दान करने की सांस्कारिक विधि।

१.१.१४. सूत्र शैली में इस कर्म का वर्णन

१. १५. निर्धन व्यक्ति को अपने भार के बाराबर अपेक्षतया कम मूल्यवान वस्तुओं के दान की अनुमति।

२. १. और अधिक विवरण; राजा को उसके शिरस्त्राण, सभी आभूषणों और खड्ग आदि के साथ तौलना चाहिये।

२.२.५. इस कर्म की प्रभावकता की प्रशस्तिः करते हुये कहा गया है कि यह कर्म पापनाशक है और सर्वप्रथम इन्द्र ने इसे सम्पन्न किया था।

तुलापुरुषविधिः

११.१.१. ॐ अथातस्तुलापुरुषविधिं व्याख्यास्यामः-

२. तदुदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे श्रद्धाप्रेरितौ ग्रहणकाले वा,

३. ऋत्विग्यजमानौ कॢप्तकेशश्मश्रू रोमनखानि वापयित्वा,

४. संभारानुपकल्प्य प्राक्तन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वा,

५. महाव्याहृति सावित्रीशान्ति ब्रह्मजज्ञानमिति हुत्वा ॥

६. अग्ने गोभिरग्नेऽभ्यावर्तिन्नग्नेः प्रजातमिति संपातानुदपात्रानीयाभिषेककलशेषु निनयेद्,

७. अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामित्यभिषेचयेद्।

८. इदमापो यथेन्द्रो बाहुभ्यामित्यभिषेचयित्वा ॥

९. यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कारयित्वा वासो गन्धस्रजश्चाबध्नीयात् ॥

१०. तुलां हिरण्यं च पवित्रैरभ्युक्ष्य पुरुषसंमितोऽर्थ इति सप्तभिस्तदारोहयेद्,

११.१.११. अच्युता द्यौरिति चतसृभिरवरोहयेत्
१२. सूर्यस्यावृतमिति प्रदक्षिणमावृत्य ब्राह्मणेभ्यो
निवेदयित्वा, आत्मालंकारान्कर्त्रे दद्यात् ॥
१३. सहस्रदक्षिणं ग्रामवरं,
१४. द्विजानन्नेन तर्पयेत् ॥
१५. अथ चेन्निःस्वपक्षेण यथा संपद्यते धनम् ।
धातुभिः सह तौल्यं तु वासोभिश्च रसैस्तथा ।
व्रीह्यादिसप्तधान्यैर्वा यथा संपद्यते गृहे ॥ १ ॥
२.१. सखङ्ग सशिरस्त्राणः सर्वाभरणभूषितः ।
तपनीयमग्रे कृत्वा पश्चात्तोल्यो नराधिपः ॥
२. इन्द्रेणेदं पुरा दत्तमधिराज्याप्तये वरम् ।
सर्वपापप्रणाशाय सर्वपुण्यविवृद्धये ॥
३. महादानातिदानानामिदं दानमनुत्तमम् ।
अक्षय्यफलदं श्रेष्ठं दातॄणां श्रेयवर्धनम् ॥
४. यत्पापं स्वे कुले जातैस्त्रिः सप्त पुरुषैः कृतम् ।
तत्सर्वं नश्यते क्षिप्रमग्नौ तूलं यथा तथा ॥
५. अनामयं स्थानमवाप्य देवैर्
अलङ्घनीयं सुकृतैर्हिरण्मयैः ॥
सुवर्णतेजाः प्रविमुक्तपापो
दिवीन्द्रवद्राजति सूर्यलोके ॥
दिवीन्द्रवद्राजति सूर्यलोकेति ॥ २ ॥
इति तुलापुरुषविधिः समाप्तः ॥
एकादशमं परिशिष्टम् ॥ ११ ॥

१२. आदित्यमण्डकः

पुरोहित को सूर्य-प्रतीक के रूप में एक ऐसा गोलाकार अपूप समर्पित करने का कल्प जिसे घृत और गुड़ सहित एक थाल में रखकर एक सुवर्ण के टुकड़े से ढँक देना चाहिये।

१. १-७ इस कल्प का सूत्रशैली में वर्णन।

१. ८-१० इसका फल ॥

आदित्यमण्डकः

१२.१.१ ॐ अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणामुत्तमः स्यामिति स भास्करायापूपं दद्यात्,

२. तस्य कल्पो

३. यवगोधूमानामन्यतमचूर्णेन मण्डलाकृतिं संश्रप्य,

४. पात्रे कृत्वापिहितं

५. सगुडाज्यसुवर्णशकलं चोपरिष्टान्निधायार्चयेद्रक्तकुसुमैर्;

६. विषासहिमित्यभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

७. तत्र श्लोकाः ॥

८. अनेन विधिना यस्तुपूपं दद्याद्द्विजातये।
प्रयच्छेत्सततं प्राज्ञस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

९. आरोग्यवान्वर्चस्वी च प्रजावान्पशुमांस्तथा।
धनवानन्नवाञ्छ्रीमांस्तथा सर्वजनप्रियः।

१०. अपमृत्युशतं साग्रं नाशयत्यविचारतः।
प्रदत्तं सूर्यलोकं च प्रापयेत्परमं पदम् ॥
प्रापयेत्परमं पदमिति ॥ १ ॥
इत्यादित्यमण्डकः समाप्तः ॥ १२ ॥
द्वादशमं परिशिष्टम् ॥

—o—

१३. हिरण्यगर्भविधिः

हिरण्यगर्भ के साथ राजा का सायुज्य प्राप्त करने के कृत्य से सम्बद्ध कर्म। इस कृत्य की प्रमुख विशेषतायें ये हैं : राजा को पञ्चगव्य बलिपदार्थ के उच्छिष्ट से युक्त सुवर्ण पात्र के ऊपर स्नान कराया जाता है। उसके ऊपर जल भी सुवर्ण पात्रों से ही डाला जाता है; तदनन्तर राजा को उक्त सुवर्ण पात्र में बन्द करके हिरण्य गर्भ का ध्यान करने के लिये छोड़ दिया जाता है। बाद में राजा को पात्र से बाहर निकाल कर एक सुवर्ण चक्र से दबाया जाता है। अन्त में ब्राह्मण यह घोषित करते हैं कि हिरण्गर्भ ने राजा को स्वीकार कर लिया है।

१. १-८ प्रारम्भिक कृत्य

१. ९-११ तन्त्रारम्भ

२. १-३.१४. वास्तविक कृत्य

३. १५-४. १०. तन्त्र का समापम, अन्तिम कृत्य; दक्षिणा,

५. १-६. इस कृत्य का फल।

हिरण्यगर्भविधिः

१३.१.१. ॐ अथ हिरण्यगर्भविधिमनुक्रमिष्यामः सर्वपापनोदनम्,

२. उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे श्रद्धाप्रेरितौ ग्रहण-कालें वा,

२. ऋत्विग्यजमानौ क्लृप्तकेशश्मश्रुरोमनखौ स्याताम् ॥

४. अथ ऋत्विक्प्रागस्तंगमनादश्वत्थादरणी आधायाऽग्ने जाय-स्वेति द्वाभ्यां मथ्यमानमनुमन्त्रयते ॥

५. तृतीयया जातं चतुर्थ्योपसमादधाति ॥

६. शुचौ देशे परिधाप्य यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कारयित्वा-

७. ऽग्नेः प्रजातं परियद्धिरण्यं यदाबध्नन्निति हिरण्यस्रजमाग्रथ्य रक्षन्तु त्वेति रक्षां कृत्वा ॥

८. दर्भानास्तीर्याधःशायिनौस्याताम् ॥

९. श्वो भूतेऽभिजिन्मुहूर्ते हिरण्मयं मण्डलाकृति नाभिमात्रं पात्रमाधाय सापिधानं,

१३.१.१०. स्रक्स्रुवाज्यस्थाल्युदपात्रालंकारांश्च

११. परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रम् उपसाद्य परिचरणेनाज्यं परिचर्य नित्यान्पुरस्ताद्धोमान्हुत्वाज्यभागौ चाथ जुहोति ॥ १ ॥

२. १. हिरण्यगर्भाय स्वाहा ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ प्रजापतये स्वाहेति हुत्वा ॥

२. तैरेव नमस्कारं कारयित्वा ॥

३. तैरेवोपस्थाय स्रक्स्रुवाज्यस्थाल्युदपात्रालंकारांश्चेति ॥

४. हिरण्मये राजानं हिरण्यवतीभिः स्नापयित्वा,

५. हिरण्यकलशैस्तस्मिन्पञ्चगव्यं अप आसिच्य,

६. हिरण्यगर्भसूक्तेनांहोमुचेन शान्तातीयेन पञ्चभिश्च नामभिः संपातानानीय,

७. तथैव सदस्यानसदस्यानृत्विजोऽनुज्ञापयेद् ,

८. राजा हिरण्यगर्भत्वमभीप्सत्यस्मिन्भवन्तोऽनुमन्यन्तामिति;

९. तैरनुष्ठितः ॥ २ ॥

३. १. उदेहि वाजिन्निति द्वाभ्यां प्रवेशयेत् ,

२. त्रयस्त्रिंशद्देवता इत्यभिसंधाय तमनुशास्ति,

३. वाचम् नियम्य प्रतिसंहृत्यचेन्द्रियाणि विषयेभ्यो मनसा भगवन्तं हिरण्मयं हिरण्यगर्भं परमेष्ठिनं पुरुषं ध्यायस्वेति ॥

४. तथेति तत्प्रतिपद्यते ॥

५. स सप्तदश मात्रान्तरमस्ति,

६. सप्तदशो वै प्रजापतिः ॥

७. प्रजापतेराप्तत इति विज्ञापयेत्

८. तथैव सदस्यानसदस्याननुज्ञाप्योत्थापयेद् ,

९. उत्थितं हिरण्ययेन चक्रेणाभिन्युब्जयेत् ॥

१०. मा ते प्राण इत्युद्धरेद् ,

१३.३.११. उद्धृतं हिरण्यनाम्नो प्रविमुच्य यस्त्वा मृत्युरित्यपास्येत् ,
१२. संपश्यमाना इत्यवेक्षितो ब्राह्मणान्प्रणिपत्य नमस्कार्य नमो हिरण्यगर्भायेत्य् ,
१३. अथ ह वै हिरण्यगर्भस्येति प्रियतमाय तत उक्तं,
१४. ब्राह्मणा ब्रूयुरुत्तिष्ठ हिरण्यगर्भानुगृहीतोऽसीत्य् ,
१५. अप्रतिरथेन हुत्वा संस्थापयेद् ,
१६. अप्सु ते राजन्वरुणेति वरुणमभिष्टूय स्नात्वा पवित्रैः प्रत्येत्यादित्यमुपतिष्ठन्ते ॥ ३ ॥

४. १. हिरण्यं तव यद्गर्भो हिरण्यस्यापि गर्भजः ।
हिरण्यगर्भस्तस्मात्त्वं पाहि मां महतो महानिति ॥
२. सूर्यस्यावृतमिति प्रदक्षिणमावृत्य ॥
३. गृहानैमीति गृहान्प्रतिपद्य,
४. त्वमग्ने प्रमतिरित्यग्निमुपस्थाप्याथोत्सृजेद् ,
५. अथ द्विजेभ्यो दक्षिणां दशसहस्राणि दद्यात् ॥
६. ग्रामवरं च ॥
७. स्रुक्स्रुवाज्यस्थाल्युदपात्रालंकारांश्चेत्यन्यत्सर्वं सदस्येभ्यो,
८. यावद्वा तुष्येरंस्तावद्वा देयम् ॥ राजा दद्याद् ,
९. यथाकामं ब्राह्मणानन्नेन परिचरेत् ,
१०. तत्र श्लोकाः ॥ ४ ॥

५. १. वेदानां पारगा यस्य चतुर्णां ब्रह्मवित्तमाः ।
तुष्टा यस्याशिषो ब्रूयुस्तस्य यज्ञफलं भवेत् ॥
२. ब्राह्मणानां प्रसादेन सूर्यो दिवि विराजति ।
इन्द्रोऽप्येषां प्रसादेन देवानतिविराजति ॥
३. हिरण्यदानस्य फलममृतत्वमिति श्रुतिः ।
श्रूयते ह्यस्य दाता यः सोऽमृतत्वं समश्नुते ॥

१३.५.४. राजेक्ष्वाकुप्रभृतयः पुरा राजर्षयोऽमलाः ।
दत्त्वा हिरण्यं विप्रेभ्यो ज्योतिर्भूत्वा दिवि स्थिताः ॥
५. य एवं संस्कृतो राजा विधिना ब्रह्मवादिना ।
प्रजानामिह साम्राज्यं ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं च गच्छति ॥
६. अमुष्मिन्ब्रह्मणा सार्धमानन्दं अनुभूय वै ।
ज्योतिर्मयं सत्यलोकं न चैवावर्तते पुनः ॥
न चैवावर्तते पुनरिति ॥ ५ ॥

इति हिरण्यगर्भः समाप्तः ॥ १३ ॥

त्रयोदशमं परिशिष्टम् ॥

—०—

१४. हस्तिरथदानविधः

पुरोहित को हस्तिरथ दान करने की विधि ।

१. १-४ रथ-निर्माण; हाथियों की संख्या; इस दान का पुरस्कार ।

१. ५-७. तन्त्रारम्भ; हविमन्त्र ।

१. ८. दस महादानों की सूची ।

१. ९. अवे० ११. ६, १. के प्रयोग का सामान्य नियम और सभी दानों में आज्यतन्त्र के प्रयोग का विधान ।

१. १०. अश्वदान का पुण्य ।

१. ११-१५ इस कृत्य के विशेष नियम ।

१. १६ कृत्य का फल ।

हस्तिरथदानविधिः

१४.१.१. ॐ अथ हस्तिरथदानानामनुक्रमं वक्ष्ये ॥

२. जातरूपमयं कृत्वा एकचक्रं सुशोभनम् ।
हस्तिभिः सप्तभिर्युक्तमर्चयित्वा यथाविधि ॥

३. अथवा चतुर्भिर्युक्तं हैमं राजतमेव वा ।
अस्पृष्टं दारुजं वापि सर्वसंभारपूरितम् ॥

४. हस्तियुग्मेन संयुक्तं सौरभेययुतेन वा ।
भुङ्क्ते सप्तैव जन्मानि सप्तद्वीपां वसुंधराम् ॥

५. हस्तेन युक्ते चन्द्रमसि, पौर्णमास्याममावास्यां वा पुण्ये वर्क्षे
शुचिः शुचौ देशे तन्त्रमित्युक्तम् ॥

६. प्राञ्चमिध्ममुपसमाधायान्वारभ्याथ जुहुयात् ॥

७. सवित्रे स्वाहा ॥ पतंगाय स्वाहा ॥ पावकाय स्वाहा ॥
सहस्ररश्मये स्वाहा ॥ मार्तण्डाय स्वाहा ॥ विष्णवे स्वाहा ॥
प्रजापतये स्वाहा ॥ परमेष्ठिने स्वाहेति हुत्वा ॥

८. कनकाश्व तिला गावो दासी ग्रहमहीरथाः ।
कन्या हस्ती च विद्या च महादानानि वै दश ॥

१४.१.९. तस्मात्सर्वेषु दानेषु अनुक्तविधिकेषु च ।
अग्निं ब्रूम इति सूक्तमाज्यतन्त्रेण होमयेत् ॥

१०. अश्वदाता व्रजेत्स्वर्गमश्वारूढश्च मानवः ।
पूज्यते देवगन्धर्वैरप्सरोकिंनरैस्तथा ॥

११. हस्तिवर्चसं प्रथतामिति कलशे संपातानानीय युगं योक्त्रं रथमिति सर्वं संप्रोक्ष्य ॥

१२. अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मीति योजयेत् ॥

१३. अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भव उदुह्य प्रति धावतात् ॥

१४. युक्तायार्घं दद्यात् ॥

१५. श्यावैर्युक्तः शितिपद्भिर्हिरण्ययो
यस्य रथः पथिभिर्वर्तते सुखैः ।
स नो हस्तेन सविता हिरण्यभुग्
हिरण्यप्राणिः सवितानोऽभिरक्षतु ॥

१६. बृहद्धस्तिरथं युक्तं हस्तेन तु ददन्नरः ।
सवितुः स्थानमाप्नोति दिव्यां कामजवां सभाम् ॥
दिव्यं कामजवां सभामिति ॥ १ ॥

इति हस्तिरथः समाप्तः ॥

इति चतुर्दशमं परिशिष्टम् ॥ १४ ॥

१५. अश्वरथदानविधिः

पुरोहित को अश्वरथ दान करने की विधि। यह बहुत कुछ गत परिशिष्ट की भाँति है।

१. १-६. कृत्य।

१. ७. दक्षिणा।

१. ८-९. इस कृत्य का फल।

अश्वरथदानविधिः

१५.१.१ ॐ अथाश्वरथदानविधिः ॥

२. गोष्ठ उदकान्ते शुचौ वा देशे आश्वमिध्ममुपसमाधायान्वारभ्याथ जुहुयात् ॥

३. वातरंहा भव वाजिन्युज्यमानित्येतेनाश्वेषु संपातानानीयाश्रान्तस्य त्वेति समानम् ॥

४. त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्र इति सवित्रेऽर्घं दत्त्वा,

५. पुनन्तु मेत्यात्मानमालभ्य जपेद्,

६. रक्षन्तु त्वाग्नय इति यजमानमभिमन्त्र्यसमृद्धिहोमान्ते ॥

७. वरां धेनुं कर्त्रे दद्यादश्वरथं ग्रामवरं चेति ॥

८. य एवं विधिना दद्याद्विदुषेऽश्वरथंसुधीः।
ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं च साम्राज्यं प्रजानामिह गच्छति ॥

९. सप्तानां लोकानामन्ते ज्योतिर्लोकमनामयम्।
गत्वा स परमानन्दं भुङ्क्ते यावद्विभावसुः ॥
भुङ्क्ते यावद्विभावसुरिति ॥ १ ॥

इत्यश्वरथदानविधिः समाप्तः ॥

इति पञ्चदशमं परिशिष्टम् ॥ १५ ॥

१६. गोसहस्रविधिः

१. पुरोहित को एक सहस्र गौवें दान करने की विधि। आज्य-समर्पण के पश्चात् सहस्रवीं गौ के दूध में इन्द्रऔर सोम के लिये चरु पकाना चाहिये। इनके समर्पण के पश्चात् पांच तीर्थों के जल को अभिमन्त्रित करके दस गौवों (प्रति सौ गायों में से अन्तिम) को स्नान करना तथा शेष गौवों पर वही जल छिड़क देना चाहिये। जिस जल में सहस्रवीं गौ को स्नान कराया गया था उसे राजा पर छिड़कना चाहिये। तदनन्तर गौवों को अलंकृत (सहस्रवीं को सर्वप्रथम) करके उनको भोजन तथा जल दिया जाता है और सबका पूजन किया जाता है। सहस्रवीं गौ की पूँछ पकड़ कर पुरोहित अन्य गौवों की परिक्रमा करता है। तदनन्तर गायें ब्राह्मणों को दान कर दी जाती हैं और कृत्य सम्पन्न करानेवाले को दक्षिणा दी जाती है।

२. इस कृत्य के फल की प्रशस्ति।

गोसहस्रविधिः

१६.१.१. ॐ अथातो गो सहस्रविधिः ॥

२. गोष्ठ उदक्रान्ते शुचौ वा देशे प्राग्निमिध्मम्रुपसमाधायान्वालभ्याथ जुहुयात् ॥

३. आ गाव इति सूक्तेनाज्यं जुहुयात् ॥

४. महाव्रीहीणामैन्द्रं चरुं सौम्यं च सहस्रतम्याः पयसि श्रपयित्वा गाव एव सुरभय इत्येतेन जुहुयात् ॥

५. पञ्चानां नदीनां तीर्थोदकम् ॥

६. पश्चादग्नेस्तीर्थोदकेन पूर्णं कलशमवस्थाप्य हिर० यवर्णा इत्यभिमन्त्र्य सं वो गोष्ठेनेति दश गाः स्नापयेत्,

७. त्वरमाणोऽन्याः समभ्युक्ष्य सहस्रतम्याः स्नानोदकेनेममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इति राजानमभिषिच्य,

८. इमा आप इति षड्भिर्यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कृत्वा ॥

१६.१.९. सहस्रतमीं प्रथमामलंकृत्य ॥

१०. आ गावो मामुपतिष्ठन्तामित्युपतिष्ठेत् ॥

११. प्रजावतीः सूयवसादिति च सर्वाः पाययेत् ,

१२. प्रियमशनं दत्त्वाद्भि तृणमघ्न्य इति सहस्रतमीमालभ्य जपेत् ॥

१३. मया गावो गोपतिना सचध्वमिति मन्त्रान्तेनार्घं दत्त्वा ।

१४. सहस्रतम्याः पुछमुपसंगृह्य भूमिष्ट्वा प्रतिगृह्णात्विति जपन् ॥

१५. सहस्रतम्याः पृष्ठतो व्रजन् ॥

१६. सर्वाः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य स्वस्तिवाच्य ब्रह्मणेभ्यो निवेद्य दश गा दक्षिणां कर्त्रे दद्यात्सहस्रतमीं वस्त्रयुग्मं च ॥

१७. तदपि श्लोकाः ॥ १ ॥

२.१. सप्तजन्मानुगं पापं पुरुषैः सप्तभिः कृतम् ।
तत्क्षणाद्विधिनानेन नाशयेद्गोप्रदो नरः ॥

२. सर्वेषां एव दानानां फलं यत्परिकीर्तितम् ।
तदवाप्नोति विप्रेभ्यो गोसहस्रप्रदो नरः ॥

३. अश्वमेधं वृषोत्सर्गं गोसहस्रं च यः सुतः ।
दद्यान्मदीय इत्याहुः पितरस्तर्पयन्ति हि ॥

४. तस्मादनेन विधिना गोसहस्रं ददेन्नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति तत्परमं पदमिति ॥ २ ॥

इति गोसहस्रविधिः समाप्तः ॥

षोडशमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ १६ ॥

१७, १८, १८. ख.

राजकर्मसांवत्सरीयम्

शीर्षक के अनुसार इन परिशिष्टों में वर्ष के विभिन्न दिवसों पर सम्पन्न किये जाने वाले राजकर्मों का विधान किया गया है। कुछ ऐसे कर्मों का, जिनका गत परिशिष्टों में कोइ उल्लेख नहीं है, यहाँ न्यूनाधिक विस्तार से विवेचन किया गया है। प्रथम पाँच खण्डिकाओं में स्थिति ऐसी ही है, और इसी कारण १७ वीं और १८ वीं परिशिष्टों को सम्मिलित रूप से 'परिरिष्ट-द्वयम्' कहा तथा दोनों को एक साथ ही हस्त्यश्वदीक्षा अथवा हस्त्यश्वादिदीक्षा शीर्षक दिया गया है।

१७. १. आश्वयुज, शुक्ल पक्ष की तृतीया का कर्म। यहाँ पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है जिसमें कुछ बातें छूट गई हैं और सम्भवतः १४.१.४–८ को प्रक्षिप्त किया गया है। इस कर्म को 'हस्त्यश्वानां नीराजनम्' कहा गया है, किन्तु यह अश्वों के शुद्धीकरण का कर्म प्रतीत होता है।

१८. २. शुक्लपक्ष के ही नवें दिन का कर्म जिसे 'वाहनानामभयं कर्म' कहा गया है।

१८. १–३. आश्वयुज पूर्णिमा का कर्म—'हस्तिनीराजनम्'। (१७ वीं परिशिष्ट में) सम्पूर्ण रूप से सम्भवतः अश्वों के शुद्धीकरण का ही उल्लेख किया गया है तथा संकलन का अनुक्रम 'हस्त्यश्व'-क्रा ही साधारण क्रम है। फिर भी पाठ की भ्रष्टता तथा 'वाहन' की सन्दिग्धता के कारण निश्चित निर्धारण असम्भव है)।

१८. ख. १. वर्ष के पूर्वार्ध में राजा के जन्मदिन (जन्म-नक्षत्र-दिन-?) का कर्म।

२–८. आश्विन मास के अन्य कर्म।

९. कार्तिक पूर्णिमा का कर्म।

१०. आग्रयणी पूर्णिमा का कर्म।

११. पौष पूर्णिमा का कर्म।

१२. फाल्गुन पूर्णिमा का कर्म।

१३. ग्रीष्म-प्रतिपद का कर्म।

१४. चैत्र पूर्णिमा का कर्म।

१५. चैत्र त्रयोदशी और वैशाख पूर्णिमा के कर्म (यहाँ पाठ में दोष है)

१६. श्रावण पूर्णिमा का कर्म।

१७–१९. निश्चित समयों पर पुनः पुनः किये जाने वाले कर्म।

२०. समाप्तिलेखपत्र।

राजकर्मसांवत्सरीयम्

१७.१.१. ॐ अथ प्रतिसंवत्सरं राजकर्माणि क्रमेण वक्ष्यामः ॥

२. अथाश्वयुजे मासे शुल्कपक्षस्य तृतीयेऽहनि ॥

३. हरिद्रायवानाम् ॥

४. रक्षन्तु त्वाग्नय इति चतसृभी रक्षां अश्वानां बद्ध्वा हस्त्यश्वानां नीराजनं कुर्यात् ॥

५. अश्वोऽसि क्षिप्रजन्मासि ......
प्रदद्यात्स विशुद्धात्मा सप्तद्वीपां वसुंधराम् ॥

६. हस्तेन युक्ते चन्द्रमसि पौर्णमास्याममावास्यायां वा पुण्ये नक्षत्रे शुचौ देशे ॥ तन्त्रमित्युक्तम् ,

७. प्राश्वमिध्यमुपसमाधायान्वारभ्याऽथ जुहुयात् ॥

८. सवित्रे स्वाहा ॥ पतंगाय स्वाहा ॥ पावकाय स्वाहा ॥ सहस्ररश्मये स्वाहा ॥ मार्तण्डाय स्वाहा ॥ विष्णवे स्वाहा ॥ प्रजापतये स्वाहा ॥ परमेष्ठिने स्वाहेति हुत्वा कनकानां बद्ध्वा हस्त्यश्वानां पूर्ववन्नीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥

२. १. अथ नवम्यामपराह्णे वाहनानि स्नापयित्वा, अहतवासा ब्रह्मा द्वादशमितां वेदिं कृत्वा ॥ तन्त्रमित्युक्तम् ॥

२. शान्तिकृत्यादूषणेन वाहनं त्रिः प्रोक्ष्य परीयान् ,

३. निःसालामिति सूक्तं जपन्प्रत्येत्याभिषिञ्चयेदेनम् ,

४. अश्वमलंकृतं शबलकण्ठं कृत्वोपस्थाप्य दध्याद् ,

५. एवमेव मैश्रधान्यान्युदपात्राण्यन्तरासु दिक्षु,

६. तत्रैव देवता यजेत् ॥ अग्निं वायुं वरुणं अश्विनाविति ॥

७. पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा ॥

८. समास्त्वाग्ने त्वं नो अग्ने मा नो विदन्नभयैरपराजितैरायुष्यैः स्वस्त्ययनैरप्रतिरथेनेति च हुत्वा संस्थाप्य,

१७.२.९. अग्नेरदोऽसीत्यहतवासोभिः प्रछाद्य रसैः कुम्भानौदुम्बरान्पूरयित्वा प्रतिदिशमवस्थाप्या ममाग्ने वर्चो अभयं द्यावापृथिवी उदुत्तमं वरुणाश्विना ब्रह्मणा यातमिति जुहुयात् ॥

१०. पौर्णमासी प्रथमेति च जुहुयाद्दुन्दुभिमाहन्यादित्युक्तम् ॥

११. उप श्वासय पृथिवीमिति तत्रैवानुमन्त्रणं च ॥

१२. सर्वाणि च वादित्राणि वाहनानि च ॥

१३. जनस्यान्प्रहर्षय पञ्चमीं प्रतिष्ठापयेत् ॥

१४. न तं यक्ष्मा ऐतु देव इति गुग्गुलु-कुष्ठधूपं दद्यात् ॥

१५. यस्ते गन्धस्त्र्यायुषमिति भूतिं प्रयच्छेत् ॥

१६. दूष्या दूषिरसीति प्रतिसरमाबध्य ये पुरस्तादिति प्रति दिशं क्षिपेत् ॥

१७. बहिर्निःसृत्योत्तरेण गत्वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य सुहृदे कुर्याच्छूद्धते कुर्याद्वाहनानामभयं कर्म ॥ २ ॥

१८.१.१. अथाश्वयुजे मासे पौर्णमास्यामपराह्णे हस्तिनीराजनं कुर्यात् ॥

२. प्रागुदक्प्रवणे देशे यत्र वामनो रमते ।

३. गिरयस्ते पर्वता इत्येत या हस्तशतमर्धं वा मण्डलं परिगृह्य याभिर्यज्ञमिति संप्रोक्षेत् ॥

४. तत्र श्लोकाः ॥

५. दशहस्तसमुत्सेधं पञ्चहस्तं तु विस्तृतम् ।
शान्तवृक्षमयं कुर्यात्तोरणं पुष्टिवर्धनम् ॥

६. शुक्लैः शुक्लाम्बरध्वजैर्माल्यैश्च परिभूषितम् ।
कारयेत बिले शुभ्रे रसैश्च परिपूरिते ।

७. रसैस्त्वामभिषिञ्चामि भूमे मह्यं शिवा भव ।
असपत्ना सपत्नघ्नी मम यज्ञविवर्धनी ॥

८. इमौ स्तम्भौ घृतान्वक्तावुभौ मा यशसावताम् ।
यो मा कश्चाभिदासति तमिमौ स्तम्भौ निर्दहतामित्य् ॥

१८.१.९. उच्छ्रयस्व इमा या ब्रह्मणस्पत इत्येताभ्यां सुवर्णमालापताकैः स्तम्भौ संयोज्य,

१०. तस्याधस्ताच्चतुर्हस्तां वेदिं कृत्वा दर्भपवित्रपाणिर्बलिं पुष्पाणि च दत्त्वा,

११. मधुलाजामिश्रैः स्वस्तिकसंयावकदधिकृसरापूपकापायसघृत-विविधपानभक्षफलैरग्निं परिस्तीर्या-

१२. पो अस्मान्मातरः सूदयन्त्विति चतुरौदुम्बरान्कुम्भान्ह्रदोदकेन पूरयित्वा,

१३. प्रतिदिशमवस्थाप्य दध्याद्रौद्राग्नेयं वायव्यं वारुणामन्त्राः ॥

१४. रक्षोघ्नं कृत्यादूषणं यशस्यवर्चस्यानि च हुत्वौषधीः समादाय द्विहस्तं मण्डलमित्युक्तम् ॥

१५. तत्र श्लोकाः ॥

१६. बृहत्कण्टारिकण्टका लघुकण्टारिका स्मृताः ।
सुवर्णपुष्पी श्वेतगिरि कर्णिका ह्युदिसत्रा ॥

१७. सिंही व्याघ्री च हरिणी ह्यमृता चापराजिता ।
पृश्निपर्णी च दूर्वा च पद्ममुत्पलमालिनी ॥ १ ॥

२. १. तामनुमन्त्रयते ॥

२. वैणवं कटकं अवस्थाप्यादध्यात् ॥

३. द्वैपवैयाघ्रानडुच्चर्म परिस्तीर्य

४. ततो या स्यादधिदेवता तस्यै बलिं दत्त्वा पिण्डानि च दद्यात् ॥

५. हस्तिनमाचामयेत् ॥ २ ॥

३.१. यस्यां दिशि स रिपुर्भवति तां दिशं गत्वा हस्तिनमान-येद्धिरण्येन रजतेन वज्रमणिमुक्तादिभिः शङ्खेन चन्दनेन भद्रदारुणया कुष्ठेन नलदेन रोचनेनाञ्जनेन मनःशिलया पद्मकुमुदोत्पलैर्

१८.३.२. ममाग्ने वर्च इति सूक्तं दक्षिणोत्तरमुखं प्रतिजपेच्,

३. छेषेण गात्राण्यभ्यञ्जयेत्

४. तत्र श्लोकः ॥

५. हस्तिनां रक्षणे दण्डः कर्तव्यो वैणवो नवः ।
षोडशारत्निमात्रस्तु चारुपर्वमनोरमः ॥

६. तेन वारणान्वारयेत् ॥

७. दन्ताग्रेषु तृणानि कृत्वा यथा हव्यं वहसि ग्रसति

८. सुजातं जातवेदसमित्यग्निं प्रज्वालयेत् ॥

९. सुजातं जातवेदसमिति वाचयेद्यथा हव्यमिति नीराजयित्वा ॥

१०. निधिं बिभ्रतीति शालां प्रवेशयेद्

११. अनपेक्षमाणाः स्वानि स्थानानि व्रजन्ति दीर्घायुषो बलवन्तश्च भवन्ति ॥

१२. गोसहस्रं कर्त्रे दक्षिणा ग्रामवरं च ॥ ३ ॥
इति हस्त्यश्वदीक्षा समाप्ता ॥ १७ ॥ १८ ॥

इति परिशिष्टद्वयम् ॥

१८ख.१.१. अथ वर्षशतं प्रवर्धमानो राजानमभिवर्धयिष्यन्संवत्सरे जन्मदिने कुर्यात् ॥ तन्त्रमित्युक्तम् ॥

२. पुनन्तु मा वायोः पूतो वैश्वानरो रश्मिभिरिति पवित्रैः पुण्याहादीनि च मङ्गलैर्यजमानं च संप्रोक्ष्य यदा बध्नन्निति पुष्पाद्यलंकारं वर्जयित्वा माहेन्द्रं चरुं श्रपयेत् ॥

३. लोकपालेभ्यश्च द्वितीयं चरुं श्रपयेत् ॥

४. महां इन्द्रो य ओजसेति सूक्तेन तृतीयायां ह्यग्नौ हुत्वा इन्द्राय स्वाहेत्यादि लोकपालांश्चेष्ट्वा राजानमन्वालभ्य आदिवज्जुहुयादर्वाश्चमिन्द्रमिन्द्रः सुत्रामा इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं मे शतं जीवन्तः शरद इति ॥

१८ख.१.५.रक्षन्तु त्वाग्नय इति चतसृभी रक्षां कृत्वा रोचनया-
लंकुर्यात् ॥ त्रिगुणेन सूत्रेण बद्ध्वा ॥
६. मनायै तन्तुमिति सूक्तेन रक्षासूत्रे संपातं च कृत्वा ॥
७. धाता ते ग्रन्थिमिति बध्नाति ॥
८. उत्तरतन्त्रं हिरण्यं दक्षिणा ॥ १ ॥

२. १. महानवम्यां हस्त्यश्वदीक्षा प्रतिपत्प्रभृति नवरात्रम्,
२. शस्त्रसस्वसंपातः
३. तृतीयां हस्त्यश्ववाहग्राम्याश्वानां कर्म सप्तम्यां हस्त्यश्वानां दर्शनम् ॥
४. अष्टम्यामथ पिष्टमयीमित्यादि, नवम्यां दुर्गापूजनम् ॥
५. अथवा नवम्यामित्यादि नवम्याम् ॥
६. अथापराजितदशम्याम् ॥
७. पूर्वाह्णे विजयमुहूर्ते उक्तं प्रास्थानिकम् ॥
७. एतानि खलु प्राग्द्वाराणीत्यादि ॥
९. स्वस्तिदा ये ते पन्थान इत्यादि नक्षत्र होमश्च ॥ २ ॥

३. १. अथ श्रवणे नक्षत्रे अथ राज्ञामिन्द्रमहस्येति व्याख्यातः ॥३॥

४. १. अथ पौर्णमास्यामपराह्णे पौर्णमासिकं कर्म ॥ ४ ॥

५. १. अथापामार्गत्रयोदश्यां श्वेते मुहूर्ते स्नानं कृत्वा, अपामार्गं त्रिः परिभ्रामयेद्राज्ञ उपरि मन्त्रेण ॥
२. ईशानां त्वा भेषजानामिति त्रिभिः सूक्तैः प्रतीचीनफल इति सूक्तेन वा पुनः स्नानम् ॥
३. तत आरात्रिकं परिधत्तेति द्वाभ्यामिति समानम् ॥ ५ ॥

६. १. अथ दीपोत्सवं प्रतिपदि हस्त्यश्वादिदीक्षासमानम् ॥
२. अभ्यातानान्तं कृत्वा येऽस्यां प्राची दिगिति ॥
३. मा नो देवा यस्ते सर्प इत्येतैः सूक्तैस्तृणानि युगतर्द्मना

संपातवन्ति गणं च प्रातितमितधानाशने हस्त्यश्वादि युगपत्तन्त्रं समानम् ॥ धेनुर्दक्षिणा ॥ ६ ॥

१८ख७.१.अथाक्षय्यनवम्यां रात्रौ हस्त्यश्वादीनामनीकानां रथस्य परहोमश्च ॥ ७ ॥

८. १. अथ विष्णुद्वादश्यां पुरोहितः पश्चिमां संध्यां उपास्य गृहीतदर्भो यत्र राजानमभिगम्य पौष्टिकहोमश्च रात्रौ नीराजनं कृत्वा हस्त्यश्वेभ्यश्च ॥ ८ ॥

९.१. अथ कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां रैवत्यामाश्वयुज्यां वृषोत्सर्गः ॥९॥

१०.१. अथाग्रयणी पौर्णमास्यां तन्त्रं कृत्वापादग्रेति द्वाभ्यां रसं संपात्याभिमन्त्र्य राजानं प्राशयेत् ॥ धेनुर्दक्षिणा ॥ १० ॥

११.१. अथ पौष्यां पौर्णमास्यामुक्तः पुष्याभिषेकः ॥ ११ ॥

१२.१. अथ फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां रात्रौ होलाका ॥

२. महानवम्यामुक्तप्रज्वलनं नीराजनं वा ॥ १२ ॥

१३.१. अथ ग्रीष्मप्रतिपद्यायुष्यमिति स्नानं कृत्वापां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्येत्युक्तम् ॥ १३ ॥

१४.१. अथ चैत्र्यां पौर्णमास्यां तेजोव्रतं त्रिरात्रं अश्नातीत्युक्तम् ॥१४॥

१५.१. अथ मदनत्रयोदश्यां वैशाख्यां पौर्णमास्यां च मध्याह्ने गर्ते वा वाप्यां पुष्करिण्यां घटे वा सर्वगन्धान्प्रक्षिप्य प्राक्तन्त्रमभ्यातानान्तं कृत्वा सिंहे व्याघ्रे यशो हविः प्रातरग्निं गिरावरगराटेषु दिवस्पृथिव्या इत्येतैः सूक्तैरुदकं संपात्याभिमन्त्र्य राजानं स्नापयेत् ॥ प्रविश्य संप्रोक्ष्येति च तन्त्रं संस्थापयेत् ॥ धेनुर्दक्षिणा ॥ १५ ॥

१६. १. अथ श्रवण्यां पौर्णमास्यां विजये मुहूर्ते रक्षन्तु त्वाग्नय इति चतसृभी रक्षाबन्धनं कृत्वा नीराजनं च बाह्येनोपनिष्क्रम्येति पैठीनसिः ॥ १६ ॥

१८ख१७.१.अथादित्यदिन आदित्यमण्डको व्याख्यातः ॥ १७ ॥

१८. १. अथ जन्मनक्षत्रे जन्मनक्षत्रयागहोमो व्याख्यातः ॥ १८ ॥

१९. १. अथ राजकर्माणि प्रतिनक्षत्रं कर्तव्यानीत्यायुधानि खड्गप्रभृतीनि विभूयादिति कृत्तिकारोहिण्यादीनि व्याख्यातानि ॥

२. इन्द्रोत्सव इन्द्रमहोत्सवो व्याख्यातः ॥

३. प्रतिदिनं ग्रहयागः ॥ प्रतिदिनं नक्षत्रयागः ॥ प्रतिदिनं दशगणी महाशान्तिः ॥

४. प्रतिस्थानं कृत्तिकारोहिणीव्याख्याता नक्षत्र स्नानानि नक्षत्रदक्षिणाश्च ॥ १९ ॥

२०. १. राजकर्मसांवत्सरीयं हस्त्यश्वादिदीक्षा समाप्ता ॥ २० ॥

इत्युक्तपरिशिष्टानां कर्तव्यकालाः ॥

१८ ग. वृषोत्सर्गः

इस परिशिष्ट में कौशिक सूत्र २४. १९-२३ के कर्म का ही विस्तुत उल्लेख किया गया है। यहाँ इस कर्म के समय और स्थान का निर्धारण करने के साथ-साथ यह भी कहा गया है कि इसे पौर्णमास-तन्त्र के बीच में सम्पन्न करना चाहिये। रुद्र और रौद्रगणों को आज्यभाग तथा पूषा को हवियाँ समर्पित करने का विधान किया गया है। उच्छिष्ट को एक वृषभ के ऊपर रख कर उसके कान के पास एक मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। बछियों के ऊपर भी मन्त्रोच्चारण करने के बाद वृषभ को उनके चारों ओर घुमाया तथा तदनन्तर जल छिड़क कर सबको उत्तर पूर्व दिशा में हाँक कर ले जाया जाता है। दक्षिणा-निर्धारण।

वृषोत्सर्गः

१८ ग.१.१. अथ वृषोत्सर्गः

२. कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां रैवत्यां अश्वयुज्यां वा गवां गोष्ठे पौर्णमास तन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वा रुद्ररौद्राभ्यामाज्यं जुहुयात् ॥

३. पूषा गा अन्वेतु न इति चतसृभिः पौष्णस्य जुहुयात् ॥

४. पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षतु सर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः।

५. पूषन्नुनु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुत ॥

६. पूषन्तव व्रते वरं परि पूषा पुरस्तादिति ॥

७. इन्द्रस्य कुक्षिः साहस्रस्त्वेषि इत्यृषभं संपातवन्तं कृत्वा य इन्द्र इव देवेष्वित्य ऋषभस्य दक्षिणे कर्णे जपेत् ॥

८. लोहितेन स्वधितिनेति वत्सतरीमनुमन्त्रयते ॥

९. अयं प्रजानां जनिता प्रजापतिर्गवां
गोष्ठ इह मध्यतो वसः।

वत्सतरीष्वपसदने गवामधि
तिष्ठ पशून्भुवनस्य गोपाः ॥

१८ग१.१९.इति मण्डलानि भ्रामयति,

११. रेतोधायैत्वातिसृजामि वयोधायैत्वातिसृजामि यूथत्वायै त्वातिसृजामि गणत्वायै त्वातिसृजामि सहस्रपोषायै त्वातिसृजाम्यपरिमितपोषायै त्वातिसृजामीति पर्युक्ष्यैकरूपं द्विरूपं बहुरूपं वा यो वा यूथं छादयति यूथेन तेजस्विनालंकृतेनालंकृतमपराजितां दिशं निष्क्रामयेयुः सह वत्सतरीभिस्तन्त्रं संस्थापयेयुर् ,

१२. अथ ब्रह्मणे गां पयस्विनीं दद्यात्पायसेन ब्राह्मणान्भोजयित्वोत्सृज्य सर्वान्कामानाप्नोत्यक्षयांश्च लोकानाप्नोतीति ॥

इतिवृषोत्सर्गः ॥ १८ ॥

१९. इन्द्रमहोत्सवः

कौशिकसूत्र १४० में इस उत्सव का, जिसे 'इन्द्रमह' भी कहते हैं, वर्णन किया गया है। यहाँ उसी को पुनः दोहराते हुये हवि के समय के कुछ मन्त्रों को और जोड़ दिया गया है, तथा घटित हो सकने वाले अप-शकुनों का भी उल्लेख किया गया है।

इन्द्रमहोत्सवः

१९.१.१. अथ राज्ञामिन्द्रमहोत्सवस्योपचारकल्पं व्याख्यास्यामः ॥

२. प्रौष्ठपदे शुक्लपक्षे ॥

३. संभृतेषु संभारेषु ब्रह्मा राजा चोभौ स्नातावहतवसनौ सुरभिसुजातानुलेपनौ कर्मण्यौ व्रतवन्तावुपवसतः,

४. व्रतवन्तौ श्वो भूते शंनोदेव्याः पादैरर्धर्चाभ्यांमृचा षट्कृत्वोदकं परि वाचमाचान्तौ,

५. बर्हिरुपकल्पयित्वा राजानमन्वालभ्य जुहुयात् ॥

६. अर्वाञ्चमिन्द्रं त्रातारमिन्द्रमिन्द्रः सुत्रामा इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं मे हन्ताय वृषेन्द्रस्येन्द्रो जयातीति च हुत्वा राष्ट्रसंवर्गैश्चा

७. ऽथेन्द्रमुत्थापयन्त्या त्वाहार्षमन्तर्ध्रुवा द्यौर्विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्विति सर्वतोऽप्रमत्ता धारयेरन्,

८. अद्भुतं हि सवनानयेत्समुत्थितं भवति ॥ यदि प्राच्यामग्निभयम् ॥ यदि दक्षिणस्यां यमभयम् ॥ यदि प्रतीच्यां वरुणभयम् ॥ यद्युदीच्यां क्षुद्भयम् ॥ यदन्तर्देशेभ्यो भयतो विद्याद्,

९. अग्निर्मा पात्वग्निं ते वसुमन्तमृच्छन्त्विति ॥ यथास्वलिङ्गं द्वाभ्यांद्वाभ्यां प्रदक्षिणं प्रतिशिणं प्रतिदिशमुपस्थापयेत् ॥

१०. गृध्रश्चेदस्मिन्निपतति मृत्योर्भयं भवति ॥ यद्वा कृष्णशकु-
निरन्तरिक्षेण पततीति जयेद्यस्त्वा गृध्रः कपोत इत्यन्ततो
जपेत् ,

११. सर्वत्रानाज्ञातेषु त्रिरात्रं घृतकम्बलम् ॥

१२. शिरोभङ्गे तु राजानं मध्यभङ्गे तु मन्त्रिणम् । आदिभङ्गे
जनपदं मूलभङ्गे तु नागरान् ॥

१३. इन्द्राटको यदा भिद्याद्राजकोशो विलुप्यते ।
रज्जुछेदे परिजाते नृपतिस्तु विनश्यति ॥ १ ॥

२. १. सावित्र्याभिमन्त्रितं कृत्वा प्रदक्षिणमावर्तयेद्राजानमभिभूर्यज्ञ
इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे राजनि पूर्णहोमं जुहुयात् ॥२॥

३. १. अथ पशूनामुपाचारम् ।

२. इन्द्रदेवताः स्युर्ये राज्ञो भृत्याः स्युः सर्वे दीक्षिता ब्रह्मचारिणः
स्युर् ,

३. इन्द्रं चोपसद्य यजेरन् ॥ त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा,

४. त्रिरयनमह्नामुपतिष्ठन्ते हविषा च यजन्ते ॥

५. आवृत इन्द्रमहमितीन्द्र क्षत्रमिति हविषो हुत्वा,

६. ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्येन्द्रमवभृथाय व्रजन्त्य् ,

७. अपां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्यानपेक्षमाणाः
प्रत्येत्य ब्राह्मणान्भक्त्या यदीप्सितं वरप्रदानैः परितोषयेत् ॥

८. अथ हैषमितिकमिति ॥

९. श्वःश्वोऽस्य राष्ट्रं ज्यायो भवत्येकोऽस्यां पृथिव्यां राजा भवति
न पुरा जरसः प्रमीयते य एवं वेद यश्चैवंविद्वानिन्द्रमहेण
चरति इति ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

इतीन्द्रमहोत्सवः समाप्तः ॥

परिशिष्टम् ॥ १९ ॥

१९. ख. ब्रह्मयागः

अथर्वन् भार्गव द्वारा शौनक को बताई गई ब्रह्मयागविधि ।

१. १–३ परिचय ।

१. ४–३.३. कृत्य की तैयारी; मण्डप निर्माण, वृत्त बना कर उसमें ब्रह्म-प्रतीक की स्थापना ।

३. ४–५.२. कृत्य ।

५. ३–६ आवश्यक दानादि ।

५. ७–९ फल ।

ब्रह्मयागः

१९ ख.१.१. ॐ भार्गवं प्रणिपत्याथ भगवाञ्छौनकोऽवदत् ।
ब्रह्मयागविधिं कृत्स्नं विस्तरेण वदस्व मे ॥

२. परिपृष्टः स तेनाथ अथर्वा यजतां वरः ।
विधिं कृत्स्नं प्रतिष्ठाय आख्यातुमुपचक्रमे ॥

३. सर्वेषामेव यागानां परमोऽयमुदाहृतः ।
ब्रह्मयागं प्रयत्नेन शृण्वेतं तद्यथाक्रमम् ॥

४. हृद्ये मनोहरे शुभ्रे सर्वाबाधाविवर्जिते ।
श्लेष्मान्तकाक्षगृध्रादिपरित्यक्ते समे शुभे ॥

५. मण्डपं कारयेत्तत्र यथोक्तविधिना गुरुः ।
पताकातोरणैर्युक्तं द्वारैश्चापि पृथग्विधैः ॥ १ ॥

२. १. अभ्युक्ष्य शान्तितोयेन पञ्चगव्येन वा सकृत् ।
गोमयेन प्रलिप्यादौ पूजयेद्वर्णकैः पृथक् ॥

२. पुष्पैश्च विविधैः शुभ्रैः फलैश्चाप्यर्चयेद्बुधः ।
ततो बलिं हरेद्रात्रौ चतुर्दिक्षु विधानवित् ॥

१९ख.२.३.प्रदीपान्घृतपूर्णांश्च प्रदद्याद्विविधांस्तथा ।
ततोमण्डपमध्ये तु वर्तयेद्दिव्यमण्डलम् ॥
चतुरश्रं चतुर्द्वारं वृत्ताकारमथापि वा ॥
४. सितचूर्णेन तन्मध्ये लिखेत्पद्मं सुशोभनम् ।
बहिश्च वर्णकैः शुभ्रैर्नाना शोभां प्रकल्पयेत् ॥
५. मध्ये पद्मं तु संस्थाप्य ब्रह्माणं परमेश्वरम् ।
ब्रह्मजज्ञानसूक्तेन यथोक्तमुपकल्पयेत् ॥ २ ॥
३. तथेमा आप इत्याद्यैर्यथावदधिवासयेत् ।
रोचनाचन्दनाद्यैश्च पुष्पैर्धूपैश्च पूजयेत् ॥
२. घृतप्रदीपमाल्यैश्च वस्त्रैर्भक्षैश्च शोभनैः ।
सितचन्दनकर्पूरं दद्याद्वापि हि गुग्गुलम् ॥
३. प्रदक्षिणं ततः कृत्वा नमेत्सर्वाङ्गकैर्नरः ।
दक्षिणे पश्चिमे वापि भागे वेदिः प्रशस्यते ॥
४. कृत्वाज्यभागपर्यन्तं ततः शान्त्युदकं पुनः ।
ब्रह्मजज्ञानसूक्तेन कुर्याच्चैवात्र पूजनम् ॥
तथैव सैद्रमन्त्रैश्च अभिषेकाय कल्पयेत् ॥
५. हुत्वाभ्यातानमन्त्रांश्च ततो रुद्रगणेन च ।
नीलरुद्रैश्चरुं विद्वान्विधिना स्नपयेद्बुधः ॥ ३ ॥

४. १. होमयेत्कुत्ससूक्तेन उच्छुष्मैश्च यथाविधि ।
जपेन्मन्त्रास्तथायुष्यान्मङ्गल्यांश्चापि यत्नतः ॥
२. हुत्वा च चातनं तत्र मातृनामगणेन च ।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन तथा शान्त्युदकेन च ।
३. फलस्नानं च कुर्वीत युक्तो मङ्गलवादिभिः ।
बन्दिभिर्वेदविद्भिश्च स्त्रीसंगीतैर्मनोरमैः ॥
४. चारु चामरहस्ताभिश्चित्रदण्डैः सदर्पणैः ।
स्नापयेद्ब्रह्मसूक्तेन रौद्रेणापि तथार्चयेत् ॥

१९ख.४.५.ततः प्रदक्षिणं कृत्वा जानुभ्यां धरणीं गतः ।
आशास्येष्टफलं तत्र युक्तो मङ्गलपाठकैः ॥ ४ ॥

५. १. तूर्यघोषेण संयुक्तः कृतस्वस्त्ययनस्तथा ।
कुर्याद्दुन्दुभिनादं तु शङ्खभेरिप्रपूरितम् ॥

२. कुर्यादुत्तरतन्त्रं च सदस्यान्वाचयेत्ततः ।
भोजयेच्छक्तितस्तत्र ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥

३. दीनानाथान्धकृपणान्भक्ष्यभोज्यैरनेकधा ।
अन्नपानविहीनांश्च विशेषेण प्रपूजयेत् ॥

४. दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या दद्याद्गणबलिं निशि ।
गृहदेवास्तु संपूज्याः कार्यश्चाप्युत्सवो गृहे ॥

५. योगिनो भोजयेत्पश्चाद्गृहेषु गृहमेधिनः ।
अछेद्यास्तरवः कार्याः प्राणिहिंसां च वर्जयेत् ॥

६. बन्धनस्थाश्च मोक्तव्या बद्धाः क्रोधाच्च शत्रवः ।
अभयं घोषयेद्देशे गुरुं च परिपूजयेत् ॥

७. अभयं सर्वतो दत्त्वा इष्टे च परमेश्वरे ।
दीर्घमायुरवाप्नोति कृत्स्नां भुङ्क्ते वसुंधराम् ॥

८. ब्रह्मयागविधिः कृत्स्नो भक्तानां तु मयोदितः ।
अथर्वणा सुरेन्द्राय प्रणताय शुभेच्छया ॥

९. कृताभिषेकः कृतयाग एष
कृताह्निकः कृतरक्षः सुरेशः ।
अथर्वणोऽनुग्रहमाशु लब्ध्वा
त्रिविष्टपं विरराजासपत्नम् ॥ इति ॥ ५ ॥

इति ब्रह्मयागः समाप्तः ॥ १९ ॥

एकोनविंशं परिशिष्टम् ॥

२०. स्कन्दयागः अथवा धूर्तकल्पः

१. कृत्य की तैयारी ।
२. १–९. आवाहन के समय के मन्त्र ।
२. १०–३१. मूर्ति को आसीन करना ।
३. २–३. चरणामृत, धूप, पुष्प आदि समर्पित करना ।
३. ४. समर्पणार्थ अन्य वस्तुयें ।
३. ५. अग्नि-प्रज्वलन ।
४. हवि मन्त्र ।
५.–६. अन्य प्रार्थनायें और कर्म ।
७. १–६. कवच बाँधने के मन्त्र ।
७. ७–१०. देवता का विसर्जन और समापन कृत्य ।
७. ११. फल ।

स्कन्दयागः अथवा धूर्तकल्पः

२०.१.१. अथातो धूर्तकल्पं व्याख्यास्यामः ॥

२. चतुर्षुचतुर्षु मासेषु फाल्गुणाषाढ़कार्त्तिकपूर्वपक्षेषु नित्यं कुर्वीत ॥

३. श्वो भूते षष्ठ्यामुपवासं कृत्वा प्रागुदीचीं दिशं निष्क्रम्य शुचौ देशे मनोहरे नोषरे मण्डलं त्रयोदशारत्नि कृत्वा मध्ये मण्डपस्य सर्ववानस्पत्यां मालां कृत्वा घण्टापताकास्रजः प्रतिसरं च मालापृष्ठे कृत्वा, मध्ये दर्पणांश्चोपकल्पयित्वा तत्र यं वहन्ति हयाः श्वेता इत्यावाहयेत् ॥ १ ॥

२. १. यं वहन्ति हयाः श्वेता नित्ययुक्ता मनोजवाः ।
तमहं श्वेतसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

२. यं वहन्ति गजाः सिंहा व्याघ्राश्चापि विषाणिनः ।
तमहं सिंहसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

२०.२.३. यं वहन्ति मयूराश्च चित्रपक्षा विहंगमाः ।
तमहं चित्रसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

४. यं वहन्ति सर्ववर्णाः सदायुक्ता मनोजवाः ।
तमहं सर्वसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

५. यस्यामोघा सदा शक्तिर्नित्यं घण्टापताकिनी ।
तमहं शक्तिसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

६. यश्च मातृगणैर्नित्यं सदा परिवृतो युवा ।
तमहं मातृभिः सार्धं धूर्तमावाहयाम्यहम् ।

७. यश्च कन्यासहस्त्रेण सदा परिवृतो महान् ।
तमहं सिंहसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम् ॥

८. आयातु देवः सगणः ससैन्यः
सवाहनाः सानुचरः प्रतीतः ।
षडाननोऽष्टादशलोचनश्च
सुवर्णवर्णो लघुपूर्णभासः ॥

९. आयातु देवो मम कार्त्तिकेयो
ब्रह्मण्यपित्रैः सहमातृभिश्च ।
भ्रात्रा विशाखेन च विश्वरूप
इमं बलिं सानुचर जुषस्व ॥

१०. संविशस्वेति संवेशयेत् ॥ २ ॥

३. १. संविशस्व वरघण्टाप्सरः स्तवे
यत्र सुभुजो हि निर्मिताः ।
संविष्टो मे धेहि दीर्घमायुः
प्रजां पशूंश्चैव विनायकसेन ॥

२. इमा आप इति गन्धोदकं पाद्यं दद्यात् ॥ प्रतिगृह्णातु भगवान्देवो धूर्त इति ॥ षट् चैव हिरण्यवर्णा इतीमे दिव्यो गन्धर्व

इति गन्धान्यस्ते गन्ध इति चेमाः सुमनस इति सुमनसः ॥
प्रियं धातुरिति.........॥

२०.३.३. वनस्पतिरसो मेध्य इति धूपम् ॥ यक्ष्येण ते दिवा अग्निः शुक्रश्चेति दीपं ॥ यो विश्वतः सुप्रतीक इति पर्णानि ॥

४. प्रक्षाल्य हविष्युपसादयेद्दध्योदनं क्षीरोदनं गुडोदनं मुद्गपायस-मिश्रधान्यमोदकानि सर्वगन्धान्सर्वरसानुदकपूर्णं मूलपूर्णं पुष्पपूर्णं फलपूर्णं रसपूर्णं चोपकल्पयित्वा,

५. इन्द्रः सीतामित्युल्लिख्य अग्ने प्रेहीत्यग्निं प्रणीय प्रज्वाल्य प्राश्चमिध्ममुपसमाधाय भग एतमिध्ममिति तिसृभिरेतमिध्मं सुगार्हपत्य इत्युपसमाधाय समिद्धो अग्निरिति समिद्धमनु-मन्त्रयते ॥ ३ ॥

४. १. भद्रमिच्छन्तो हिरण्यगर्भो ममाग्ने वर्चस्त्वया मन्यो यस्ते मन्यो यद्देवा देवहेडनमिति षट् कामसूक्तादयो दश महीपतये स्वाहा ॥

२. धूर्ताय स्कन्दाय विशाखाय पिनाकसेनाय भ्रातृस्त्रीकामाय स्वच्छन्दाय वरघण्टाय निर्मिलाय लोहितगात्राय शालकटङ्क-टाय स्वाहेति हुत्वा अग्नये प्रजापतये ये देवा दिव्येकादश स्थेत्यनुमतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति च ॥ ४ ॥

५.१. शिवाग्निकृत्तिकानां तु स्तोष्यामि वरदं शुभम् ।
स मे स्तुतो विश्वरूपः सर्वानर्थान्प्रयच्छतु ॥

२. धनधान्यकुलान्भोगान्स मे वचनवेदनम् ।
दासीदासं तथा स्थानं मणिरत्नं सुराञ्जनम् ॥

३. ये भक्त्या भजन्ते धूर्तं ब्रह्मण्यं च यशस्विनम् ।
सर्वे ते धनवन्तः स्युः प्रजावन्तो यशस्विनः ॥

४. यथेन्द्रस्तु वरान्लब्ध्वा प्रीतस्तु भगवान्पुरा ।
देहि मे विपुलान्भोगान्भक्तानां च विशेषत इति ॥

२०.५.५. कामसूक्तेनोपहारमुपहरेत् ।

६. उपहारमिमं देव मया भक्त्या निवेदितम् ।
प्रतिगृह्य यथान्यायमक्रुद्धः सुमना भव ॥ ५ ॥

६. १. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवेभवे नादिभवे भजस्व मां भवोद्भवेति भवाय नमः ॥

२. देवं प्रपद्ये वरदं प्रपद्ये
स्कन्दं प्रपद्ये च कुमारमुग्रम् ।
षण्णां सुतं कृत्तिकानां षडास्यम्
अग्नेः पुत्रं साधनं गोपथोक्तैः ॥

३. रक्तानि यस्य पुष्पाणि रक्तं यस्य विलेपनम् ।
कुक्कुटा यस्य रक्ताक्षाः स मे स्कन्दः प्रसीदतु ॥

४. आग्नेयं कृत्तिकापुत्रमैन्द्रं केचिदधीयते ।
केचित्पाशुपतं रौद्रं योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुत इति ॥

५. स्वामिने नमः शङ्करायाग्निपुत्राय कृत्तिकापुत्राय नमः ॥

६. भगवान्कचिदप्रतिरूपः स्वाहा भगवान्कचिदप्रतिरूपः ॥

७. मणिरत्नवरप्रतिरूपः ॥ काञ्चनरत्नवरप्रातरूप इति ॥

८. एते ते देव गन्धा एतानि पुष्पाण्येष धूप एतां मालां त्रिः प्रदक्षिणां कृत्वा आदित्यकर्तितं सूत्रमिति प्रति सरमाबध्नीयात् ॥ ६ ॥

७. १. आदित्यकर्तितं सूत्रमिन्द्रेण त्रिवृतीकृतम् ।
अश्विभ्यां ग्रथितो ग्रन्थिर्ब्रह्मणा प्रतिसरः कृतः ॥

२. धन्यं यशस्यमायुष्यमशुभस्य च घातनम् ।
बध्नामि प्रतिसरमिमं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥

३. रक्षोभ्यश्च पिशाचेभ्यो गन्धर्वेभ्यस्तथैव च ।
मनुष्येभ्यो भयं नास्ति यच्च स्याद्दुष्कृतं कृतम् ॥

२०.७.४. स्वकृतात्परकृताच्च दुष्कृतात्प्रतिमुच्यते ।
सर्वस्मात्पातकान्मुक्तो भवेद्वीरस्तथैव च ॥

५. अभिचाराच्च कृत्यातः स्त्रीकृतादशुभं च यत् ।
तावत्तस्य भयं नास्ति यावत्सूत्रं स धारयेत् ॥

६. यावदापश्च गावश्च यावत्स्थास्यन्ति पर्वताः ।
तावत्तस्य भयं नास्ति यः सूत्रं धारयिष्यतीति ॥

७. अन्वायं भुक्त्वा देवं विसर्जयेत् ॥

८. प्रमोदो नाम गन्धर्वः प्रदोषो परिधावति ।
मुञ्च शैलमयात्पापान्मुञ्चमुञ्च प्रमुञ्च च ।

९. यावदिमा आपः पवनेन पूता
हिरण्यवर्णा अनवद्य रूपाः ।
तावदिमं धूर्तं प्रवाहयामि
प्रवाहितो मे देहि वरान्यथोक्तान् ॥

१०. उदितेषु नक्षत्रेषु गृहान्प्रविष्टो गृहिणीं पश्येत्धनवति धनं मे देहीति ॥

११. यद्भोक्तुं कामजातं जगत्यां मनसा समीहते तत्तद्द्विजन्मा पिनाकसेनयजमानात्काममुपभुक्तो भुक्त्वामृतत्वं तद्वदेवाभ्युपैति,
तद्वदेवाभ्युपैतीति ॥ ७ ॥

इति स्कन्दयागः समाप्तः ॥ २० ॥

प्रथमाविंशतिः समाप्ता ॥ एवं खाण्ड ॥ १२४ ॥

२१. संभारलक्षणम्

निम्नलिखित विषयों से सम्बद्ध नियमों का संग्रह : कुश, पुष्प, फल, वस्त्र, बीज, अर्घ्य, चन्दन, धूप, सुवर्ण, रत्न, इत्यादि, तथा दक्षिणा में दी जाने वाली गायें (१. २–७); पुरोहित और कृत्य के समय उपस्थित लोग (१.८–८); विभिन्न प्रकार के पात्र, ईंधन, विभिन्न अन्न, और आज्य (२. १–२); समिधा (२. ३); स्रुवा का नाप (२. ४. ५.); स्रुवा और स्रुज का विभेद (३. ५); कर्मानुसार स्रुवा किस वस्तु का बनाया जाय इस तथा इसी प्रकार की अन्य बातों के ज्ञान का फल (३. १–४); कर्म तथा उसके स्थान के चयन में वर्ज्यावर्ज्य बातें (३. ५–४. ३); मण्डप, वेदिका और शान्तिगृह का निर्माण और अलङ्करण (४. ४–६–६); राजा का प्रवेश, अग्नि प्रज्वलन, और प्रगट शकुनों पर विचार (६. ७–७. ६)।

संभारलक्षणम्

२१.१.१. ॐ संभारान्कीर्तयिष्यामो यथा लक्षणसंयुतान् ।
यैः कर्म क्रियमाणं हि फलवत्स्याद्द्विजन्मनाम् ॥
२. अच्छिन्नाग्रान्कुशानार्द्रानिन्द्रनीलसमप्रभान् ।
शुष्कानपि श्वेतवर्णानाहुः शान्तिकरान्बुधाः ॥
३. सुरभीणि च पुष्पाणि सुस्वादूनि फलानि च ।
मनोहराणि वासांसि संभारेषूपकल्पयेत् ॥
४. सुरभीण्येव बीजानि अन्यवस्तूनि यानि च ।
अर्घचन्दनधूपादि हेमरत्नादि चोत्तमम् ॥
७. गावश्च दक्षिणार्थं हि पयस्विन्यः सुलक्षणाः ।
८. षोडशाष्टौ च चत्वारश्चतुर्णां वेदवित्तमः ॥
५. ऋत्विजस्तु समाख्याता वयः शीलगुणान्विताः ।
द्वात्रिंशत्षोडशाष्टौ वा शान्तिकार्ये तथाद्भुते ॥
६. सहिरण्याः सवस्त्राश्च सालङ्काराः सवत्सकाः ।
ते सदस्या इति प्रोक्ता वाचने यज्ञकर्मणि ॥

२१.१.७. सर्वे तेऽपि ह्यथर्वाण ऋत्विजः षोडश स्मृताः ।
८. शुद्धात्मानो जपैर्होमैर्वैदिकैर्वीतमत्सराः ॥ १ ॥
२. १. ताम्र राजतहैमानां मृण्मयानामथापि वा ।
अच्छिद्राणां सवर्णानां कलशानां च संग्रहः ॥
२. चरूणामथ पात्राणामिन्धनानां विशेषतः ।
यवव्रीहितिलादीनामाज्यस्याहरणं तथा ॥
३. अच्छिद्रास्फाटितावक्रा दीर्घपर्वाः सुमध्यमाः ।
शमीदूर्वातरूणां तु ज्ञेयाः शान्तौ शुभावहाः ॥
४. पुष्करतन्तुगोवालत्रुटिसर्षपयवस्य तु ।
षड्गुणितः षड्गुणितो भवति नरस्याङ्गुलमाने ॥
५. गोपुच्छसदृशो दण्डः समः श्लक्ष्णो मनोहरः ।
स्रुवश्च शान्तिके ज्ञेयः स्रुगुक्ता यज्ञलक्षणा ॥ २ ॥
३. १. सौवर्णः शान्तिके प्रोक्तः पालाशो वाथ खादिरः ।
अभिचारे विशेषेण कुर्यात्स्रुवमयोमयम् ॥
२. कांस्यमुच्चाटने कुर्यादाश्वत्थं वश्यकर्मणि ।
विशेषेण तु विद्वेषे स्रुवो निम्बमयः स्मृतः ॥
३. पौष्टिके राजतं विद्यात्ताम्रं च विजयावहम् ।
अमृतादौ तु विज्ञेयश्चान्दनः सिद्धिदः स्रुवः ॥
४. स्रुवाणां विषयं ज्ञात्वा कीलकानां विधिं तथा ।
गृहस्याश्मविधिं दिक्षु कर्मसिद्धिमवाप्नुयात् ॥
५. श्लेष्मातकार्क कण्टकिकटुतिक्तादि वर्जिते ।
अरिष्टगृध्र कौशिकविहंगैश्च विवर्जिते ॥ ३ ॥
४. १. गुल्मवल्लीलतायुक्ते हृद्यैश्च मधुरैर्द्रुमैः ।
तरुणैः फलवद्भिश्च श्मशानास्थिविवर्जिते ॥
२. मयूरचक्रवाकादिहंसकारण्डवादिभिः ।
सुस्वरैर्नादिते देशे हृद्याङ्कुरसमन्विते ॥

२१.४.३. नदीतटे समुद्रस्य संगमे वा विशेषतः ।
अनिन्द्ये दिग्विभागे च उत्तरे वापराजिते ॥
४. भूमिं संशोधयेत्कर्ता प्रागुदक्प्रवणे शुभे ।
प्राचीं संशोध्य यत्नेन मण्डपं तत्र कारयेत् ॥
५. नवकोष्ठं समं वापि हस्तैः षोडशभिर्मितम् ।
चतुरश्रं चतुर्द्वारमेकोर्ध्वद्वारमेव वा ॥ ४ ॥

५. १. तत ईशानकोणे तु स्नानवेदिं समाचरेत् ।
दशद्वादशहस्तं वा यथावितानमेव वा ॥
२. चतुर्गुणोच्छ्र्याश्चैव मूलस्तम्भास्तु ये ततः ।
उपस्तम्भास्तु ये पार्श्वे तदर्धेन प्रकीर्तिताः ॥
३. कुम्भाः स्तम्भैस्तथा देयाः कामैर्द्वारं दिशां स्मृतम् ।
यजमानोच्छ्र्यं वापि तदर्धेन प्रकीर्तिताः ॥
४. कुण्डाकृति ग्रहं कुर्याद्द्विगुणं परिवेष्टितम् ।
सर्वदिक्षु प्लवं चैव कुण्डस्योर्ध्वं न छादयेत् ॥ ५ ॥

६.१. परितो द्वादशस्थूनं चतुः स्तम्भं तु मध्यतः ।
अर्चितं पूजितं नित्यं शान्तौ शान्तिगृहं स्मृतम् ॥
२. नेत्राद्युल्लोचशोभिष्ठं नानवर्णध्वजाकुचम् ।
रक्ता पीता च धूम्रा च कृष्णा नीलाथ पाण्डुरा ॥
३. विचित्रा हीन्द्रनीलाभा पताकाः षोडश स्मृताः ।
ऐन्द्रायुधधूम्रकृष्णनीलपाण्डुरवर्णकाः ॥
४. पीतरक्तसिताः श्यामा पताकाः षोडश स्मृताः ।
कलशान्शोडशांस्तत्र उपरिष्टान्महाध्वजः ॥
५. वस्त्रेणाछादितान्कुर्यात्सहिरण्यान्पृथक्पृथक् ।
मणिमुक्ताफलैः पुष्पैर्हृद्यैश्च मधुरैः फलैः ॥
६. समन्ताद्दिक्षु विन्यस्तैः प्रदीपैश्चाप्यलंकृतम् ।
धूपैर्बल्युपहारैश्च जयघोषैश्च बन्दिनाम् ॥

२१.६.७. शङ्खतूर्यनिनादैस्तु वीणादुन्दुभिसस्मितैः ।
पूज्यमानो हि नृपतिः प्रविशेत्सपुरोहितः ॥
८. ततः शान्त्युदकं कृत्वा चातनेनानुयोजितम् ।
संप्रोक्ष्य विधिवन्मन्त्रैरानयेदरणी ततः ॥ ६ ॥
७. १. मथितेऽग्नौ विधानेन शान्त्युदकेन समन्त्रकम् ।
होमं कृत्वा यथोक्तं तु निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥
२. मेघदुन्दुभिनिर्घोषैः प्रज्वलन्सर्वतस्तथा ।
अव्यवछिन्नदीर्घार्चिः सुस्निग्धः सिद्धिकारकः ॥
३. किंशुकाशोकपद्माभो नीलोत्पलनिभस्तथा ।
वह्निः सिद्धिकरो ज्ञेयः सप्तरात्रान्न संशयः ॥
४. हुतमात्रे प्रज्वलति विहसन्निव दृश्यते ।
तं विद्यात्सिद्धिदं वह्निं पद्मवर्णनिभं तथा ॥
५. अस्निग्धार्चिः सधूमो यः कृष्णवर्णोऽप्रदक्षिणः ।
यथोक्तविपरीतस्तु न वह्निः स्यात्प्रियंकर ॥
६. यस्मिन्प्रसन्नतामेति हूयमाने हुताशने ।
तत्र नित्यं महासिद्धिरसमाप्ते विनिर्दिशेत् ॥
असमाप्ते विनिर्दिशेदिति ॥ ७ ॥

इति संभारलक्षणं समाप्तम् ॥ २१ ॥

२२. अरणिलक्षणम्

१. १–२ परिचय ।

१. ३–२. १ अरणिकाष्ठ का प्रकार और उसे प्राप्त करने के नियम ।

२. २–३. १ काष्ठ प्रमाण ।

३. २–४. १. काष्ठदोष तथा उसके परिणाम; 'योनिसंकर' का परिणाम ।

४. २. वर्ष के रहस्यात्मक प्रतिनिधि के रूप में अरणि ।

४. ३–५. ४ यजमान के प्रतिनिधि के रूप में अरणि; अरणि के देह के विभिन्न भाग तथा उन भागों से अग्नि उत्पन्न करने के परिणाम ।

५.५–६.४ देवयोनि; अरणि का महत्त्व ।

६. ५–७.४ अरणि के अन्य भाग ।

७.५–८.४ कौन किस रूप में अग्नि उत्पन्न करे ।

९.१–४ जीर्ण हो जाने पर नूतन अरणि के संस्कर ।

१०.१–५. इस परिशिष्ट की प्रशस्ति; इसके प्रणेता पिप्पलाद; इसके पठनपाठन का फल ।

अरणिलक्षणम्

२२.१.१. ॐ अथातः संप्रवक्ष्यामि अरण्योश्चैव लक्षणम् ।
रूपं तथा प्रमाणं च गुणदोषांस्तथैव च ॥

२. चोदितान्शब्दशास्त्रेण आचार्येण तु धीमता ।
पुरा कल्पे च यद्दृष्टमृषिभिश्चैव लक्षणम् ॥

३. गृह्याग्निं परिसंगृह्य धर्मपत्न्या सहैव तु ।
वैतानिकास्ततः कुर्यादाधानाद्या यथोदिताः ॥

४. तिथौ शुभायां नक्षत्रे दिशं गत्वा त्वनिन्दिताम् ।
अश्वत्थात्तु शमीगर्भादुक्तमाहरणं श्रुतेः ॥

५. शमीवृक्षे तु योऽश्वत्थो नान्यवृक्षेण संयुतः ।
मध्ये मूलं न बाह्ये तु स गर्भः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

२२.२.१. अभावे तु शमीगर्भे अश्वत्थादेव वाहरेत् ।
प्राप्ते चैव शमीगर्भे समारोप्य विसर्जयेत् ॥
२. चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा विस्तरेण षड्गुला ।
चतुरङ्गुलोच्छ्रया च अरणिश्चोत्तरारणिः ॥
३. आ स्कन्धादुरसो वापि इति स्तौदायनैः स्मृता ।
बाहुमात्रा देवदर्शैजाजलैरूरुमात्रिका ॥
४. चारणवैद्यैर्जङ्घे च मौदेनाष्टाङ्गुलानि च ।
जलदायनैर्वितस्तिर्वा षोडशेति तु भार्गवः ॥
५. शिरःप्रमाणे नाभौ तु चतुर्विंशतिकैव हि ।
शौनकादिभिराचार्यैरेतन्मानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥

३. १. तस्यास्तु पिण्डः षड्भागे चतुर्भागे तु विस्तरे ।
चतुरश्रा च श्लक्ष्णा च छिद्रग्रन्थिविवर्जिता ॥
२. क्लिन्ना भिन्नाग्निसंस्पृष्टा स्फुटिता विद्युताहता ।
अन्यैश्च दोषैः संयुक्ता वर्जनीया प्रयत्नतः ॥
३. शिरोग्रन्थिर्हरेच्चक्षुश्छिद्रा पत्नीविनाशिनी ।
क्लिन्ना विनाशयेत्पुत्रान्स्फुटिता शोकमावहेत् ॥
४. ऊर्ध्वशुष्के न कर्तव्या कृष्णे रूक्षे तथैव च ।
उभे अप्येकवृक्षे च अरणिश्चोत्तरारणिः ॥
५. तत्प्रमाणा तदर्धा वा भूयसी वा यथेच्छया ।
अनेनैव तु मन्थव्यो न कुर्याद्योनिसंकरम् ॥

४. १. योनिसंकरसंकीर्णे महान्दोषः प्रपद्यते ।
स यज्ञस्तामसो नाम फलं तत्र न विद्यते ॥
२. पिण्डे त्वयनविषुवौ पृथुत्वे ऋतवः स्थिताः ।
अर्धमासाश्च दीर्घत्वे कालश्चात्र प्रतिष्ठितः ॥
३. यजमानोऽरणिरिति वदन्त्येके विपश्चितः ।
तत्प्रधानाः क्रियाः सर्वा यज्ञश्चापि तथैव हि ॥

२२.४.४. प्रथमे मूलषड्भागे पादौ जङ्घेति कीर्त्यते ।
द्वितीये जानुनी ऊरू तृतीये श्रोणिरुच्यते ॥
५. चतुर्थे जठरं साङ्गं ग्रीवा चैव तु पञ्चमे ।
षष्ठे शिरः समाख्यातमङ्गान्येतानि निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

५. १. मथिते पादजङ्घे च पिशाचः संप्रजायते ।
जानुनोश्च तथा चोर्वो राक्षसत्वं प्रयाति हि ॥
२. श्रोण्यां च सर्वकामाः स्युर्जठरे क्षुत्तथा स्मृता ।
उरस्यमित्रा ग्रीवायां मृत्युः शिरसि वेमना ॥
३. श्रोण्यामेवात इच्छन्ति निर्दोषा कीर्तिता यतः ।
तथा वित्तपशून्पुत्रान्स्वर्गमायुः प्रियं सुखम् ॥
४. प्रथमं मन्थनं श्रोण्यामाधाने च विशेषतः ।
इतराणि यथेष्टं हि ग्रीवां सर्वत्र वर्जयेत् ॥
५. त्रीण्यङ्गुलानि त्यक्त्वादौ तथा चत्वारि चान्ततः ।
मध्ये देवाः स्थितास्तस्माद्वह्निं तत्रैव मन्थयेत् ॥ ५ ॥

६. १. अनुलोमा भवेद्योनिः पार्श्वभेदो न विद्यते ।
आनुलोम्येन मथितः सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥
२. मूलादङ्गुलमुत्सृज्य त्रीणित्रीणि च पार्श्वयोः ।
देवयोनिस्तु विज्ञेया तत्र मथ्यो हुताशनः ॥
३. मूलात्त्यक्त्वाङ्गुलान्यष्टावग्रात्तु द्वादशैव हि ।
अन्तरे देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः ॥
४. वेदा यज्ञाय संभूता यज्ञा अग्नौ प्रतिष्ठिताः ।
अरण्योर्जायते चाग्निस्तयोस्तस्मात्प्रधानता ॥
५. अरण्यर्धेन चैव स्युः खादिरौ चात्रपीडकौ ।
नेत्रं तु षड्गुणं चात्रादुत्तरोऽष्टाङ्गुलः स्मृतः ॥ ६ ॥

७.१. अष्टाङ्गलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्द्वादशाङ्गुलम् ।
ओवीली द्वादशङ्गुला एष यज्ञविधिः स्मृतः ॥

२२.७.२. व्याममात्रं वदन्त्येके अन्ये हस्त त्रयं बिदुः ।
त्रिवृतं मुष्टिसंयुक्तं यज्ञवृक्षजवल्कलैः ॥
३. चात्रे च भास्कराः प्रोक्ता उत्तरे वसवस्तथा ।
नेत्रे देवगणाः सर्वे विष्णुश्चैव तु पीडके ॥
४. अरणिर्या द्वितीया तु उत्तरा सा प्रकीर्तिता ।
तत्रैकदेशं संगृह्य उत्तरः स च कीर्तितः ॥
५. प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि भ्रामकः पश्चिमामुखः
पाणिभ्यां पीडनं शुभ्रमुत्तराग्रं प्रगृह्य तु ॥ ७ ॥
८. १. मूले मूलं तु संयोज्य चात्रस्यैवोत्तरस्य च ।
अरण्युपरि संस्थाप्य पीडकेन तु पीडयेद् ॥
२. नेत्रेण भ्रामयेच्चात्रं यावद्वह्निः प्रजायते ।
सर्वैर्हि देवैः संपन्नस्तेन सर्वसुखः स्मृतः ॥
३. ब्रह्माद्यैर्देवतैश्चैव विद्वद्भिश्च तपोधनैः ।
एष यन्त्रप्रयोगस्तु दृष्टो यज्ञार्थहेतुभिः ॥
४. यजमानेन मन्थव्यः स्वशाखाश्रोत्रियेण वा ।
तन्मतेन द्विजाग्र्यैर्वा स्मृतमेतद्धि मन्थनम् ॥ ८ ॥

९. अथ
१. यद्यरणी जीर्णे स्यातां जन्तुभिर्मन्थनेन वा ।
समानीते नवे अरणी आहृत्य श्वो भूते दर्शेनेष्ट्वा तस्मिन्पूर्वे
शकलीकृत्य गार्हपत्ये प्रक्षिप्योपर्यग्नौ धारयञ्जपति ॥
२. उद्बुध्यस्वाग्ने प्र विशस्व योन्यां
देवयज्यायै वोढवे जातवेदः ।
आरण्योररणी सं चरस्व
जीर्णां त्वचमजीर्णया निर्णुदस्वेत्य्
३. आज्यं संस्कृत्याहवनीये मनस्वतीं जुहोति ॥
पुत्रार्थी श्रावयेत् ॥

२२.९.४. मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य
विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
या इष्टा उषसो या अनिष्टास्ताः
सं चिनोमि हविषा घृतेन
स्वाहेत्यग्नयेऽग्निमतेऽष्टकपालं पुरोडाशं निर्वपति ॥
शरावोदनं सदक्षिणं ददाति ॥ सा प्रकृतेष्टिः संगृह्यते ॥ ९ ॥
१०.१ प्रसङ्गेनैव कथितमग्निमन्थनमत्र वै ।
अरण्योश्चाङ्गसंभूतं नेत्रं चात्रं च पीडकः ।
२. य इदं धारयिष्यति अरण्योरिह लक्षणम् ।
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ॥
३. पुत्रार्थी श्रावयेन्नित्यमचिराल्लभते सुतम् ।
श्रुतशीलं वृत्तवन्तं दीर्घायुर्विपुलां प्रजाम् ॥
४. एतदेवं समाख्यातं पिप्पलादेन धीमता ।
द्विजानां बालवृद्धानां पुरश्चरणमुत्तमम् ॥
५. अधीत्यैतच्च देहान्ते परं ब्रह्माधिगच्छति ।
न तस्य मृत्युर्न जरा निद्रा व्याधिर्न चैव हि
क्षुत्पिपासाभयं नास्ति ब्रह्मभूतः स तिष्ठति ॥
ब्रह्मभूतः स तिष्ठतीति ॥ १० ॥
इत्यरणिलक्षणं समाप्तम् ॥ २२ ॥

२३. यज्ञपात्रलक्षम्

यहाँ ऐसे निमयों का संग्रह है जो शीर्षक द्वारा व्यक्त विषय की सीमा से आगे भी अनेक बातों से सम्बद्ध हैं। १. १–३ (जिसमें से २ग—३ख सम्भवतः प्रक्षिप्त हैं) में विषय का परिचय देने के बाद १.४ में 'चरु' और 'चरुस्थाली' का वर्णन है। १.५ में 'शूर्प'; २.१ में 'स्फ्य'; २.२ में 'उलूखल'; २.३ में 'मुसल'; २. ४–५ में 'स्रुव', 'ध्रुवा' और 'अग्निहोत्रहवणी'; ३.१–४.२ में (जिसमें ३. २ प्रक्षिप्त हैं) 'स्रुच्'; ४.३ में 'कृष्णाजिन्'; ४.४ में 'सकृदाछिन्न'; ४.५ में 'मेक्षण'; ५.१ में 'अक्षौ'; ५.२ में 'अग्निष्ठ'; ५.३–४ में आज्य, अञ्जन, अभ्यञ्जन, कशिपु और उपबर्हण; ५.५ में हस्त का प्रमाण; ६.१ में स्रुव, खड्ग, सकृदाछिन्न, जुहू, ध्रुवा और बर्हिस्; ६.२ में स्रुव, खड्ग, जुहू और इध्मा:; ६.३ में यज्ञवृक्षाः द्वारा निर्मित की जाने वाली विभिन्न वस्तुयें; ६.४ में समिधा; ६.५–७.१ में यज्ञवृक्षा:; ७.२ में प्रयुक्त होने वाले अन्न; ७.३. में सन्ध्याकालीन हवियों में प्रयुक्त वस्तुओं के पुनः प्रातःकालीन हवियों में प्रयोग की अनुमति तथा भग्न वस्तुओं के व्यवहार का निषेध; ७.४–९.३ में (सम्भवतः प्रक्षिप्त है) पक्षहोम और उसका फल; ९.४ में समिधा; ९.५ में पुरोडाश के प्रमाण; १०.१–५ख में दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय और सभ्य अग्निकुण्डों का आकार-प्रकार; १०.५ग–७ख में ऐसी स्थितियों के लिये नियम जिनमें कोई विशेष निर्देश नहीं है और जिनमें हाथ में वज्र या कुश लेकर कार्य करना आवश्यक है; १०.७ग–११.३ में चातुर्होत्र; ११.३–५ में किसी पात्र या उपकरण के भग्न हो जाने की दशा के नियम; १२.१–५ में ऐसी विभिन्न वस्तुयें जो किसी कृत्य में कोई अवरोध नहीं उपस्थित करतीं; १३.१ में ऐसे कृत्य जिनके बाद यजमान के लिये जल-स्पर्श आवश्यक है; १३.२–३ पात्रों को स्वच्छ करने के नियम; और १३.४–१४.६ में इस परिशिष्ट का महत्व वर्णित है।

यज्ञपात्रलक्षणम्

२३.१.१. ॐ अथातो यज्ञपात्राणां लक्षणं योनिरेव च।
रूपं तथा प्रमाणं च क्रमेणैव प्रकथ्यते ॥
२. चमसग्रहपात्राणि होमपात्राणि यानि च।
यज्ञवृक्षास्तथा शाखा ब्रह्मवेदे प्रदर्शिताः ॥
३. पितृपिण्डेषु दर्व्याद्यमग्निष्वात्तं च याज्ञिकम्।
सायंहोमेषु नित्यानि तथा नैमित्तिकानि च ॥

२३.१.४. बिल्वाकृतिश्चरुः प्रोक्तस्ताम्रो वा मृन्मयोऽपि वा ।
ग्रीवायां मुखविस्तीर्णश्चरुस्थालीति कीर्तितः ॥

५. कुशस्याम्रस्य वा पर्णैर्वेणोर्वा बल्वजस्य वा ।
चतुष्कोणार्धवीतंचलोके शूर्पं तदुच्यते ॥ १ ॥

२. १. असिः खड्गं च निस्त्रिंशः पर्यायाः परिकीर्तिताः ।
तदाकृत्येव यद्रूपम्यज्ञे स्फ्यं च वदन्ति तम् ॥

२. इध्मोच्छ्रयमर्धखातं खातेनैव तु विस्तरः ।
मध्ये हीनं तथोर्ध्वाग्रं वारणं तदुलूखलम् ॥

३. स्थूलत्वान्मुष्टिमात्रं च स्कन्धमात्रं प्रमाणतः ।
वारणं मुसलं चैव अधस्ताल्लोहवेष्टितम् ॥

४. स्रुवस्तु मूलदण्डश्च बिलं चाङ्गुष्ठ पर्वणः ।
समवेते पृथग्भूते बिलार्धे दण्डवृत्तता ॥

५. वैकङ्कती ध्रुवा प्रोक्ता सर्वयज्ञेषु या स्मृता ।
तथाग्निहोत्रहवणी स्रुवश्चापि तथा स्मृतः ॥ २ ॥

३. १. मूल दण्डा त्वग्बिला च पुष्करं चतुरङ्गुलम् ।
पुष्कराद्द्विगुणं चाग्रं गजोष्ठं परिपठ्यते ॥

२. नेत्रादिकरणैर्हीनं नासिकाभ्यां द्विजैस्तथा ।
द्व्यङ्गुलः खाता च बिलादङ्गुलं चैव पिण्डिका ।
वृत्ता वा चतुरश्रा वा साधस्ताच्छोभना स्मृता ॥

३. अर्धाङ्गुलं पृथुत्वेन बिलबाह्यं समन्ततः ।
बिलं वृत्तं स्रुचो मध्ये दण्डस्थौल्यं बिलार्धतः ॥

४. चतुर्विंशत्यङ्गुलं दण्डं वदन्त्येके मनीषिणः ।
सप्तत्रिंशदङ्गुलानि सा स्रुक्चैव प्रकीर्तिता ॥

५. भिन्ना विशीर्णा वक्रा च क्लिन्ना च स्फुटिता तथा ।
सुषिरा ग्रन्थिभिर्युक्ता चक्षुरादिविनाशिनी ॥ ३ ॥

२३.४.१. दग्धशेषेऽर्धशुष्के विद्युता चैव पातिते ।
उन्मूल्ये पतिते भग्ने मनसापि न चिन्तयेत् ॥
२. शुभनक्षत्रतिथिषु शुभां गत्वा दिशं बुधः ।
स्रुवार्थं पातयेद्वृक्षं प्रातः प्राग्रं च सौम्यवाक् ॥
३. मृगो हरिणरुरुश्च कृष्णपृष्ठशिरस्तथा ।
यत्तस्य चर्म त्वक् चैव तत्कृष्णाजिनमुच्यते ॥
४. वाममुष्टि गृहीतास्तु प्रछिद्यन्ते सकृत्कुशाः ।
परशुनासिना वा तत्सकृदाछिन्नमुच्यते ॥
५. अङ्गुष्ठपर्वाग्रमुखं दर्व्याकृति तु मेक्षणम् ।
वैकङ्कते पालाशे वा प्रादेशस्तु प्रमाणतः ॥ ४ ॥
५. १. अलाबु वैणवं वापि दार्व्यं वैणवमेव वा ।
अक्षावमण्डलौ प्रोक्तौ यथा दृष्टं पुरर्षिभिः ॥
२. चक्राभ्यां काष्ठ संघातैः शिल्पिभिश्चैव यत्कृतम् ।
लोके प्रसिद्धं शाकटमिष्टं याज्ञिके विधौ ॥
३. आज्यं घृतं विजानीयान्नवनीतं सुसंस्कृतम् ।
सौवीराद्यञ्जनं चैव अथवा दैविकं तथा ॥
४. अभ्यञ्जनं च तत्प्रोक्तं तिलतैलं च यद्विदुः ।
आसनं कशिपु प्रोक्तं कायस्थं चोपबर्हणम् ॥
५. यवो दरैरष्टभिस्तु अङ्गुलं परिपठ्यते ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलं तु याज्ञिकैर्हस्त आकृतः ॥ ५ ॥
६. १. हस्तमात्रं स्रुवः खड्गं सकृदाछिन्नमेव च ।
बाहुमात्रा जुहूः प्रोक्ता ध्रुवा बर्हिस्तथैव च ।
२. ताम्रश्चैव स्रुवः प्रोक्तः खड्गं खादिरमेव च ।
पालाशी च जुहूः कार्या इध्माश्चैव विशेषतः ॥
३. ग्रहाः पात्राणि चमसा दण्डयूपासनानि च ।
वृक्षेषु याज्ञिकेषु स्युर्यथालाभेषु नान्यतः ॥

२३.६.४. समिधः प्रादेशमात्र्यो नित्यहोमे प्रकीर्तिताः ।
समिल्लक्षणदृष्टानि प्रमाणानि यथाक्रमम् ॥
५. शाम्यश्वत्थः पलाशश्च खादिरोऽथ विकङ्कतः ।
काश्मर्योदुम्बरो बिल्वो यज्ञवृक्षाः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

७. १. एषामलाभे वृक्षाणामन्ये ग्राह्यास्तु याज्ञिकैः ।
यज्ञाङ्गकार्ये द्रष्टव्याः समिदर्थं विशेषतः ॥
२. यवव्रीहिमहाव्रीहिप्रियङ्गुणां हि तण्डुलाः ।
श्यामाकतण्डुलतिल आसाद्याः श्रुतिचोदिताः ॥
३. सायंहरोमेषु यद्द्रव्यं प्रातर्होमेषु तद्भवेत् ।
भिन्नद्रव्यहुतं यत्तु न हुतं तस्य तद्भवेत् ॥
४. उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
क्षुधाकाले तथाप्येके पक्षहोमं तु कारयेत् ॥
५. यायावराणां मुनिभिः पक्षहोमस्तु तैः स्मृतः ।
यथा कथं चिद्वचनं श्रुत्युक्तं द्विज आचरेत् ॥ ७ ॥

८. १. आतुरः पथिकश्चैव राजोपद्रवपीडितः ।
पक्ष होमं तदा कुर्योन्निस्तीर्य सततं चरेत् ॥
२. चतुर्दश गृहीतं तु सकृदुन्नयते हविः ।
एका समित्सकृद्धोमः सोऽर्धमासाय कल्पते ॥
३. चतुर्दशगुणं कृत्वा स्रुचा पात्रेण पूर्ववत् ।
एवं गार्हपत्ये च दक्षिणाग्नौ च जुह्वति ॥
४. पूर्वा हुत्वाहुतीः सायं व्युष्टायामपरेऽहनि ।
एतेनैव विधानेन जुह्वति प्रातराहुतीः ॥
५. ऋषिभिश्च पुरा दृष्टमापत्कालेषु सर्वतः ।
अरण्योश्च समारोप्य श्रुतिदृष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥

९. १. होमार्थेष्वेतद्द्रष्टव्यमाहिताग्निगृहेष्वपि ।
तत्प्रयोजनमात्रं तु न दोषः सूक्तेषु च ॥

२३.९.२. सद्यः शौचादिकं प्रोक्तं सूतकं च द्विजातिभिः ।
स्वयंहोमीति वचनान्न दोषः श्रुतिचोदनात् ॥
३. व्रतिनां सत्रिणां चैव महाराजाहिताग्नयः ।
एषां दोषो न विद्येत सायंप्रातःक्रिये स्थिते ॥
४. पालाश्यः समिधोऽदोषा नित्यं होमे प्रकीर्तिताः ।
अथवा कौशिकोक्तानां यज्ञियानां महीरुहाम् ॥
५. अङ्गुलत्रयमावर्त्य उच्छ्रयेऽप्यङ्गुलत्रयम् ।
पुरोडाशप्रमाणं तु सर्वत्र कथितं नृणाम् ॥ ९ ॥

१०. १. षोडशाङ्गुलमावर्त्य त्रिभागं चोत्तरमृजु ।
दक्षिणस्यां दिशि स्थानं दक्षिणाग्नेः प्रकीर्तितम् ॥
२. अष्टाविंशत्यङ्गुलानि गार्हपत्यं प्रकीर्तितम् ।
आवहनीयं चतुर्विंशतिश्चतुरश्रं तु कारयेत् ॥
३. अङ्गुलानि तु षट्त्रिंशद्धन्वाकृत्या तु कारयेत् ।
दक्षिणाग्नेस्तु वै कुण्डं विद्वद्भिः परिकथ्यते ॥
४. ईशान्यां दिशि सभ्यस्य गार्हपत्यविधानतः ।
सभ्यं नेच्छन्ति शालाग्नौ माहकिः कौशिकस्तथा ॥
५. मौदायनास्तथेच्छन्ति शौनकेयास्तथैव च ।
मन्त्रादेव तथा प्रोक्तं द्रव्यं यत्र न दृश्यते ॥
६. आज्यं तत्र विजानीयाद्धोमस्तत्र स्रुवेण च ।
अभ्युक्षणं हविःकर्म कर्तव्यं वज्रपाणिना ॥
७. कुशहस्तेन कर्तव्या जपहोमपितृक्रियाः ।
यज्ञे चैवाङ्गभूताश्च पात्रमन्त्रहविर्द्विजः ।
चतुर्भिश्च क्रियाः सर्वाश्चतुर्होत्रं तदुच्यते ॥ १० ॥

११. १. याज्ञिकास्तु वदन्त्यन्ये चतुर्भिर्यच्च हूयते ।
ब्रह्मणाध्वर्युहोतृभ्यां त्रिभिरग्निचतुर्थकैः ॥

२३.११.२. दुर्भिक्षे चाकुले भङ्गे ऋत्विजा चाप्यसंभवे ।
एकाश्चातुर्होत्रं कुर्यादापस्तम्दे प्रपठ्यते ॥
३. ऋत्विजां चाप्यसांनिध्ये अध्वर्युस्तत्पठेत्स्वयम् ।
अस्थानपठिते कुर्युर्ऋत्विगित्यादि चोदितम् ॥
४. खाते लूने तु यच्चोक्तं संस्कारश्रुतिहेतुभिः ।
द्रव्याणां यज्ञक्लृप्त्यर्थं कुर्यात्पूर्वेण संग्रहम् ॥
५. पात्रासादं द्वितीयं च प्रोक्षणेन विवर्जितम् ।
उभयोश्चैव कुर्वीत पाकयज्ञेष्टिकर्मवत् ॥ ११ ॥
१२. १. कृष्णाजिनं तिला दर्भा मन्त्रा आज्यं द्विजोत्तमाः ।
दोषो न विद्यते ह्येषां यथार्थं संनियोजयेत् ॥
२. आज्यं धूमहविर्ज्वाला परिपाकः स्फुलिङ्गकैः ।
दावाग्निकाष्ठसंस्पर्शे अग्नेर्दोषो न विद्यते ॥
३. जपाध्यायतपोदानैः सोपवासैः सहोमकैः ।
श्राद्धादिपितृकार्यैश्च न दोषः परिवेदने ॥
४. पितृभ्रातृसपत्नैश्च पतितोन्मत्तषण्ढकैः ।
जात्यन्धमूकबधिरैर्न दोषः परिवेदने ॥
५. अत्यन्तकामिना चैव पत्नीहीनेन चैव हि ।
एषां अनुज्ञामादाय कुर्याद्वैतानिकीः क्रियाः ॥ १२ ॥
१३. १. रौद्रराक्षसपैशाचानासुरांश्चाभिचारिकान् ।
मन्त्रांश्च पितृकर्मैवं कृत्वालभ्योदकं स्पृशेत् ॥
२. स्रुक्स्रुवश्च ध्रुवा खड्गं मुसलोलूखलं चरुः ।
उदकेनैव सोष्णेन सम्प्रक्षाल्य विशुध्यति ॥
३. पात्रं ग्रहाश्च चमसा हविः शूर्पं कुशासनम् ।
सोमस्पृष्टं च यद्भाण्डं वारिशौचेन शुद्ध्यति ॥
४. वेदोक्तं सर्वमन्त्रोक्तं शौनकेन महात्मना ।
अवश्यं तद्द्विजैः कार्यं श्रेयस्कामैस्तु नित्यशः ॥

२३.१३.५. पात्राणां तु प्रसङ्गेन यदन्यत्परिकीर्तितम् ।
सायं प्रातस्तु होमाङ्गं पुरा दृष्टं महर्षिभिः ॥ १३ ॥

१४. १. गुरुणाभाषितेनैव याज्ञिकानुमतेन च ।
सदोपदिष्टद्रव्याणां लक्षणं परिकीर्तितम् ॥

२. नित्यं येऽनुस्मरिष्यन्ति यज्ञपात्रेषु लक्षणम् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्स्यन्ति ते ध्रुवम् ॥

३. पिप्पलादेन महता समाख्यातमिदं शुभम् ।
ब्राह्मणनां हितार्थाय पुत्रशिष्यहिताय च ॥

४. निष्कामो वा सकामो वा वेदोक्तं यः समाचरेत् ।
निष्कामस्य तु मुक्तिः स्यात्सकामः फलमश्नुते ॥

५. निष्कामेण तु यत्किंचित्कर्तव्यमिति वैदिकम् ।
तत्सर्वं मुक्तिदं ज्ञेयं परापरपरं सुखम् ॥

६. न शोकस्तस्य नो व्याधिर्न मृत्युर्न जरा तथा ।
न क्षुधा न पिपासा च अमृतात्मा स तिष्ठति ॥
अमृतात्मा स तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

इति यज्ञपात्रलक्षणं समाप्तम् ॥ २३ ॥

२४. वेदिलक्षणम्

पाण्डलिपियों में परिशिष्ट के जिस अंश को उपरोक्त शीर्षक से अभिहित किया गया है वह वास्तव में 'वेदिलक्षण' और 'अग्निवर्णलक्षण' की परस्पर अस्तव्यस्तता का परिणाम है।

परिशिष्ट का प्रथमांश, जो सर्वाधिक अस्तव्यस्त है उसमें वेदि के आकार और प्रकार से सम्बद्ध नियम दिये गये हैं (१.४–६ग)। १.६घ–७ में वेदिनिर्माण तथा अलंकरण के नियम हैं। १.८–९ में वेदि के किसी पार्श्व के वक्र हो जाने के परिणाम की चर्चा की गई है और १.१० एक परम्परागत समापम श्लोक है। इस परिशिष्ट के प्रथम दो खण्ड कुछ अपूर्ण हैं; इनके पाठ का आरम्भ और सम्भवतः अन्त नष्ट हो गया है।

अग्निवर्णलक्षण के परिचय में उन कर्मों का वर्णन है जिनमें अग्नि के प्राकट्य को अवश्य देखना चाहिये (१. २–३)। तैयारी के लिये २१. ४, ४ और बाद, का सन्दर्भ देते हुये उशना के निर्देशों का सतर्कतापूर्वक पालन करने का निर्देश किया गया है (२. १–२)। २. ३ में विभिन्न बातों, जैसे शब्द, वर्ण, गन्ध आदि पर ध्यान देने का निर्देश है। अपशकुनों से सम्बद्ध एक खण्ड प्रत्यक्षतः नष्ट हो गया प्रतीत होता है। अवशिष्ट २. ४–६. ४ में शुभशकुनों का उल्लेख है। इस अंश में कहीं कहीं पुनरावृत्ति मिलती है, और शैली की दृष्टि से २. ५–३. २ और ५. १–६. ४ शेष अंशों की अपेक्षा बहुत बाद के समय के प्रतीत होते हैं।

वेदिलक्षणम्

२४.१.१. ॐ अथ ऋषिपुत्रिकायां तु स्फुटं सर्वेषु कर्मसु।
लक्षणं ह्यग्निवर्णानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥
२. वास्तुकर्मण्यथोत्पाते पतेर्नीराजने विधौ।
सर्वनक्षत्रहोमेषु ग्रहातिथ्यविधौ तथा ॥
३. यात्रोद्याने विवाहेषु चूडोपनयनेषु च।
सर्वेषु चाग्निहोमेषु वह्निवर्णान्निबोधत ॥
४. मानेनाध्यर्धशीर्षण्या त्रिमध्या षण्मुखास्मृता।
चतुरश्रा च कर्तव्या वेदिः शान्तीष्टिकर्मसु।

२४.१.५. एषा वै विपरीता च कार्या घोरेषु कर्मसु
कर्मणामनुरूपां तु वेदिं वक्ष्याम्यतः परम् ॥

६. यथावर्तनगोचर्मचक्रतल्पेषु संमिता ।
कार्यारत्निप्रमाणा वा बाधकाशाधयेन च ॥

७. श्लक्ष्णाः समाहिताः सर्वाः प्रागुदक्प्रवणाः शुभाः ।
संमृज्य प्रोक्ष्य संस्तीर्य विधिवच्चोपशोभयेत् ॥

८. दक्षिणेन तु या वक्रा याज्ञिकं सा विनाशयेत् ।
या च वक्रोत्तरेण स्याद्यजमानं विनाशयेत् ॥

९. पुरस्तात्पृष्ठतो वापि मध्यतो विषमा च या ।
पुरमन्तःपुरं चापि नायकं च हिनस्ति सा ॥

१०. एषा संक्षेपतः प्रोक्ता वेदिः सामान्यलक्षणा ।
पिशेषतस्तु तेष्वेव कर्मस्वेवाभिधास्यते ॥ १ ॥

२.१. प्राचीं संशोधयेद्भूमिं यज्ञवास्तु यथोदितम् ।
समित्कुशाग्निवर्णानां लक्षणज्ञो भवेद्गुरुः ॥

२. ततस्तु यत्नवान्सम्यगग्नावुपसमाहिते ।
अग्निवर्णान्परीक्षेत यथोवाचोशनाः कविः ॥

३. शब्दं वर्णं च गन्धं च रूपं स्नेहं प्रभां गतिम् ॥
स्पर्शं चापि परीक्षेत अग्नाविति विनिश्चयः ॥

४. स्वाहाकारवासाने तु स्वयंमुत्थाय पावकः ।
हविर्यत्राभिलषति तद्विद्यादर्थसिद्धये ॥

५. वृषवारणमेघौघनेमिदुन्दुभिनिःस्वनः ।
मृणालपद्मदूर्वाभकुमुदोत्पलगन्धमुक् ॥ २ ॥

३. १ तथा महात्मा स्तनयन्वाहकुम्भनिभद्युतिः ।
संहितज्वालनिकरः पावकः पापनाशनः ॥

२. कुरण्टाकृतिगोक्षीरहेमारुणतडित्प्रभः ।
प्रोत्फुल्लोत्पलकुन्देन्दुकुमुदाभोत्पलद्युतिः ॥

२४.३.३. हुतोऽपि संज्वलत्येव स्निग्धो विप्रस्य दक्षिणः ।
लेलिहानः प्रमुदितः कृष्णवर्णोऽर्थसिद्धये ॥
४. विशालमूलो ह्यमलो नीलः पृथुलमध्यमः ।
प्रदीप्ताग्रोऽमलतलो ज्वालामालाकुलोऽनलः ॥
५. प्रदक्षिणः प्रसन्नार्चिरर्चिष्मानर्चितद्युतिः ।
अर्चनीयश्च नृपतेरर्चितो हव्यवाहनः ॥ ३ ॥
४.१. परिस्तरणयोगाच्च यज्ञकाण्डपरिच्छदम् ।
शान्तिवेश्मोर्ध्वदीप्तार्चिर्ऋत्विजश्चानुलिम्पति ॥
२. प्रहसन्निव शब्देन द्योतयन्निव तेजसा ।
कृतपुण्यस्य नृपतेर्हूयमानो हुताशनः ॥
३. कर्मणोऽवभृथे यस्य हविषोऽन्ते च पार्थिवम् ।
सुगन्धाभिरधूमाभिः शिखाभिः संस्पृशन्निव ॥
४. अर्चिभिर्ज्वालभारैश्च प्रदहन्द्विषतां दिशः ।
विधूमः कुण्डली यः स्यादनुलोमश्च सिद्धये ॥ ४ ॥
५.१. कुरण्टहेमारुणशङ्खकुन्द-
मुक्तावलीन्दुप्रतिमे हुताशे ।
समस्वने सिंहवृषैर्गजेन्द्र-
बलाहकौघस्वनदुन्दुभीनाम् ॥
२. विशालमूले पृथुले च मध्ये
ज्ञेयानले संप्रति पीडिताग्रे ।
मृणालपद्मानिलतुल्यगन्धे
त्रिसागरान्ता वसुधा नृपस्य ॥
३. आतप्तकाञ्चनचयारुणताम्रदातो
यस्यानलो ज्वलति वेदिगतो नृपस्य ।
तस्यार्थबान्धववती सकला महीयं
वीर्यांशुजालविवराहतराजशब्दा ॥

२४.५.४. विभ्राजते त्वखिलरागयुतो हुताशो
हस्तावृतं कथयतीव जयं नृपस्य ।
सूर्यांशुभिः कृतविघट्टनहेमपद्म
किंजल्कचूर्णनिकरारुणतामलांशुः ॥

५. क्षीरोदशुक्तिपुटगर्भविकीर्णमुक्ता–
संघातपाण्डुररजो रथनेमिघोषः ।
दाता नृपाय वसुधां तु हिमांशुमौलि-
ज्योत्स्नाविकाशितसमुद्रजलां हुताशः ॥ ५ ॥

६.१. लक्ष्मीप्रदोहरमृणालकपालशुभ्र-
स्निग्धानुवृत्तशिखरप्रकृतिश्च यत्र ।
वैश्वानरो ज्वलति यस्य विशुद्ध मूर्तिः-
स प्राप्नुयान्नृपशताधिपतां नरेन्द्रः ॥

२. बालार्कबोधितसरोरुहगर्भगन्धस्
तोयावलम्बिजलदस्तनिताभिरामः ।
राज्ञो ददाति वसुधां हुतभुग्गजेन्द्र-
दन्ताग्रकम्पितमहार्णववीचिवृक्षाम् ॥

३. यस्यां वसन्तरविमण्डलतुल्यबिम्बो
वेद्यां नृपस्यपरिपूर्णमरीचिजालः ।
तस्यानलाकलितसागरतोयवस्त्रा
भ्रागैक्षवेणिरवनिर्वशमभ्युपैति ॥

४. यस्यानलो ज्वलति काञ्चनतुल्यगौरो
प्रज्वाल्यमानवपुरुत्पलकोशगन्धः ।
आयाति तस्य भवनं ह्यलिदीप्तिमाला
सव्रीडसूर्यकिरणा क्षितिपाल लक्ष्मीरिति ॥ ६ ॥

इति वेदिलक्षणं समाप्तम् ॥ २४ ॥

२५. कुण्डलक्षणम्

१. १–३. शौनक द्वारा भार्गव को उपदेश ।

१. ३–८. चार दिशाओं और चार मध्य दिशाओं को अर्पित आठ प्रकार के कुण्ड जिनका दिग्देवताओं से सम्बद्ध कर्मों में उपयोग किया जाना चाहिये ।

१. ९–११. कुण्डों के उपयोग से सम्बद्ध अन्य कर्म ।

१. १२. मेखला की ऊँचाई ।

२. १–३. कुण्ड के विभिन्न भागों की सतर्कतापूर्वक रचना का पुरस्कार ।

२–४. शान्तिगृहों तथा मन्दिरों की रचना के लिये भी ऐसे ही नियमों का विधान ।

२–५. कुछ यज्ञों के लिये कुण्डों का प्रमाण !

कुण्डलक्षणम्

२५.१.१ ॐ शौनकं तु सुखासीनं भार्गवः परिपृच्छति ।
कुण्डं कस्मिन्भवेत्कीदृक्कस्यां वा दिशि किं फलम् ॥

२. स तस्मा उपसन्नाय आचष्टे भार्गवाय तु ।
कुण्डं यस्मिन्भवेद्यादृग्यस्यां वा दिशि यत्फलम् ॥

३. चतुरश्रं शफाकृत्या अर्धचन्द्रं त्रिकोणकम् ।
वर्तुलं पञ्चकोणं च पद्माभं सप्तकोणकम् ॥

४. कुण्डान्येतानि पूर्वादिदिक्ष्वष्टसु विनिर्दिशेत् ।
दिग्देवतानां चाष्टानां कर्माणि स्वंस्वं आदिशेत् ॥

५. चतुरश्रं तु पूर्वस्यामैन्द्रेष्वपि च कर्मसु ।
शफाकृति तदाग्नेय्यामाग्नेयेष्वपि कर्मसु ॥

६. अर्धचन्द्रं तु याम्यायां याम्येष्वपि च कर्मसु ।
नैर्ऋत्यां च त्रिकोणं स्यादभिचारविधौ शुभम् ॥

७. वारुण्यां वर्तुलं ज्ञेयं वारुण्येष्वपि कर्मसु ।
वायव्यां पञ्चकोणं तु वायव्येष्वपि कर्मसु ॥

५२१.८. उत्तरस्यां तु पद्माभं सौम्येष्वपि च कर्मसु ।
ऐशान्यां सप्तकोणं तु रौद्रेष्वपि यथोदितम् ॥
९. सर्वकर्मसु विज्ञेयं कुण्डं पद्मनिभं तु यत् ।
चतुरश्रं तु सर्वत्र समं स्याद्विजयावहम् ॥
१०. सर्वशान्तिकरं कुण्डं पद्माकारं विशेषतः ।
शान्तिके चतुरश्रं च पौष्टिके वर्तुलं तथा ॥
११ अभिचारे त्रिकोणं च वश्यादौ चार्धचन्द्रकम् ।
षट्कोणं मारणादौ च विद्वेषे चाष्टकोणकम् ॥
१२. मेखला सर्वकुण्डेषु द्वादशाङ्गुलमिष्यते ।
चतुरङ्गुलमानेन पूर्वापूर्वसमुच्छ्रिता ॥ १ ॥
२.१. न चेत्पुरस्ताद्धीनं स्यात्सुखं यज्ञः समाप्यते ।
यत्तु दक्षिणतोऽहीनं तद्राज्ञस्त्वभयप्रदम् ॥
२. यथाहीनं पश्चिमेन भवेत्तत्सिद्धिदं शुभम् ।
उत्तरेण समं यत्स्यात्तद्राज्ञो राज्यवर्धनम् ॥
३. मध्ये समं च सुखदं दिग्विदिक्षु समं तु यत् ।
तद्राजजनसंपत्कृत्सर्वांश्चारीन्विनाशयेत ॥
४. न चेत्पुरस्तादित्यादि य एष कथितो विधिः ।
मण्डपानां गृहाणां च माने शान्तिकरः स्मृतः ॥
५. हस्तकुण्डं सदाहोमे अयुते द्विकरं स्मृतम् ।
लक्षहोमे चतुष्पाणि कोट्यामष्टकरं स्मृतम् ॥
कोट्यामष्टकरं स्मृतमिति ॥ २ ॥

इति कुण्डलक्षणं समाप्तम् ॥ २५ ॥

२६. समिल्लक्षणम्

प्रस्तुत परिशिष्ट का पाठ इसी विषय के दो पाठों के संयोग से निर्मित प्रतीत होता है; तुकी०, २.४ और १.४ और बाद, की २.५ और बाद, से समानता। इसका पाठ पर्याप्त अंशों तक भ्रष्ट है। पाठ की एक मूल पाण्डुलिपि के अन्त में श्लोकों की संख्या का ३३ के स्थान पर ६० लिखा होना बहुत अविश्वसनीय नहीं है।

प्रथम पाठ, १.१–२.३ विभिन्न कर्मों में समिधाओं के प्रमाण के वर्णन से ही आरम्भ, १२ इंच की समिधा की अनुमति, तथा प्रमाण-तालिका (१.२–३) से ही समाप्त हुआ होगा। इसके बाद समिधाओं के दोषों तथा उनके परिणामों की चर्चा की गई है (१.४–५)। ४ और ५ ख के बीच कुछ छूट गया है और ५ क उसी का एक अंश प्रतीत होता है। बाद के खण्ड २.१–३ में इस प्रश्न का विवेचन है कि फल, पुष्प और पत्र को भी समिधा पर रखना चाहिये या नहीं; तदनन्तर पाठ कुछ इस प्रकार सहसा आगे बढ़ता है कि इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ छूट गया है।

२.५–३. २ ख में समिधा के दोषों और उनके परिणामों का वर्णन है; ३. २ ग–४. २ ख में समिधाओं की लम्बाई तथा विभिन्न कर्मों में ऊपर लेप करने की वस्तुओं का उल्लेख है। ४. २ ग–५ ख में तीन उच्चवर्णों में से प्रत्येक के लिये तथा सभी वर्णों के लिये नियमों का उल्लेख है। ४.५ ग–५. ५ ख में फलानुसार समिधाओं और इन्धनों की सामग्री का वर्णन (इसी में ४.६ के पद प्रक्षिप्त किये गये हैं जिनमें एक अविच्छिन्न रूप से इन्धनों का वर्णन है)। ५ ग–ख में उपयुक्त निष्कर्ष दिया गया है जिसके बाद ९ ग–१० ग आता है, किन्तु यह प्रक्षिप्त है। ६ ग–९ ख में नक्षत्रों की पूजा में प्रयुक्त समिधा की सामग्री का, तथा ग्रह-नक्षत्र पीड़ा के समय होमादि के नियमों का उल्लेख है।

समिल्लक्षणम्

२६.१.१. ॐ समिधां संप्रवक्ष्यामि प्रमाणं लक्षणं शुभम्।
तथा शुभं च तत्त्वेन यथाफलविभागतः॥
२. यज्ञकर्माणि कर्तव्याः शान्तिके पौष्टिके तथा।
प्रादेशमात्रीः समिधः प्रोक्ताः सर्वेषु कर्मसु॥
३. तिर्यग्यवोदराण्यष्टादूर्ध्वा वा व्रीहयस्त्रयः।
अङ्गुलस्य प्रमाणेन प्रादेशो द्वादशाङ्गुलः॥

२६.१.४. अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या नापि ह्रस्वा न चोर्ध्वतः ॥
न वक्रा चैव कर्तव्या नापि ग्रन्थिसमन्विता ॥
५. ऊर्ध्वतस्तु यतो वक्रा चित्रदद्रुविचर्चिकाः ।
करोति यागे क्षिप्रं तु तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ १
२. १. द्विफला पिण्डवर्जापि त्रिफला वापि या भवेत् ।
षट्फला सप्तफला या चतुरङ्गं विनश्यति ॥
२. सपत्रपुष्पसमिधः कल्पयित्वा विचक्षणः ।
पौष्टिकं कर्म कुर्वीत सिध्यते नात्र संशयः ॥
३. पत्रपुष्पयुता यास्तु शान्तद्रुमसमुद्भवाः ।
समिधो गोष्ठमध्ये तु प्रशस्ताः परिकीर्तिताः ॥
४. अथापरं प्रवक्ष्यामि समिधां चैव लक्षणम् ।
५. विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्रा चैव द्विधाग्रतः ।
कृश च दीर्घा स्थूला च कर्मसिद्धिविनाशिनी ॥
६. यद्यत्र लक्षणं प्रोक्तं यस्मिन्काले यथाविधि ।
तत्र तेनैव सिद्धिः स्याद्विपरीते तथा भयम् ॥
७. समाहृतानां समिधां तासां चैव फलं शृणु ॥
८. विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद्विदला रोगदा भवेत् ।
अभिमुखगतमत्रा सद्यो ह्रस्वा निवर्तयेत् ॥ २ ॥
३. १. दुर्भगं कुरुते वक्रा स्थानभ्रंशं द्विधाग्रतः ।
कृशा सर्वविनाशाय दीर्घा नाशयते श्रियम् ॥
२. स्थूला तु कुरुते विघ्नं सर्वकार्ये द्विजस्य तु ।
अतः प्रमाणं विविधं फलं चापि तथा शृणु ॥
३. लतापल्लवसंजाता द्वादशाङ्गुलकल्पिता ।
क्षीराक्ता शान्तिके होमे होतव्या तु विशेषतः ॥
४. केवलं मुक्तिसिद्ध्यर्थं घृताक्तां होमयेद्द्विजः ।
दशाङ्गुलप्रमाणां हि होमयेन्मन्त्रकर्मणि ॥

२६.३.५. नवाङ्गुला तु कर्तव्या तैलाभ्यक्ताभिचारिके ।
अष्टाङ्गुला विभूत्यर्थे घृतदध्ना तु होमयेत् ॥ ३ ॥

४. १. केवलं मधुसंयुक्ता सप्ताङ्गुलदलीकृता ।
उच्चाटने प्रशस्ता सा द्विदला च न शान्तये ॥
२. विद्वेषे कटुतैलाक्ता द्विदला तु षडङ्गुला ।
सर्वतो ग्रन्थिहीना तु विप्राणां स्यात्समिच्छुभा ॥
३. अवक्राग्रन्थिसंयुक्ता क्षत्रियाणां जयावहा ।
मध्ये तु ग्रन्थि संयुक्ता वैश्यानां भूतिसाधनी ॥

४. त्रयाणामपि वक्ष्यन्ते या ग्राह्याः समधिः स्मृताः ।
नात्यार्द्रा नातिशुष्का वा नैव चोषरसंभवाः ॥
५. न दग्धा न कृमिदष्टाः सर्वदोषविवर्जिताः ।
समिधामिन्धनानां च तुल्यान्वृक्षान्ब्रवीम्यतः ॥
६. शुष्कैर्या इन्धनैः पूर्वं यज्ञवृक्षमयैः शुभैः ।
आर्द्राणि होमयेच्चैव शुष्कैः कलहकर्मणि ॥
शुष्कानि हीन्धनानि स्युः समिधस्तु यथोदिताः ॥ ४ ॥

५. १. पुष्टिकामः पलाशस्य गृह्णीयाच्छान्तिकर्मणि ।
उदुम्बरस्य वित्तार्थी वटाश्वत्थस्य राज्यधीः ॥
२. श्रीकामो बिल्ववृक्षस्य कदम्बस्य तथैव च ।
विद्वेषं कटुकैः कुर्यात्कण्टकैर्मरणं भवेत् ॥
३. ककुभं कटभं वृक्षं कौविरालं तु कौहकम् ।
वंशं विभीतकं शिग्रुं विद्यादुच्चाटने हितान् ॥
४. स्तम्भने सर्वसैन्यानां विजयार्थे जयं दिशेत् ।
अपामार्गेण सौभाग्यमायुष्कामो हि दूर्वया ॥
५. पुन्नागचम्पकौ वृक्षा ये चान्ये क्षीरिणः शुभाः ।
यद्यत्र लक्षणं प्रोक्तं यस्मिन्काले यथाविधि ॥

२६.५.६. तत्र तेनैव सिद्धिः स्याद्विपरीते तथा भयम् ।
अर्कः पलाशो मधुको न्यग्रोधोदुम्बरस्तथा ॥
७. प्लक्षोऽश्वत्थो गोमयानि कुशाश्च समिधः क्रमात् ।
यथाक्रमेण समिध आदित्यादिग्रहेषु च ॥
८. शतं सहस्रं लक्षं वा गायत्र्या परमाहुतिः ।
हूयमानं तु यत्किंचित्कृतान्नं यदि वा तिलाः ॥
९. ग्रहेनक्षत्रपीडायां सावित्र्यापि हुतं हुतम् ।
एष भेदो मयाख्यातः शुभस्य त्वशुभस्य च ॥
१०. यथोक्तमेतद्यः कुर्यात्स सर्वफलमाप्नुयादिति ॥ ५ ॥

इति समिल्लक्षणं समाप्तम् ॥ २६ ॥

२७. स्रुवलक्षणम्

१. १—३ इसकी सामग्री।
१. ४—२. १. इसके व्यवहार की विधि।
२. २—४. इसका आकार और प्रकार; दोषों का परिणाम।
२. ५. इस सिद्धान्त के लिये गोपथ प्रमाण हैं।

स्रुवलक्षणम्

२७.१.१. ॐ सौवर्णराजतैस्ताम्रैः कांस्यैर्द्रौमैस्तथायसैः।
स्रुवैः सर्वगुणोपेतैः कर्मकुर्याद्यथाक्रमम्॥
२. सौवर्णै राजतैर्यज्ञे ताम्रैः शान्तिकपौष्टिके।
कांस्येन रुधिरं मांसं नान्यज्जुहीत किंचन॥
३. सर्वे यज्ञे प्रयोक्तव्या वर्जयित्वा सस्रुवम्।
आयसं खादिरं चैव अभिचारे प्रयोजयेत्॥
४. अधुन्वंश्चैव जुहुयात्स्रुवेणास्फुटिताहुतिम्।
धुन्वन्हि हन्ति पुत्रांस्तु राक्षसा स्फुटिताहुतिः॥
५. नान्यत्किंचिदभिध्यायेदुद्धृत्यान्यत आहुतिम्।
तद्दैवतमभिध्यायेदाहुतिर्यस्य हूयते॥ १॥
२. १. स्रुवे पूर्णे जपेन्मन्त्रमुत्तानं शान्तिके करम्।
शान्तिके पौष्टिके चैव वर्जयेत्तु कनीनिकाम्॥
२. नातिदीर्घोनातिह्रस्वो नातिस्थूलः कृशस्तथा।
अष्टाविंशत्यङ्गुलः स्यात्कनिष्ठाग्रे प्रमाणतः॥
३. दीर्घो हिनस्ति राजानं ह्रस्व ऋत्विजं विनाशयेत्।
स्थूलः सस्योपघाताय कृशः क्षयकरः स्मृतः॥
४. गोपुच्छाग्राकृतिर्दण्डो मण्डलाग्रं शिरो विदुः।
अङ्गुष्ठाग्रप्रमाणेन निम्नं शिरसि खानयेत्॥

२७.२.५. एतल्लक्षणमुद्दिष्टं स्रुवस्य फलभेदतः ।
गोपथेन यथाशास्त्रमुद्धृतं श्रुतिचोदनात् ।
स्रुवेण कुरुते कर्म हस्तेनापि तथा शृणु ॥ २ ॥

इति स्रुवलक्षणं समाप्तम् ॥ २७ ॥

२८. हस्तलक्षणम्

१. १—२. परिचय, जिज्ञासुओं के लिये गोथप द्वारा उपदिष्ट ।

१. ३. अनामिका को कुश से ढँक लेना चाहिये और बायें हाथ से दाहिने का स्पर्श करना चाहिये ।

१. ४. हाथ को दोष रहित होना चाहिये और घुटनों को मोड़कर आहुतियाँ डालनी चाहिये ।

१. ५—२. १ यज्ञ में प्रयुक्त अँगुलियों की संख्या ।

२. २—५ अभिचार-कर्म के नियम ।

परिशिष्ट का अन्तिम अंश भ्रष्ट है ।

हस्तलक्षणम्

२८.१.१. ॐ यदा जुहोति हस्तेन दक्षिणेनेतरेण वा ।
तदा वक्ष्ये विधिं तस्य श्रेयसी स्याद्यथाहुतिः ॥

२. यथा नश्यति चैवास्य कर्म गुह्यमजानतः ।
तथाहं संप्रवक्ष्यामि गोपथः पाठमिच्छताम् ॥

३. कुशबल्वजमौञ्जां वा कृत्वा वेष्टिमनामिकाम् ।
होमकर्म ततः कुर्यात्स्पृष्ट्वा वामेन दक्षिणम् ।

४. न रिक्तपाणिर्जुहुयान्नानिपातितजानुकः ।
अनिपातितजानोश्च हरन्त्याहुती राक्षसाः ॥

५. उद्धृत्य समिधोऽन्नं वा पञ्चभिर्जुहुयाद्बुधः ।
शनैश्च निर्वपेदन्नं मध्येऽग्नौ सुसमाहितः ॥ १ ॥

२. १. गृहकर्मणि यज्ञे वा तथा पञ्चभिरेव तु ।
शान्तिके पौष्टिके चैव वर्जयेत्तु कनीनिकाम् ॥

२. तिसृभिर्जुहुयादन्नं न तिलान्नैव तण्डुलान् ।
यदाभिचारिकं किंचित्तस्मिन्काले प्रयोजयेत् ॥

२८.२.३. वामेनाभिचरन्नित्यं त्रिभिरङ्गुलिभिः समैः ।
निर्दिष्टं तिसृभिः शूलं तेन शत्रुं निपातयेत् ॥

४. अपसव्येन हस्तेन सव्यं यदि जुहोति तत् ।
सव्येन चापसव्यं तु सव्यं यदि जुहोति तत् ॥

५. अभिचारस्तु तत्प्रोक्तः ....
सर्वशान्तिं गमिष्यति ॥

इति ॥ २ ॥

इति हस्तलक्षणं समाप्तम् ॥ २८ ॥

अष्टाविंशतितमं परिशिष्टम् ॥

२९. ज्वालालक्षणम्

१. १—३. परिचय; बृहस्पति द्वारा नारद को उपदिष्ट ।

१. ४—२. ५ ज्वालाओं के रंग, धूम, ध्वनि और दिशा से निष्कृष्ट शुभाशुभ फल; अशुभ लक्षण की दशा में शान्तिकर्म करने के निर्देश ।

ज्वालालक्षणम्

२९.१.१. ॐ बृहस्पतिं सुखासीनं आत्मविद्यापरायणम् ।
प्रणिपत्य महर्त्विजं नारदः परिपृच्छति ॥

२. कथयस्व महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
अशुभं यच्छुभं वापि लक्षणं पावकस्य तु ॥

३. स पृष्टस्तेन तत्सर्वं आचचक्षे महामतिः ॥

४. हूयमानो यदावह्निर्ऋजुज्वालः प्रदृश्यते ।
स्निग्धश्च किंशुकाभश्च सिद्धिस्तत्र विनिर्दिशेत् ॥

५. यत्र बालार्कवर्णाभः कर्मण्यग्निः प्रदृश्यते ।
शान्तिं लभेते तत्राशु यजमानपुरोहितौ ॥

६. अशोक कुसुमाभोऽपि काञ्चनाभस्तथैव च ।
शान्तिं करोरत्यकालेन हूयमानो हुताशनः ॥ १ ॥

२. १. अधूमो ज्वलते क्षिप्रं कृत्वावर्तं प्रदक्षिणम् ।
तदा शान्तिं विजानीयाद्विपरीते तथा भयम् ॥

२. श्वसते गर्जते चैव विस्फुलिङ्गसमन्ततः ।
प्रायश्चित्तं तदा कुर्याद्यदुक्तं कौशिकेन तु ॥

३. अथाप्य आलिङ्गते भूमिं भ्रमते च समन्ततः ।
अशुभं कथयेत्तत्र होत्रेऽसौ पावकः स्वयम् ॥

४. कपिलः पिङ्गलस्ताम्रो रक्तः काञ्चनसप्रभः ।
शुभकृत्पावको ज्ञेयो विपरीतो भयावहः ॥

२९.२.५. यदाग्नौ लक्षणं किंचिदशुभं तु प्रदृश्यते ।
होता क्लेशमवाप्नोति शान्तिं तत्र प्रयोजयेत् ॥
इति ॥ २ ॥

इति ज्वालालक्षणं समाप्तम् ॥ २९ ॥

३०. लघुलक्षहोमः

इस तथा अगली परिशिष्ट में सावित्री मन्त्र से एक लाख होम करने का वर्णन है। कोटिहोम और अयुतहोम भी इसी समान कर्म हैं जिनमें क्रमशः १,००,००,००० तथा १०,००० होम किये जाते हैं। परिशिष्ट ३० ख. १. १ में इन तीनों ही कर्मो का वर्णन है। कोटि होम का विशेष रूप से परिशिष्ट ३१ में वर्णन है किन्तु अयुतहोम का हमें कोई विशेष वर्णन तब तक उपलब्ध नहीं कहा जा सकता जब तक कि १. ५ग—२. २ख को ही हम इसका वर्णन करनेवाले स्थल का अंश न मान लें। श्लोकों का जो क्रम है उसमें व्यवधान प्रतीत होता है और यदि ५ ग-घ को ६. के बाद रख दें तो इसमें कुछ सुधार हो सकता है।

१. १—२ परिचय; शौनक द्वारा गौतम को उपदिष्ट।

१. ३—५ख; २. २ गघ भूमि तथा उसे होम के लिये तैयार करना।

२. ३—३. २ अग्नि प्रज्वलित करना; होम; गायत्री-प्रशंसा।

४. १—पुरोहित की दक्षिणा।

४. २—५ इस कर्म में विभिन्न परिवर्तन के फल।

लघुलक्षहोमः

३०.१.१ ॐ शौनकं तु सुखासीनं गौतमः परिपृच्छति।
लक्षहोमस्य यत्पुण्यमाहुतीनां च देवताः॥

२ तस्मै यथावदाचष्टेशौनको ज्ञानलोचनः।
शृणुष्वावहितो भूत्वा लक्षहोमं यथाविधि॥

३. अग्न्यागारस्य या भूमिस्तां प्रवक्ष्याम्यशेषतः।
शुद्धाक्षारा समा स्निग्धा या च पूर्वोत्तरप्लवा॥

४. अभस्मास्थ्यङ्गारतुषा प्रशस्ता परिकीर्तिता।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु जङ्घामात्रं द्विरत्निकम्॥

५. चतुरश्रं चतुष्कोणं तुल्यं सूत्रेण धारयेत्।
ब्राह्मणा वेदसंपन्ना ब्रह्मकर्मसमाधयः॥

३०.१.६. उपोष्य चैकरात्रं च गायत्र्या अयुतं जपेत् ।
उपोष्य चैव गायत्र्या जपेयुरयुतं बुधाः ॥ १ ॥

२. १. ते शुक्लवाससः स्नाताः स्रग्भिर्गन्धैरलंकृताः ।
निराहारास्तथा दान्ताः संतुष्टाः सजितेन्द्रियाः ॥

२. कौशमासनमासीनाः प्रयुञ्ज्युर्होममुत्तमम् ।
उल्लिख्य चाद्भिरभ्युक्ष्य संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥

३. अग्ने प्रेह्यग्निना रयिमित्युपस्थाप्य पावकम् ।
कुर्यादुपसमाधाय समास्त्वाग्ने समाहितः ॥ २ ॥

३. १. यवधान्यतिलैर्मिश्रां गायत्र्या परमाहुतिम् ।
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रकीर्तिता ॥

२. सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिपात्स्थिता ।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ३ ॥

४. १. लक्षहोमे हुते पूर्णे धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अनड्वान्काञ्चनं वस्त्रं तुष्येयुर्येन वा द्विजाः ॥

२. यवैस्तु विपुलान्भोगान्धान्यैरायुष्यमेव च ।
तिलैर्हुत्वा तु तेजस्वी आयुः कीर्तिं च वर्धते ॥

३. आदित्यलोकोऽर्कमयी पालाशी सोम आप्यते ।
अश्वत्थी विष्णुलोकस्य ब्राह्म औदुम्बरी तथा ॥

४. अनेनैव विधानेन हूयतेऽत्र हुताशनः ।
हुत्वैतांश्चतुरो लक्षान्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥

५. यावज्जीवति कर्तासौ तावत्पुत्रान्धनं श्रियम् ।
पूर्णे काले विमानेन नीयते परमं पदम् ॥
नीयते परमं पदमिति ॥ ४ ॥

इति लघुलक्षहोमः समाप्तः ॥ ३० ॥

त्रिंशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

३०ख. बृहल्लक्षहोमः

यह गत कर्म का ही एक बृहत् संस्करण है; और कोटिहोम तथा अयुत होम के प्रासंगिक उल्लेख के विपरीत भी यहां प्रत्यक्षतः लक्षहोम का ही वर्णन किया गया है।

१. १. परिचय अथर्वा द्वारा काङ्कायन को उपदिष्ट।

१. २. यज्ञ कौन करे; यज्ञ का उद्देश्य; इसकी घोषणा तथा पुरोहित का व्रत।

१.३–१३. अग्निकुण्ड की रचना तथा उसके उपकरण जो मुख्यतः बादरि से उद्धृत हैं।

१.१४–१५. प्रारम्भिक कृत्य।

१. १६. होम-सामग्री।

१. १७. विभिन्न सामग्रियों के मिश्रण के विविध फल।

२.१—६. समापमकर्म तथा दक्षिणा।

२.७—८. आगतरात्रि में स्वप्न से शुभाशुभ का निष्कर्ष।

२.९—११. फल।

बृहल्लक्षहोमः

३०ख.१.१. ॐ अथ काङ्कायनो भगवन्तमथर्वाणं पप्रच्छ ॥ भगवन् केन विधानेन कोटिहोमं लक्षहोममयुतहोमं वा प्रारम्भमाणः कथमृत्विजो वृणीते कथं च कुर्युस्तस्मै स होवाच ॥

२. ब्राह्मणो वा राजा वा वैश्यो वा ग्रामो वा जनपदो वा श्रीकामः शान्तिकामः कोटिहोमं लक्षहोममयुतहोमं वाहं करिष्यामीति तस्या समाप्तेर्भवद्भिरमांसाशिभिर्ब्रह्मचारिभिर्हविष्यभुग्भिर्भवितव्यं,

३. तैस्तथेत्युक्तः कुण्डमेकहस्तं द्विहस्तं चतुर्हस्तमष्टहस्तं वा समस्तहस्तं वा दीर्घं वा दशहस्तं खानयेत्तथा च बादरिः ॥

४. लक्षहोमे तु कर्तव्यमष्टहस्तं न संशयः।
द्विहस्तं वा प्रकुर्वीत चतुर्हस्तमथापि वा ॥

५. कुण्डं वा दशहस्तं तु द्विविस्तारं तथोत्तरम्।
न चेत्पुरस्ताद्धीनं स्यात्सुखं यज्ञः समाप्यते ॥

३ख.१.६. अथ दक्षिणतो हीनं यजमानभयंकरम् ।
पश्चिमेन विहीनं स्याद्यज्ञस्यासिद्धिदं ध्रुवम् ॥
७. उत्तरेण विनिर्दिष्टं राज्ञो राज्यहरं भृशम् ।
मध्ये विहीनं यत्कुण्डं प्रजाक्षयकरं विदुः ॥
८. स्रक्तिहीनं तु यत्कुण्डं तदप्यशुभदं भवेत् ।
द्वादशाङ्गुलमानेन मेखलाक्षेत्रमुच्यते ॥
९. मेखलात्रयमुद्दिष्टमुभयं चतुरङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलमानेन पूर्वापूर्वसमुच्छ्रिता ॥
१०. प्रथमा सात्त्विकी प्रोक्ता द्वितीया राजसी स्मृता ।
तृतीया तामसी ज्ञेया मेखला वृषभध्वजः ॥
११. चतुर्दशाङ्गुलां तत्र योनिं कुर्वीत साधकः ।
अष्टाङ्गुलं भवेद्वृत्तं निर्वाहस्तु षडङ्गुलः ॥
१२. गजोष्ठसदृशाकारा प्राजापत्या च सा विदुः ।
एवं कृत्वा विधानेन कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥
१३. सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वतस्तु समाहितः ।
कुण्डं सिद्धिकरं ज्ञेयमायुःकीर्तिविवर्धनम् ॥
१४. तस्माद्यत्नेन कुण्डम्खात्वाद्भिरभ्युक्ष्य गोमयेनोपलिप्य लेखादिकमग्निप्रतिष्ठापनान्तं कृत्वा, पुरस्तादग्नेरादित्यादीन्ग्रहान्प्रतिष्ठाप्योत्तरतः कृत्तिकादीनि नक्षत्राणि, स्वासु दिक्षु लोकपालान्सर्वासु कुण्डस्रक्तिष्वग्न्यादिदेवान्प्रतिष्ठाप्य,
१५. तेषां प्रतिमन्त्रमावाहनादिकं कृत्वा विलीनपूतमाज्यं गृहीत्वा स्रुवं स्रुचं च संमृज्य प्रतप्येध्ममुपसमाधायान्वारब्धाय वास्तोष्पत्यादिभिश्चतुर्भिर्गणैः शान्त्युदकं कृत्वा, ततः कर्तारमाचामयति च संप्रोक्षति च ।
१६. अथ समिधो घृताक्तास्तिलान्वा स्वाहाकारवतीः संख्यावत्यो गायत्र्या महाव्याहृतिभिर्वा सर्व ऋत्विजो जुह्वति ॥

३०ख.१.१७ श्रीपर्णमिश्राः श्रीकामस्य शमीपर्णमिश्राः शान्तिकामस्य करीरसक्तुमिश्रा वृष्टिकामस्य बदरादिफलमिश्राः पशुकामस्य ॥ १ ॥

२. १. अहरहः कर्मणोऽपवर्गादथ पूर्णायां कोट्यां लक्षे वायुते वान्वारब्धे यजमाने निशि महाभिषेकं कृत्वा वसोर्धारां जुह्वति ॥

२. औदुम्बरीं स्रुचं शिरः प्रमाणां ब्राह्मणस्य ललाटप्रमाणां क्षत्रियस्य स्कन्धप्रमाणां वैश्यस्याग्रमाणां जनपदस्य,

३. तेषां अन्ते सरणार्थं निम्नं खानयित्वोष्णोदकेन प्रक्षाल्याज्यमानीय वसोर्धारां वैश्वानरं प्राप्नोति ॥

४. तद्यदाज्यधानीं च वैश्वानरं प्राप्नोति अथोच्चारयति ॥

५. ओजश्च मे क्षत्रं च मे ये अग्नयो नमो देवत्रधेभ्यो भवाशर्वौ मृडतं प्राणायं नम इति हुत्वा अर्घं प्रदाय वस्त्रं लोध्रं माल्यं फलादीनि भाजने कृत्वा नमस्ते अस्तु पाश्यत इति स्वाहाकारेणाग्नौ प्रक्षिप्य यंयं कामं कामयते सोऽस्मै कामः समृध्यते ॥

६. समृद्धिहोमादि समानं स्वस्त्ययनानिजपेत्पुण्याहं वाचयेद्गोभूतिलसुवर्णं वासश्च ऋत्विग्भ्यः संप्रदाय प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

. तस्मिन्नहनि व्यतीते यदि स्त्री माल्यहस्ता श्वेतचन्दनानुलिप्ता श्वेतपुष्पाण्यादाय प्रयच्छेद्गौरसर्षपान्पाण्याधारे वा गृहीत्वा प्रासादमारोहयेत्कुञ्जरं वा प्रमत्तमश्वं श्वेतं वा पर्वतं गोवृषं वा यानं युक्तं वाजिभिर्यद्यारोहेत्स्वप्नकाले समस्तसिद्धिं विद्यान्मनसो यामभीष्टाम् ॥

८. तस्मात्त रात्र ।प्रयतः स्वपेत् ॥ स्वप्नं दृष्ट्वा ऋत्विग्भ्यो निवेदयेत् ॥ परोऽपहि यो न जीवोऽसि विद्म ते स्वप्न यथा

कलां यथा शफमिति राजमुखमभिमन्त्र्य यथागतं गच्छे-
युस्तदपि श्लोकाः ॥

३०ख.२.९. दिव्यान्तरिक्षभौमेषु अद्भुतेषु न संशयः ।
कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा लक्षं वायुतमेव वा ॥

१०. अविज्ञातं च यत्पापं सहसा चैव यत्कृतम् ।
तत्सर्वं लक्षहोमस्य करणाद्धि विनश्यति ।

११. तस्मात्सर्वेषु कार्येषु शान्तिकेषु विशेषतः ।
यः कुर्यात्प्रयतो नित्यं न सोऽनर्थान्समश्नुते ॥
न सोऽनर्थान्समश्नुत इति ॥ २ ॥

इति बृहल्लक्षहोमः समाप्तः ॥

३१. कोटिहोमः

१,००,००,००० होम कर्म ।

१.१—४.३. परिचय : असुरों से त्रस्त होकर देवों तथा ऋषियों ने ब्रह्मा से रक्षा की याचना की। ब्रह्मा ने उन सबको बताया कि वे सावित्री मन्त्र से लगातार यज्ञ करके समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यदि वे सब महान समृद्धि चाहते हों तो उन्हें एक पुरोहित से उसी प्रकार कोटिहोम सम्पन्न कराना होगा जैसा प्राचीन काल में अथर्वा ने शिव के लिये किया था। तदनन्तर ब्रह्मा यह बताते हैं कि किस प्रकार शिव ने अथर्वा से निवेदन किया था और फिर अथर्वा ने किस प्रकार कोटि-होम सम्पन्न करके सफलता प्राप्त की थी। ब्रह्मा ने आगे बताया कि यज्ञ के सफल होने पर शिव ने किस प्रकार प्रसन्न होकर अथर्वा से कोटिहोम कर्म का उपदेश देने का निवेदन किया, तथा अथर्वा का उत्तर (४.४—९.५)। इस परिशिष्ट का यही सारांश है।

४.४–५ इस कर्म के अवसरों का उल्लेख।

५.१–३ इसका आरम्भकाल।

५.४. अग्निकुण्ड का प्रमाण।

५. ५—६ प्रारम्भिक कृत्य: होमकर्ता को तीन दिनों तक व्रत रखना चाहिये; चतुर्गणी शान्ति कर्म सम्पन्न करना चाहिये, यज्ञभूमि को तीर्थजल से सिंचित करना चाहिये; और 'नैर्ऋतं कर्म' तक महाशान्ति कर्म सम्पन्न करना चाहिये, तुकी० शान्तिकल्प: १५।

६. १—२. वास्तविक कृत्य; होम करनेवाले पुरोहितों की संख्या।

६. ३ एक स्थानापन्न कृत्य।

६. ४—५ कुछ विशेष सामग्रियाँ समर्पित करने के विशेष फल।

७. १—२. यज्ञकर्त्ता तथा पुरोहितों के लिये नियम।

७. ३—४ दक्षिणा।

७. ५—८. ४. समापम कर्म : ग्रहनक्षत्रों का पूजन, महाशान्ति कर्म की पूर्णाहुति (इसका स्वरूप-विशेष यज्ञकर्ता की इच्छा पर निर्भर है) और अन्त में 'घृतकम्बल' को सम्पन्न करना, तुकी० परिशिष्ट ३३।

८.४ग–९.५. अभिचारकर्म के लिये इस कृत्य में परिवर्तन; विशेषतः मन्त्र का उल्टा पाठ; तुकी० परिशिष्ट ३४।

१०.१–३. इसके उपदेश के लिये शिव ने अथर्वा को 'पशुपतेर्व्रतम्' प्रदान किया (तुकी० परिशिष्ट ४०) जिसे अथर्वा ने अपने शिष्यों को बताया। प्रस्तुत कर्म से मनोकामनापूर्ति के लिये उक्त व्रत का ज्ञान आवश्यक है।

१०.४–५. इस परिशिष्ट का पाठफल, इसकी परम्परा।

कोटिहोमः

३१.१.१. ॐ देवाश्च ऋषयश्चैव पीडयमाना महासुरैः।
मृत्युना व्याधिभिश्चैव ब्रह्माणमिदमब्रुवन्।

२. कर्मणा केन देवेश मृत्युर्व्याधिश्च जीयते।
ऐश्वर्यं प्राप्यते वापि स्थानं च परमं प्रभो॥

३. एवमुक्तो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रत्युवाचेश्वरः सर्वान्विप्रान्देवगणैः सह॥

४. शृणुध्वं प्रयताः सर्वे प्राप्यते येन कर्मणा।
ऐश्वर्यमायुरारोग्यं पुत्रा विजय एव च॥

५. सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
ये जपन्ति सदा तेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित्॥ १॥

२. १. तथा होमश्च कर्तव्यः सततं सिद्धिमिच्छता।
यवैस्तिलैः समिद्भिश्च व्रीहिभिः सर्षपैस्तथा॥

२. अथ चेन्महतीं सिद्धिं प्रार्थयेध्वं सुरोत्तमाः।
पुरोधसा कारयध्वं कोटिहोमं महाफलम्॥

३. यादृशं कृतवान्पूर्वमथर्वा त्र्यम्बकस्य तु।
तादृशेन विधानेन कोटिहोमः प्रयुज्यते॥

४. महत्त्वं प्रार्थयमानः शर्वोऽथर्वाणमब्रवीत्।
कुरुष्व मम तत्कर्म महत्त्वं येन लभ्यते॥

५. ऐश्वर्यमायुरारोग्यं स्थानं च परमं प्रभो।
पुत्रा लक्ष्मीर्यशो मेधा बलं पौरुष्यमेव च॥ २॥

३१.३.१. एवमुक्तो महातेजा अथर्वा मन्त्रदर्शवित् ।
गायत्रीं तपसा युक्तामृचः पदमितीति ह ॥
२. ऋचः पदं मात्रयेति मन्त्रे विज्ञायते हि सा ।
गायत्री वै त्रिपाद्ब्रह्म विश्वरूपा च संस्थिता ।
३. प्राणदा सर्वभूतानां धारणी यापि नित्यशः ।
इति निश्चित्य मनसा कोटिहोमं प्रयोजयत् ॥
४. समिद्भिः शान्तवृक्षस्य गायत्र्या सुसमाहितः ।
ततो महत्त्वमगमदैश्वर्यं परमं तथा ॥
५. महादेव इति चास्य नाम लोकेषु विश्रुतम् ।
उपद्रवाश्च ये केचिदुपघातास्तथैव च ।
सर्वेऽस्य प्रशमं याताः स्कन्दं पुत्रं च लब्धवान् ॥ ३ ॥
४. १. ततः प्रीतस्तु भगवाञ्छंकरः पर्यपृच्छत ।
अथर्वाणं महाप्राज्ञं कोटिहोमस्य को विधिः ॥
२. चतुर्विंशाक्षरं ब्रह्म त्रिपादं लोकधारणम् ।
सावित्रं तेन होमोऽयं कृतो मे कोटिसंमितः ॥
३. विधिं चास्य प्रवक्ष्यामि सर्वलोकहिताय वै ।
यत्प्रयोगाद्भवेच्छान्तिर्वृद्धिश्च परमा नृणाम् ॥
४. उपद्रवेषु भूतानामापत्सु विविधासु च ।
कोटिहोमः प्रयोक्तव्यः केतूनां दर्शने तथा ॥
५. उपसर्गभये चैव परचक्रभये तथा ।
अनावृष्टिभये चैव कोटिहोमं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
५. १. आरम्भं तस्य कुर्वीत शुक्ले चापि तिथौ शुभे ।
मुहूर्ते विजये चैव तिथिच्छिद्राणि वर्जयेत् ॥
२. रोहिण्यां वैष्णवे त्वाष्ट्रे पौष्णे मैत्रोत्तरेषु च ।
अभिजित्पुष्यसौम्येषु कुर्यात्पुण्येषु वा बुधः ॥

पुण्याहं वाचयित्वास्य आरम्भं कारयेद्बुधः ।

३१.५.४. अष्टहस्तं तु निर्दिष्टं कोटिहोमस्य खातकम् ।
तस्यैवार्धप्रमाणेन लक्षहोमे विधीयते ॥

५. त्रिरात्रो पोषितो ब्रह्मा कृत्वा शान्ति चतुर्गणीम् ।
प्रोक्षयेत्कर्मसिद्ध्यर्थं वास्तु शान्त्युदकेन तु ॥

६. महाशान्ति विधानेन निर्मथ्याग्निं समाहितः ।
तावत्कुर्याद्बुधः सर्वं यावन्नो नैर्ऋतं कृतम् ॥ ५ ॥

६. १. ततः प्रभाते बहुश उद्धृत्याग्निं समाहितः ।
निर्मथ्य हावयेत्तत्र समिधो ब्राह्मणान्बहून् ॥

२. शतं सहस्रं कोटिं वा विंशतिर्दश वा द्विजाः ।
जुहुयुः शान्तवृक्षस्य समिधो घृतसंयुताः ॥

३. स्वयं वापि यजेद्ब्रह्मा सवितारं दिनेदिने ।
पाकयज्ञविधानेन मन्त्रश्चात्र विषासहिम् ।

४. शान्तिकामो यवैः कुर्यात्तिलैः पापापनुत्तये ।
समिद्भिः सर्वकामस्तु बिल्वैः प्राप्नोति काञ्चनम् ।

५. लभते श्रियमग्र्यां तु पद्मैस्तेजो घृतेन तु ।
दध्ना तु लभते पुत्रान्पयसा ब्रह्मवर्चसम् ॥ ६ ॥

७. १. हविष्यभोजिनो दान्ताः शुक्लाम्बरधरास्तथा ।
हावका नियताः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मचारिणः ॥

२. आरण्यमुपयुञ्जानः पयसा वापि वर्तयेत् ।
फलाहारोऽपि वा ब्रह्मा कोटिहोमं समाचरेत् ॥

३. प्रत्येकं चैव होतॄणां दातव्या दक्षिणा ततः ।
निष्को अश्वो गौर्वासश्च हिरण्यं वापि शक्तितः ॥

४. यश्चैवापि भवेद्ब्रह्मा प्रयोक्ता सर्वकर्मणाम् ।
सर्वस्वं तस्य देयं स्याद्धिरण्यं वापि तत्समम् ॥

३१.७.५. कोटिहोमे समाप्ते तु यजेद्ग्रहगणान्बुधः ।
कार्येदमृतां चैव घृतकम्बलमेव च ॥ ७ ॥
८. १. कार्या मृता मृत्युभये घृतकम्बलसंयुता ।
परचक्रागमे त्वैन्द्री घृतकम्बलमेव च ॥
२. रौद्री सर्वाद्भुतोत्पत्तौ घृतकम्बलसंयुता ।
सलिला सलिलक्षये घृतकम्बल एव च ॥
३. घृतकम्बलपृष्ठा च सलिला सलिलक्षये ।
येनयेन तु कामेन कोटिहोमं प्रयोजयेत् ॥
४. आम्नातं तत्र यत्कर्म तदन्ते कारयेद्बुधः ।
एष एव विधिर्दृष्टो अभिचारे विधीयते ॥
५. प्रतिलोमयात्र होमः सावित्र्या तिलसर्षपैः ।
आरम्भं तस्य घोरेषु नक्षत्रेषु दिनेषु च ॥
६. कारयेत्कृष्णपक्षस्य तिथिछिद्रेषु सर्वदा ।
मघाश्लेषा तथा मूलं रेवत्यार्द्रा च सर्वदा ॥ ८ ॥
९. १. दर्भार्थे तु शरान्कुर्याद्घृतार्थे तैलमुच्यते ।
स्वाहाकारे तु फट्कारो वेण्याद्याः स्युश्चतुर्दश ॥
२. चाण्डालाग्नौ चिताग्नौ वा सूतिकाग्नावथापि वा ।
हावयेद्घोरवृक्षाणां समिधस्तैलसंयुताः ॥
३. रक्तोष्णीषी रक्तवासाः कृष्णाम्बरधरोऽपि वा ।
जुहुयाद्वामहस्तेन समिधो दक्षिणामुखः ॥
४. खादिराग्नौ मधूच्छिष्टे कृत्वा प्रतिकृतिं रिपोः ।
तापयेत्प्रतिलोमां तु सावित्रीं मनसा जपेत् ॥
५. कण्ठे शूलार्पितां कृत्वा तापयेत्तु दिनेदिने ।
यावच्छत्रुर्वशं याति विलीनायां विनश्यति ॥ ९ ॥
१०. १. एवं प्रोक्तविधानेन कोटिहोमस्य शंकरः ।
प्रीतिमानुच्यते येन तच्छुभं भौतिकं ददौ ॥

३१.१०.२. अथर्वा भौतिकं लब्ध्वा शिष्येभ्यस्तत्पुनर्ददौ ।
शुभं मोक्षकरं पुण्यं प्रियं पशुपतेर्व्रतम् ॥
३. एतज्ज्ञात्वातु यः सम्यक्कोटिहोमं प्रयोजयेत् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥
४. यस्त्विमं श्रावयेद्विद्वान्पठते चैव सर्वदा ।
कोटिहोमफलं लब्ध्वा रुद्रलोके महीयते ॥
५. गोपथात्पाणिनेयाय मध्ये नृणां प्रमोदिनाम् ।
हितार्थमुद्धृतो ग्रन्थः कोटिहोमस्तु विश्रुतः ॥
कोटिहोमस्तु विश्रुत इति ॥ १० ॥
इति कोटिहोमः समाप्तः ॥ ३१ ॥

३२. गणमाला

इस परिशिष्ट में कुछ ऐसे सूक्त-समूहों की परिभाषा दी गई है जिन्हें सांस्कारिक पाठों में समूहनाम से ही अभिहित किया गया है। इनके दो भाग प्रतीत होते हैं। प्रथम भाग में शान्तिकल्प में व्यहृत क्रमानुसार गणों और महाशान्ति को प्रस्तुत किया गया है ! दूसरा भाग (जो १९ख से आरम्भ होता है) परिशिष्ट है। इसके लिये दोनों भागों के स्वरूप के अन्तर को प्रस्तुत किया जा सकता है : २–१९ में प्रत्येक गण के पहले उसका नाम दिया गया है; १९ख में इस प्रकार के नामों को छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त, आदित्यगण (१९ख) शान्तिकल्प में उपेक्षित हैं; यद्यपि यदि यह ज्ञात होता तो 'आदित्या शान्तिः' के लिये इसका उपयोग किया गया होता। इसी प्रकार सलिल-गणः (२२) को शान्तिकल्प के साथ नहीं, बल्कि उस 'सलिला-शान्ति' के साथ सम्बद्ध किया जाना चाहिये जिसका ३१.८ में उल्लेख है। साथ ही इस दूसरे भाग में ऐसे शब्द भी आते हैं जिनकी पहले भाग में पहले ही परिभाषा दी जा चुकी है; उदाहरण के लिये १ की २०, २६, २७; १० की २८; और १२ की २९ के साथ तुलना कीजिये।

गणमाला

३२.१.१. ॐ भूस्तत्सवितुः शं नो देवीः शान्ता द्यौः शं न इन्द्राग्नी शं नो वातो वातु उषा अप स्वसुस्तम इति शान्तिगणः ॥१॥

२. कृत्याप्रतिहरणो दूष्या दूषिरसि ईशानां त्वा समं ज्योतिरुतो अस्यबन्धुकृद्ये पुरस्तात्सुपर्णस्त्वा यां ते चक्रुः प्रतीचीन-फलो यद्दुष्कृतमयं प्रतिसरो यां कल्पयन्तीति कृत्याप्रति-हरणानि ॥ २ ॥ इति कृत्यागणः ॥ २ ॥

३. चातनः स्तुवानमिदं हविर्येऽमावास्यामुप प्रागाग्निःसाला-मरायक्षयणं शं नो देवी पृश्निपर्ण्या पश्यति तान्सत्यौजा-स्त्वया पूर्वं पुरस्ताद्युक्तो अन्तर्दावे जुहुत प्राग्नये रक्षोहण-मित्यनुवाकश्चातनानि ॥ ३ ॥ इति चातनगणः ॥

४. मातृनामा दिव्यो गन्धर्व आ पश्यतीमं मे अग्ने यौ ते मातेति मातृनामानि ॥ ४ ॥ इति मातृगणः ॥

३२. ५. वास्तोष्पतीय आशानामाशापालेभ्य इहैव ध्रुवामृधङ्मन्त्रो योनिमुत पुत्रः पितरमिन्द्रस्य गृहोऽसीति चतस्रो दिवे स्वाहाश्मवर्म मे पृथिव्यै श्रोत्रायाति धन्वानीति द्वे ऊर्जे विभ्रदिति षट् सत्यं बृहदित्यनुवाको वास्तोष्पतीयानि ॥ ५ ॥ इति वास्तुगणः ॥

६. पाप्महा वि देवा जरसावृतम्, अप नः शोशुचदघम्, अव मा पाप्मन्निति पाप्महा ॥ ६ ॥ इति पाप्महा गणः ॥

७. तक्मनाशनो जरायुजः प्रथमो यदग्निरुदगातां दशवृक्ष मुञ्च क्षेत्रियात्त्वा हरिणस्य रघुष्यदो मुञ्चामि त्वा भवाशर्वौ मन्वे वां यो गिरिषु दिवे स्वाहाग्निस्तक्मानमग्नेरिवास्याव मा पाप्मन्त्सृजाव ज्यामिव वरणो वरयाता इमं यवं विद्रधस्य बलासस्य नमो रूरायेति द्वे शीर्षक्तिं शीर्षामयमिति तक्मनाशनानि ॥ ७ ॥ इति तक्मनाशनगणः ॥

८. दुःस्वप्ननाशनानि दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं परोऽपेहि यो न जीवोऽसि पर्यावर्ते दुष्वप्न्याद्यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि यो न स्तायद्दिप्सति यो नः सुप्तां जाग्रतो यन्मे मनसो दुष्वप्न्यं काम स्वप्नं सुप्त्वा विघ्नते स्वप्नेति त्रयः पर्यायादुःस्वप्ननाशनानि ॥ ८ ॥ इति दुःस्वप्ननाशन-गणः ॥

९. आयुष्यो यथा द्यौः प्राणापानावोजोऽसि तुभ्यमेवाक्षीभ्यां ते मुञ्चामि त्वोत देवा आवतस्त उप प्रियमन्तकाय मृत्यव आ रभस्व प्राणाय नमो विषासहिमित्यायुष्याणि ॥ ९ ॥ इत्यायुष्यगणः ॥

१०. वर्चस्यो ये त्रिषप्ता अस्मिन्वसु प्रातरग्निं हस्तिवर्चसं सिंहे व्याघ्रे यशो हविर्यशसं मेन्द्रो गिरावरगराटेषु यथा सोमः प्रातःसवने यच्च वर्चो अक्षेषु येन महानघ्न्या जघनमिति वर्चस्यानि ॥ १० ॥ इति वर्चस्यगणः ॥

३२.११. स्वस्त्ययनो अमूः पारे पातं न इन्द्रापूषणा त्वष्टा मे दैव्यं येन सोम नो देववधेभ्योऽभयं मित्रावरुणावुप प्रागात्सहस्रा-क्षोऽनमित्रं नो अधराद्यमो मृत्युर्बृहस्पतिर्नः परि पातु त्यमू षु त्रातारमिन्द्रः सुत्रामा स सुत्रामा आ मन्द्रैरिन्द्र मर्माणि ते वर्म में द्यावापृथिवी ऐन्द्राग्नं वर्म गिरयस्ते यत्ते मध्यं यास्ते प्राचीर्मा नः पश्चादितिस्वस्त्ययनानि ॥ ११ ॥ इति स्वस्त्ययन गणः ॥

१२. अभयः स्वस्तिदा विशां ब्राह्मणेन पर्युक्तासि न ता अर्वा रेणुककाटो अभयं मित्रावरुणावभयं द्यावापृथिवी अस्मै ग्रामाय हतं तर्द पूषे मा आशा इन्द्रः सुत्रामा मैतं पन्थां स्वस्तिदा विशां पतिर्नमस्ते घोषिणीभ्य आते राष्ट्रमिदमुच्छ्रेयो यत इन्द्र भयामह इत्यभयानि ॥ १२ ॥ इत्यभयगणः ॥

१३. अपराजितो विद्मा शरस्य मा नो विदन्नदारसृत्स्वस्तिदा संशितं मे त्वया मन्यो यस्ते मन्यो एता देवसेना अवमन्यु-र्निर्हस्तः परि वर्त्मान्यभिभूरिन्द्रो जयात्यभित्वेन्द्रेत्यपराजि-तानि ॥ १३ ॥ इत्यपराजितगणः ॥

१४. शर्मवर्मा यः सपत्न इतश्च यदमुतश्चापेन्द्र द्विषतो यूयं नः प्रवत इममग्न आयुषे तिस्रो देवीरुरुव्यचा नो इन्द्रस्य शर्मासीत्यु-त्तमां वर्जयित्वा येन देवा असुराणामनड्भ्यस्त्वमिति द्वे तनू-ष्टे वाजिन्वाजस्य नु प्रसवे देवानां पत्नीरधि ब्रूहि रक्षोहणं वाजिनं ये स्राक्त्यं वर्म मे द्यावापृथिवी ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं वर्म मह्यमयं मित्रः पृथिव्योदक्रामदसपत्नं पुरस्तादिति शर्म-वर्मा ॥ १४ ॥ इति शर्मवर्मा गणः ॥

१५. देवपुरा ये पुरस्ताद्ब्रह्म जज्ञानं सहस्रधार एवाग्निर्मा पातु अग्निं ते वसुवन्तं मित्रः पृथिव्योदक्रामदप न्यधुः पौरुषेयं वधं

जितमस्माकमिति देवपुरीयः ॥ १५ ॥ इति देवपुरीय गणः ॥

३२.१६. रुद्रो येऽस्यां प्राची दिगिति रुद्रगणः ॥ १६ ॥ इति रुद्रगणः ॥

१७. रौद्रो रुद्र जलाषभेषज येऽस्यां प्राची दिगुदितस्त्रयो अक्रमन्भवाशर्वौ मन्वे वां ब्रह्म जज्ञानमनाप्ता ये सहस्रधार एव ग्रीष्मो हेमन्तो अनुडुद्भ्यस्त्वं मह्यमापो वैश्वानरो यमो मृत्युर्यां ते रुद्र यो अग्नौ रुद्रोभवाशर्वौ मृडतं भवाशर्वाविदं ब्रूमो यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशादिति रौद्रगणः ॥ १७ ॥ इति रौद्रगणः ॥

१८. चित्रागणो मा नो विदन्नदारसृत्स्वस्तिदा विशा अमूः पारे अद्यद्विष्टा अग्ने यत्ते तप इति पञ्च सूक्तानि रुद्र जलाषभेषज येऽस्यां प्राची दिग्वि देवा उत देवा अग्नेमन्व इतिप्रभृतीनि मृगारसूक्तान्युत्तमं वर्जयित्वाप नः शोशुचदघं पृथिव्यामग्नये ममाग्ने ब्रह्म जज्ञानमनाप्ता ये सहस्रधारे सविता प्रसवानां नव प्राणान्पातं नस्त्वष्टा मे येन सोम नमो देववधेभ्योऽभयं मित्रावरुणावुप प्रागात्सहस्राक्षः सिंहे व्याघ्रेऽभयं द्यावापृथिवी ग्रीष्मो हेमन्तोऽनडुद्भ्यस्त्वं मह्यमापो वैश्वानरो यमो मृत्युरभि त्वेन्द्र विश्वजित्त्रायमाणायै इमं मे अग्ने विषाणा पाशान्शकधूमं सोमारुद्रेति द्वे बृहस्पतिर्नस्त्यमू षु त्रातारमिन्द्रः सुत्रामा आ मन्द्रैरिन्द्र मर्माणि ते अन्तकाय मृत्याव आ रभस्वायं प्रतिसरोऽयं मे वरणो भवाशर्वौ मृडतं प्राणाय नमोऽग्निं ब्रम इत्यर्थसूक्तं सत्यं बृहदिति द्वे प्रथमे गिरयस्ते यत्ते मध्यं यास्ते प्राचीर्मा नः पश्चाद्ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाण्युपस्थास्ते भूमे मातः सहस्रभृङ्गो वृषभो जातवेदा मा प्र गाम पथो यो यज्ञस्य तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशादिति पर्यायश्चित्रागणः ॥ १८ ॥ इति चित्रागणः ॥

३२. १९. पत्नीवन्तो अदितिर्द्यौः सिनीवालि कुहूं देवीमिति त्रीणि सूक्तानि पत्नीवन्तः ॥ १९ ॥ इति पत्नीवन्तगणः ॥

१९ख. स्वस्ति मात्र इन्द्र जुषस्वाया विष्ठा शिवे ते स्तां पादाभ्यां ते सं ते शीर्ष्णो वत्सो विराज इत्येका उच्चा पतन्तमिति द्वे भूयानिन्द्रो विषासहिं सहमानमित्यादित्यगणः ॥

२०. शं नो देवी शं न इन्द्राग्नी शं नो वातो वातु शान्ता द्यौः पिप्पलादिशान्तिगणः ॥ २० ॥ इति पिप्पलादिशान्तिगणः ॥

२१. अग्ने यदिति पञ्च सूक्तानि पञ्चापत्यानि भवन्ति पाञ्चजन्यानि भवन्ति पञ्चापत्यो गणः ॥२१॥ इति पञ्चापत्यगणः ॥

२२. अम्बयो यन्ति शंभुमयोभुभ्यां ब्रह्म जज्ञानमस्य वामस्य यो रोहित उदस्य केतवो मूर्धाहमिति द्वे सूक्ते विषासहिमिति सलिलगणः ॥ २२ ॥ इति सलिलगणः ॥

२३. ये त्रिषप्ता इति विश्वकर्मा गणः ॥ २३ ॥

२४. अघद्विष्टा देवजाता शं नो देवी वरणो वारयातै पिप्पली विद्रधस्य या बभ्रव इति गणकर्मा गणो भैषज्यश्च भवति ॥ २४ । इति भैषज्ययणः ॥

२५. अयं ते योनिरा नो भर धीती वा य इत्यर्थसूक्तमुत्थापनो गणः ॥ २५ ॥ इत्युत्थापन गणः ॥

२६. अम्बयो यन्ति शंभुमयोभू हिरण्यवर्णा निःसाला यो अग्नयो ब्रह्म जज्ञानमित्येकोत देवा मृगारसूक्तान्युत्तमं वर्जयित्वापनः शोशुचदघं पुनन्तु मा सस्रुषीर्हिमवतः प्रस्रवन्ति वायोः पूतः पवित्रेण शं च नो मयश्च नोऽनडुद्भ्यस्त्वं मह्यमापो वैश्वानरो रश्मिभिर्यमो मृत्युर्विश्वजित्संज्ञानं नो यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियं शिवा नः शं नो वातो वात्वग्नि ब्रूमो वनस्पतीनिति शान्तिगणः ॥ २६ ॥ इति सर्वैः सूक्तैः कौशिकोक्तबृहच्छान्तिगणः ॥

३२.२७. अम्बयो यन्ति शंभुमयोभू हिरण्यवर्णा उत देवा यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियं शिवा नः शं नो वातो वात्वग्निं ब्रूमो वनस्पतीनिति शन्तातीयो लघुशान्तिगणः ॥ २७ ॥

२८. ये त्रिषप्ता ममाग्ने वर्चः प्रातरग्निं गिरावरगराटेषु दिवस्पृथिव्या हस्तिवर्चसं सिंहे व्याघ्रे यशो हविर्यस्ते गन्ध इति तिसृभिर्वर्चस्य गणः ॥ २८ ॥

२९. या असुरा मनुष्या मा नो विदन्नमो देववधेभ्य इत्यभयगणः ॥ २९ ॥

३०. भूतो भूतेष्विति राजानमभिषेकगणः ॥ ३० ॥

३१. य आशानामाशापालेभ्यो अग्नेर्मन्व इति सप्त सूक्तानि या ओषधयः सोमराज्ञीर्वैश्वानरो न आ गमच्छुम्भनी द्यावापृथिवी यदर्वाचीनमग्निं ब्रूमो वनस्पतीनिति मुञ्चन्तु मा भवाशर्वा या देवीर्यन्मातली रथक्रीतमित्येताश्चतस्रो वर्जयित्वा अंहोलिङ्गगणः ॥ ३१ ॥

इति गणमाला समाप्ता ॥ ३२ ॥

३३. घृतकम्बलम्

एक ऐसे कृत्य से सम्बद्ध कर्म जिसमें 'कारयितृ' को एक कपड़े में लपेट कर उस पर घृत छिड़क दिया जाता है। प्रस्तुत परिशिष्ट में इस कर्म का साथ-साथ गद्य और पद्य दोनों में वर्णन है।

१.१–२. परिचय : यह परिशिष्ट ब्रह्म-प्रमाण पर आधारित है। बृहस्पति ने महेन्द्र के लिये इस कर्म को सम्पन्न किया था।

१.३–६. असुरों से पराजित हो जाने के बाद सविता के परामर्श पर इन्द्र ने इस कृत्य को सम्पन्न किया था।

१.७–८. कर्म-विधि : वर्णन अत्यधिक संक्षिप्त और भ्रष्ट है।

१.९. इस कृत्य के ब्रह्मन्-पुत्र होने की एक रहस्यवादी व्याख्या जिसमें विभिन्न गण इसके हाथ-पैर हैं।

१.११–११. इसका फल।

२.१–२. असुरों से पराजित देवों ने भृगु और अङ्गिरा द्वारा आविष्कृत कृत्य को सम्पन्न करने के लिये अथर्वा से कहा।

२.३–४. अवसर जिस पर इस कृत्य को सम्पन्न करना चाहिये।

२.५–३.७. घृत की मात्रा, प्रमाण-तालिका; घृत के उपयोग।

४.१–२. कृत्य का समय

४.३–६.१२. सांस्कारिक कृत्य

७.१–४. समापन कृत्य और दक्षिणा।

७.५. फल।

७.६–७. अन्य कृत्यों सहित घृतकम्बल को महाशान्ति के एक पूर्वकर्म के रूप में सम्पन्न करना चाहिये।

घृतकम्बलम्

३३.१.१. ॐ ब्रह्मणे ब्रह्मवेदाय नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
घृतकम्बलं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणो निगदो यथा॥

२. बृहस्पतिर्महेन्द्राय चकार घृतकम्बलम्।

३. अथेन्द्रो ह वा असुरैः पराजितश्चिन्तामापेदे

४. तं सवितात्रवीत्प्रायश्चित्तं कुरुष्वाप्रतिरुद्धो भविष्यसीति

३३.२.५. तमिन्द्रोऽब्रवीत् ॥ भगवंस्त्वमेवाप्रतिरुद्धः प्रायश्चित्तं कुर्विति ॥
६. स प्रायश्चित्तमकरोत्
७. पुण्ये नक्षत्रे बार्हस्पत्ये मुहूर्तेऽभिजित्यौदुम्बरं कुम्भं द्रोणेन साढकेन पूरयित्वा तस्मिन्नेव वासप्रभृतयः ओषधयो दर्भप्रभृतयश्च बिल्वगौरसर्षपाश्चेत्येतान्संभारान्संभृत्य घृतकुम्भं बर्हिष्याधायैतैर्गणैराज्यं जुहुयात् ॥
८. प्र पतेत इत्येकेनाङ्गादङ्गाच्छमलमवलिख्य सपत्नं भ्रातृव्यं हृदये मर्मणि वासिनाविध्य गोमयेन काषायेण वाच्छाद्य शान्तेरप्रतिघातकं कर्म ततो ज्येष्ठं घृतकम्बलं ब्रह्मणः पुत्रमकरोत् ,
९. तस्य ह वा एतस्य घृतकम्बलस्य सावित्रीगणशरीरस्य शन्तातीयः शिरः त्रिषप्तीयो मुखं रुद्ररौद्रौ चक्षुषी घृतलिङ्ग आस्यं नैर्ऋतो जिह्वा दन्तोष्ठावभयापराजितौ कृत्यादूषणचातनौ श्रोत्रे शर्मवर्मस्वस्त्ययनौ बाहू मातृनामवास्तोष्पत्यौ पादौ……पायुश्च भैषज्यं न्यायः प्राणापानाविति मीमांसत इत्य् ,
१०. एष ह वै ज्येष्ठो घृतकम्बलो ब्रह्मणः पुत्रोऽपराजितगणेनेष्ट्वेन्द्रोऽसुरानजयन्मृत्युमलक्ष्मीमरातिं दुःस्वप्नदुर्भूतान्यजयद् ,
११. यथा चैवं विद्वान्घृतकम्बलं कुरुते सर्वकामानाप्नोति सर्वव्याधिरहितो भवति ब्रह्मलोकमवाप्नोतीति ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

२. १. यदा सर्वमिदं व्याप्तमसुरैनर्वाशेषितम् ।
स्थातुं देवाः पराभूतास्तेऽथर्वाणमुपागताः ॥
२. कर्माद्येकं कुरुष्व त्वं यद्भृग्वङ्गिरसोर्मतम् ।
असुराणां बधार्थायेत्युक्तः कर्ताथ सोऽभवत् ॥
२. परचक्रोऽपसृष्टस्य राज्ञो विजयमिच्छतः ।
प्रतिरुद्धस्य वा भूयः श्रीकामस्येच्छतः श्रियम् ॥

३३.२.४. प्रादुर्भावेऽद्भुतानां च ग्रहाणां विग्रहे तथा ।
शङ्कमानोऽभिचाराद्वा कारयेद्घृतकम्बलम् ॥
५. घृतमात्रा तु विज्ञेया मागधप्रस्थसंमिता ।
शतानि पञ्च द्रोणानां पलैकशतमेव वा ॥ २ ॥
३. १. सर्वपापप्रणाशाय सर्वकामार्थ सिद्धये ।
सर्वरोगक्षयार्थाय प्रयोज्यो घृतकम्बलः ॥
२. घृतप्रमाणं वक्ष्यामि माषकं पञ्चकृष्णलम् ।
माषकाणि चसुःषष्टिः पलमेकं विधीयते ॥
३. द्वात्रिंशत्पलकं प्रस्थं मागधैः परिकीर्तितं ।
आढकं तु चतुःप्रस्थं चतुर्भिर्द्रोणमाढकैः ॥
३. द्रोणप्रमाणं विज्ञेयं ब्राह्मणा निर्मितं पुरा ।
द्वादशाभ्यधिकैर्नित्यं पलानां पञ्चभिः शतैः ॥
५. घृतमात्रा तु विज्ञेया मागधप्रस्थसंमिता ।
शतानि पञ्च द्रोणानां पलानां वा शतोत्तरे ॥
६. घृतद्रोणशतेनोक्त एको द्रोणवरस्तथा ।
यथाशक्ति प्रयुञ्जीत घृतं कृत्वाथ भागशः ॥
७. चतुर्भागोऽभिषेकाय चतुर्भागस्तु हूयते ।
भागो देयः सदस्येभ्यः कर्ता भागेन युज्यते ॥ ३ ॥
४. १. पुष्ये प्रयोगं कुर्वीत प्राजापत्येऽथ मारुते ।
वैष्णवे पूषदैवत्ये उत्तरेष्वथ वा त्रिषु ॥
२. तप्तकृच्छ्रावसाने वा सर्वकृच्छ्रस्य चान्ततः ।
यस्मिन्वा स्नातका ब्रूयस्तत्र कुर्याद्विचक्षणः ॥
३. पाकयज्ञविधानेन कृत्वोपक्रमणं बुधः ।
निशाकाले बहिर्ग्रामे कुर्यादग्निनिवेशनम् ॥
४. यजेत निर्ऋतिं तत्र कृष्णवासाश्चतुष्पथे ।
यथोक्तं नैर्ऋतैर्मन्त्रैर्हविर्भिश्च यथाक्रमम् ॥

३३.४.५. तृतीयेन तु सूक्तेन निवेद्य बलिमन्ततः ।
यथाव्यावर्तने चैव यदुक्तं तत्समाचरेत् ॥ ४ ॥

५. १. ततः स्नातः शुक्लवासाः प्राश्य शान्त्युदकं शुचिः ।
पर्युक्ष्योपसमाधाय घृतसंस्कार इष्यते ॥

२. पूर्वं महाव्याहृतिभिः सावित्र्या तदनन्तरम् ।
शान्तिश्च ब्रह्मजज्ञानं ब्रह्म भ्राजदितीति च ॥

३. अग्ने गोभिरग्नेऽभ्यावर्तिन्नग्ने जातवेदः सह रय्या पुनरूर्जेति ॥

४. अग्निमीळे पुरोहितमग्न आ याहि वीतये ।
बृहस्पतिर्न इत्येका बृहस्पते युवं तथा ॥

५. एतैराज्यं च जुहुयात्संपातानानयेद्घृते ।
कृत्यादूषणमन्त्रैश्च कुर्याच्छान्त्युदके विधिम् ॥

६. संपातानानयेत्तत्र चातनैर्मातृनामभिः ।
वास्तोष्पत्यैर्वास्तोष्पतावानयेत्समदूषणम् ॥

७. निधाय हविरासाद्य घृतकुम्भं सुसंस्कृतम् ।
घृतभागौ तु यावन्यौ पूर्वेणाग्नेर्निधापयेत् ॥

८. दर्भादींस्तु वासादींश्च संभारान्गौरसर्षपान् ।
बिल्वं च कुम्भे निधायापरेणाग्नेर्निधापयेत् ॥ ५ ॥

६. १. सावित्रः शन्तातीयश्च कृत्यादूषण एव च ।
अभयापराजितायुष्या वर्चस्यश्च ततः परः ॥

२. संसक्तीयः सुषुप्तीयः स्वस्त्ययनः शर्म वर्म च ।
चातनो मातृनामनि भैषज्यं न्याय एव च ॥

३. घृतलिङ्गौ तथा रौद्रौ संपातानानयेद्घृते ।
गणान्तेषु यथाशक्ति ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयेत् ॥

४. योऽस्मिन्नक्षीभ्यां ते सहस्राक्षं ब्रह्म जज्ञानम् ।
ब्रह्म भ्राजदुदगादिदमापस्तथापश्च ॥

३६.६.५. एतैर्मन्त्रैरभिषिञ्चेद्धृतेन प्राङ्मुखः स्थितः ।
प्रावृतं कम्बलेनैवमभिषिञ्चेदुङ्मुखः ॥
६. अभिषिञ्चेत्सर्वमन्त्रैरायुष्यैरभयैस्तथा ।
मृण्मयश्चात्र भवति द्वेष्यस्य च पराकृतिः ॥
७. तस्योपरिष्टादभिषिच्य कुर्यान्मात्रातलेखनीम् ।
अङ्गादङ्गादथान्येन प्रपतेति चतसृभिः ॥
८. भ्रातृव्यहमिति वैश्वानरोयन्त्यवसानेन ।
द्यावादिना पर्यायेण समलंकृतमुल्लिखेत् ॥
९. द्विषन्तं मे परावद्धि द्विषन्तं निर्दहन्तु मे ।
भ्रातृव्यतानिति द्वाभ्यां पर्यायाश्च त्रयः पराः ॥
१०. अन्वालभ्य तु कर्तारमुपविष्ट उदङ्मुखः ।
स्वप्नतक्माद्नयनैः सौभाग्यैर्वर्मभिस्तथा ॥
११. रुद्ररौद्रपरैर्मन्त्रैराज्यहोमो विधीयते ।
स्राक्त्यं वा यदि वाश्वत्थमौदुम्बरमथापि वा ॥
१२. शङ्खं च मणिमाबध्य प्रतिसरैरभिमन्त्रयेत् ।
अन्वारभ्याभिषेकं तु रौद्राभ्यां जुहुयात्ततः ॥ ६ ॥
७.१. यत्ते वास इति परिधानं यथोक्तं परिधापयेत् ।
रोचना गुग्गुलु घृतमभ्यञ्जनमथाञ्जनम् ॥
२. तत एतैरलंकृत्य ईक्षयेतादर्शे मुखम् ।
दश गा दक्षिणां दद्याद्वृषभं घृतमेव च ॥
३. ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्याथ प्राङ्मुखः संविशेत्ततः ।
रक्षोहणमित्यनुवाकं जपेत्कर्ताथ ऋत्विजः ॥
४. शर्मवर्मैतदुक्तं स्नातस्य रक्षोभ्योऽभयंकरमिति ॥
५. न राक्षसा न गन्धर्वा य पिशाचा न चासुराः ।
क्रूराः पुरुषमर्मज्ञा न हिंसन्ति घृतार्चितम् ॥

३३.७.६. सिद्धाभिषेको नैशश्च घृतकम्बलमेव च ।
लक्षः पुष्याभिषेकश्च प्रधानावभृतस्तथा ॥
७. महाशान्तित्रयस्त्रिंशत्तत्र षट्प्रस्तरैः सह ।
नियतान्येवदृच्छाया कर्तव्या भूतिमिच्छता ॥ ७ ॥
इति घृतकम्बलाख्यो महाभिषेकः समाप्तः ॥
परिशिष्टम् ॥ ३३ ॥

३४. अनुलोमकल्पः

यह प्रतिलोमा सावित्री के स्वर, छन्द, प्रणेता, और देवता की व्याख्या करने वाला एक छोटा प्रशंसात्मक परिशिष्ट है। इसके व्यवहार के लिये यह कहा गया है कि 'स्वाहा' के स्थान पर 'फिट्' का प्रयोग करना चाहिये तथा और अधिक विवरणों के लिये ३१.८.४ और बाद का सन्दर्भ दिया गया है।

अनुलोमकल्पः

३४. १. ॐ नमोऽथर्ववेदाय ॥

१. अक्षराणि विलोमामानि न स्वरं प्रतिलोमयेत् ।
प्रत्यारम्भनिघातेषु स्थानान्यन्यानि निर्दिशेत् ॥

२. यकारस्तु तकारान्तो अन्त्यस्वरितसंज्ञितः ।
स तूदात्तः स एवादौ दकारः शिष्यते गुरुः ॥

३. दकारात्स्वर्यते नीचमुपोदत्ते प्रयोजयेत् ।
अन्यानि तु यथापूर्वमुदात्तप्रचितानि तु ॥

४. प्रथमोऽष्टाक्षरोऽर्धर्चो द्वितीयः षोडशाक्षरः ।
आदावन्ते च विज्ञेया व्याहृतिश्चाप्यथर्वणाम् ॥

५. रक्तवर्णा विलोमा च यमेन परिकीर्तिता ।
सर्वशत्रुविनाशाय सर्वकर्मार्थसिद्धये ॥

६. मृत्युश्च देवता चास्य निछन्नं छन्द उच्यते ।
स्वाहाकारे तु फट्कारः कोटिहोमे विधिःस्मृतः ॥

७. अनुलोमां विलोमां वा गायत्रीं यः पठेत्सदा ।
सर्वार्थास्तस्य सिध्यन्ति न चानर्थान्समश्नुते ॥
न चानर्थान्समश्नुत इति ॥ छ ॥

८. त् या द चो प्र नः यो यो धि ॥
हि म धी स्य व दे र्गो भ यं णी रे र्व तु वि त्स त त् ॥१॥

इत्यनुलोमकल्पः समाप्तः ॥ ३४ ॥

३५. आसुरीकल्पः

इस परिशिष्ट में काली सरसों से सम्पन्न की जाने वाली विभिन्न अभिचारीय क्रियाओं का वर्णन है।

१.१–३. व्यवहृत मन्त्र

१.४–५. परिचय तथा सामान्य नियम

१.६–७. प्रमुख कृत्य : किसी शत्रु का बध करने या उसे अपने आधीन करने के लिये यज्ञकर्ता पिसी हुई काली सरसों से शत्रु की प्रतिमा बनाता है और फिर उसे अनेक टुकड़ों में काट कर उन्हें अर्ककाष्ठ से प्रज्वलित अग्नि में समर्पित कर देता है।

१.८–९. शत्रु की जाति तथा लिङ्ग के अनुसार कृत्य में परिवर्तन।

१.१०–१२. किसी परिवार, अपस्मार, ज्वर, फोड़े और नेत्रशोथ आदि के विनाश के लिये विभिन्न वस्तुओं के साथ काली सरसों की हवि; प्रत्येक दशा में अभिचार के प्रतिकार के नियम भी दिये हुये हैं।

१.१३–१७. अनेक ऐसे चूर्णों का निर्माण जिनके स्पर्श मात्र से विक्षिप्ति उत्पन्न हो जाती है, अथवा स्पर्शकर्ता दास बन जाता है; अथवा निश्चित रूप से पराजित हो जाता है।

२.१–८. अन्य शुभ कर्म: स्त्रियों को वश में करना, पड़ोसियों को अपने प्रभाव में लाना, समृद्धि, धन, सन्तान प्राप्त करना तथा विपत्ति से मुक्ति।

२.९–११. निष्कर्ष : सरसों के पौधे के प्रभाव की प्रशस्ति॥

आसुरीकल्पः

३५.१.१. ॐ कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरिरक्ते रक्तवाससे।
अथर्वणस्य दुहिते अघोरे अघोरकर्मकारिके॥

२. अमुकं हनहन दहदह पचपच मथमथ।
तावद्दह तावत्पच यावन्मे वशमानयासि स्वाहा॥

३. शय्यावस्थितायास्तावज्जपेद्यावत्स्वपिति॥ प्रस्थिताया गतिं दह स्वाहा॥ उपविष्टाया भगं दह स्वाहा॥ सुप्ताया मनो दह स्वाहा॥ प्रबुद्धाया हृदयं दह स्वाहेति॥

४. अथात आसुरी कल्पमुपदेशादथर्वणः।
नास्यास्तिथिर्न नक्षत्रं नोपवासो विधीयते॥

३५.१.५. घृतादिद्रव्यसर्वेषु आसुरी शतजापिता ।
पत्त्राद्यवयवश्चास्या जिकैषा चानुयायिनी ॥
६. हन्तुकामो हि शत्रूंश्च वशीकुर्वंश्च भूपतीन् ।
आसुरीश्लक्ष्णपिष्टाज्यं जुहुयादाकृतिं बुधः ॥
७. अर्केन्धनाग्निं प्रज्वाल्य छित्त्वास्त्रेणाकृतिं तु ताम् ।
पादाग्रतोऽष्टसहस्रं जुहुयाद्यस्य वश्यसौ ॥
८. घृताक्तया स्त्री वशिनी पालाशाग्नौ द्विजोत्तमाः ।
गुडाक्तया क्षत्रियास्तु वैश्यास्तु दधिमिश्रया ॥
९. शूद्रास्तु लवणमिश्रैं राजिकां पिष्टयेद्बुधः ।
आ सप्ताहात्सर्व एते आसुरीहोमतो वशाः ॥
१०. कटुतैलेन त्रिसंध्यं कुलोच्छेदं करोति हि ।
शुनां तु लोमभिः सार्धमपस्मारी त्रिभिर्दिनैः ॥
११. निवृत्तिः क्षीरमध्वाज्यैर्लवणेन तु सज्वरी ।
अर्कैधःसमिदग्नाउ तु कार्यो विस्फोटसंभवः ॥
१२. तेषामुपशमं विद्यात्सुरेश्वर्या घृतेन च ।
अर्कक्षीराक्तयाऽऽकाग्नावक्षिणी स्फोटयेद्द्विषः ॥
१३. गतासु मांसं तस्यैव निर्माल्यं चितिभस्म च ।
एषां चूर्णेन संस्पृष्टो हास्यशीलोऽभिजायते ॥
१४. अजाक्षीराक्तया होमात्तस्य मोक्षो विधीयते ।
तगरं कुष्ठमांसी च तस्याः पत्त्राणि चैव हि ॥
१५. एतैः श्लक्ष्णैस्तु संस्पृष्टः पृष्ठतः परिधावति ।
तस्याः फलानि मूलानि सुरभीहस्तिमेदसा ॥
१६. सूक्ष्मात्तद्द्रव्यसंस्पर्शादनुधावत्यचेतसः ।
अच्छिद्रपत्त्राण्यसित उशीरः सर्षपास्तथा ॥
१७. एतच्चूर्णात्पूर्वफलं घृते चैवापराजयः ॥ १ ॥

३५.२.१. कुसुमानि मनःशिलाप्रियङ्गुतगराणि च ।
गजेन्द्रमदसंयुक्तं किं कुर्वाणस्त्वकृद्वरम् ।
२. याश्च स्त्रियोऽभिगच्छन्ति ता वशाः पादलेपतः ।
सपुष्पां तां समादाय अञ्जनं नागकेशरम् ॥
३. अनेनाक्ताभ्यामक्षिभ्यां यंयं पश्येत्स किंकरः ।
अञ्जनं तगरं कुष्ठं देवीजं काष्ठमेव च ॥
४. मांसी च सर्वभूतानां सौभाग्यस्य तु कारणम् ।
तत्समिधां लक्षहोमान्निधानं पश्यते महत् ॥
५. सर्पिर्दधिमध्वक्त पत्राणां वृद्धपुत्री सहस्रतः ।
राज्यं तु लभते वश्यं तत्पत्रत्रिसहस्रतः ॥
६. स्वर्णसहस्रस्याप्तिस्तु तत्पुष्पाणां तु लक्षतः ।
सहस्रजापाच्च तद्वदुदके क्षीरभक्षिणः ॥
७. वारिपूर्णेऽथ कलशे लोकेशीपल्लवान्क्षिपेत् ।
स्नानादलक्ष्म्या मुच्येत सौवर्णकलशेऽपि तु ॥
८. विनायकेभ्यः स्नानतो दौर्भाग्याच्चैव दुर्भगात् ।
पृष्ठतश्चानुधावन्ति संस्पृष्ट उदकेन तु ॥
९. उशीरं तगरं कुष्ठं मुस्ता तत्पत्रसर्षपाः ।
चूर्णेनाभिहतस्तूर्णमीश्वरोऽपि वशो भवेत् ॥
१०. तुलसीभूमहादेवीचूर्णस्पृष्टस्तथा वशी ।
राजाभयं सुरेश्वरीमार्जनाद्धारणात्तथा ॥
११. न स्यात्तस्याद्भुतं किंचिन्न क्षुद्रोपद्रवस्तथा ।
नानैश्वर्यं नाप्रजत्वं यस्य देव्यासुरी गृहे ॥
यस्य देव्यासुरी गृह इति ॥ २ ॥
इत्यासुरीकल्पः समाप्तः ॥ ३५ ॥
पञ्चत्रिंशत्तमं परिशिष्टम्॥

३६. उच्छुष्मकल्पः

उच्छुष्म-रुद्रों अथवा उच्छुष्मों से विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति के लिये कल्प ।

१, व्यवहृत किये जानेवाले मन्त्र ।

२.१-५. स्थान, समय, और कल्पकर्म ।

२.६–३.२. यदि विगत कृत्य असफल हो गया हो तो सफलता को विवश करने का कृत्य ।

४. स्रुवा का आकार समर्पित किये जाने वाले पदार्थ ।

५.१–८.५. विभिन्न अभिचार-क्रियायें जिन्हें शत्रु की जाति और लिङ्ग के अनुसार परिवर्तित किया गया है ।

९, निम्नलिखित कृत्यों के मन्त्र ।

१०—-१२ तीन अभिचार क्रियायें ।

१३. ज्वरासुरों के विनाशार्थ ।

१४. घृणित जातिके सदस्यों के विरुद्ध अभिचार ।

१५. अन्नभण्डार को चौगुना करना ।

१६, ग्राम प्रधान को विपन्न वनाना; अभिचार का प्रतिकार ।

१७. उपरोक्त उद्देश्य के लिये दूसरा उपाय ।

१८, पुत्र के लिये ज्ञान प्राप्ति; कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार इस कृत्य के परिणाम-स्वरूप विक्षिप्ति उत्पन्न होती है ।

१९. इन विद्वानों के अनुसार इस अभिचार का प्रतिकार ।

२०. यह पाठ भ्रष्ट है

२१. स्वर्णाभूषण प्राप्त करना

२२. वर्षा उत्पन्न करना

२३. मुकदमें में सफलता प्राप्त करना

२४. युद्ध में विजय और ज्ञान प्राप्त करना ।

२५. कुछ अलौकिक स्त्रियों को प्रगट होने तथा यज्ञकर्ता की इच्छापूर्ति के लिये विवश करना ।

२६. पड़ोस के राजा को यज्ञकर्ता से पौरोहित्य कर्म कराने के लिये विवश करना ।

२७. पशु-रक्षण

२८. विक्षिप्ति उत्पन्न करना और उसका निराकरण ।

२९. शत्रु के घर को भस्म करना ।

३०. उपरोक्त सभी कृत्यों के लिये व्यवहृत परिभाषायें और सामान्य नियम ।

उच्छुष्मकल्पः

३६.१.१. ॐ नम उच्छुष्मेभ्यः ।

२. ......शिखां देवीं प्रपद्ये शंकरायणीम् ।
सर्वार्थसाधनीं विश्वीं सर्वेशीं ब्रह्मचारिणीम् ।

३. ते इष्टकाकारकरालमतिचतुर्मुखम् ॥ चतुर्विधैस्तु रूपं ध्यानम् ॥

४. शिवे जटिले ब्रह्मचारिणि स्तम्भनि जम्भनि मोहनि हुं फट् नमः स्वाहा ॥

५. आत्मरक्षा ॥

६. प्राच्यां दिशीन्द्रो राजा देवानामाधिपत्यं कुरुते । तं देवं भगवन्तं सगणं सानुचरं सपरिवारं सपरिवारं सशिराः प्रणिपत्य विज्ञापयति । वज्रेण प्रहरणेनेमां दिशं विदिशं च सर्वकलिकलुषमशुभं प्रशमयों नमः स्वाहा ॥

७. दक्षिणस्यां दिशि यमो राजा प्रेतानामाधिपत्यमिति । दण्डेन प्रहरणेनेति ।

८. प्रतीच्यां दिशि वरुणो राजापामाधिपत्यमिति । पाशेन प्रहरणेनेति ॥

९. उदीच्यां दिशि कुबेरो राजा यक्षाणामाधिपत्यमिति । गदया प्रहरणेनेति ॥

१०. ध्रुवायां दिशि वासुकी राजा नागानामाधिपत्यमिति । दंष्ट्रया प्रहरणेनेति ॥

११. ऊर्ध्वायां दिशि सोमो राजा नक्षत्राणामाधिपत्यं कुरुते । तं देवं भगवन्तं सगणं सानुचरं सपरिवारं सशिराः प्रणिपत्य विज्ञापयति ॥ तेजसा प्रहरणेनेमां दिशं विदिशं च सर्वकलिकलुषमशुभं प्रशम्यों नमः स्वाहा ॥

३६.१.१२. अथोच्छुष्महृदयम् ॥
घुरुघुरु दरदर विदारयविदारय
मिलिमिलि नमः स्वाहा ॥
१३. उच्छुष्मशिखा ॥ शिवे जटिल इति प्रथमः ॥
१४. कुरुकुरु मुरुमुरु महा मुञ्च महा मुञ्च
विदु-विदु नमः स्वाहा ॥
इति कवचम् ॥
१५. ॐ नमो महापिङ्गलाय सिंहनादनादिने नमः स्वाहा ॥
इत्यस्त्रमन्त्रः ॥ १ ॥
२. १. एषामुच्छुष्मरुद्राणामतः कल्पो निगद्यते ।
अथर्ववेदोद्भवानां तिथिऋक्षाद्ययोगतः ॥
२. ग्रामे वाथाप्यरण्ये वा प्रचरेत यथाविधि ।
सद्यःसिद्धिकरा ह्येते उच्छुष्माः परकीर्तिताः ॥
३. आत्मरक्षां दिशां बन्धं शिखाबन्धं च सर्वदा ।
एतैरेव यथायोगमादौ कर्याद्विचक्षणः ॥
४. खदिरस्योदुम्बरस्य तथा बिल्वपलाशयोः ।
दधिसर्पिर्मधुयुजां शान्तानां वापि बिल्वतः ॥
५. समित्सहस्रात्रितयं हुत्वा शान्तिर्गवां भवेत् ।
तीक्ष्णासृग्विषयुक्तानां फट्कारश्च विनाशने ॥
६. प्रयोगादप्यसिद्धिश्चेत्तत्कर्मेदं समारभेत् ।
उच्छुष्मरूपी भक्षयंस्तीक्ष्णः सक्तूदकानि तु ॥ २ ॥
३. १. अभीष्टां वा स्त्रियं गत्वा ध्यात्वा वा रेत उत्सृजेत् ।
मूत्रं पुरीषं चोत्सृज्य गोकङ्कालाधिरोहणम् ॥
२. कृत्वा मन्त्रं निशि जपेद्यावद्रोम्भृङ्गतश्चरेत् ॥
ज्वालाभङ्गं ततस्तस्य कर्मसिद्धिं समादिशेत् ॥
३. दधिमधुघृताक्तानामिति शेषः ॥ ३ ॥

३६.४.१. सप्तक्षीराञ्जलिग्रासः स्रुवो ह्यस्मिन्प्रशस्यते ।
क्षीरं तेनाथ जुहुयाद्धनकामस्य नित्यशः ॥
२. घृतेन तेजस्कामस्य आयुःकामस्य दूर्वया ।
कुकुसं तुम्बरं वापि विद्यादुच्चाटकर्मणि ॥ ४ ॥
५. १. ब्राह्मणं तु वशीकर्तुं शालिपिष्टमयीं तनुम् ।
कृत्वा चतुष्पथं गत्वा गृहीत्वा शस्त्रमुत्तमम् ॥
२. अष्टोत्तरसहस्रेण कृत्वा तदभिमन्त्रणम् ।
अष्टाङ्गं तेन तां छित्त्वा मन्त्रतो वशमानयेत् ॥
३. अष्टोत्तरसहस्रं वा प्रकृते जुहुयाद्बुधः ।
ब्राह्मणीं तु वशीकर्तुं कुर्यान्माषमयीं तनुम् ॥ ५ ॥
६. १. सर्पिर्दधिमध्वक्तानां लाजानामाहुतीः शुभाः ।
कन्याकामोऽष्टसहस्रं हुत्वा कन्यामवाप्नुयात् ॥
२. अपि वा पिष्टमय्याः प्राग्जुहुयात्संध्ययाहुतीः ।
दर्भेषीकां वाभिमन्त्र्य तद्गृहे निश्चलां न्यसेत् ॥
३. तावदुद्वेजयेत्सा तु वज्रभूता हि तद्गृहम् ।
कन्यायाः साधनीयायास्तु यावल्लाभस्ततो भवेत् ॥ ६ ॥
७. १. प्रधानं अन्यं वा किंचिद्वशीकर्तुं नरोत्तमम् ।
समिधः खदिरादीनामौदुम्बर्यश्च होमयेत् ॥
२. श्मशानखट्वाङ्गमयीं होमयेन्मन्त्रसाधने ।
पलाण्डुलशुनप्रस्थं हुत्वा मस्तं न संशयः ॥
३. शिरीषाङ्गमयीं राज्ञो बलिस्त्रिमधुरेण तु ।
ब्राह्मणे पायसमयीं क्षत्रियस्य विषाणिकाम् ॥
४. वैश्यस्य साधने होम्याश्चूर्णैः सुरभिसंस्कृताः ।
चतुष्पथे तु शूद्रस्य पद्मिन्युत्करणेन तु ॥ ७ ॥
८. १. लिखित्वा नाम संगृह्य कराग्राङ्गुलिपीडिताम् ।
शिरःपीडा ज्वरः शूलं विमतिः स्वस्त्यसंगतिः ॥

३६.८.२. बल्याद्या वा प्रयोक्तव्या ब्राह्मणादिचतुष्टये ।
एवं सत्यभिचारश्च चतुर्णामपि दर्शितः ॥
३. लिङ्गं वा राजसर्षपैः समालिख्याथ धूपयेत् ।
गौरैर्घं तथा दद्यान्म्रियते साप्यसंशयम् ॥
४. अभक्षभक्षो ह्यस्वास्थ्यं सर्वरोगप्रकोपनम् ।
निःसंज्ञता पिण्डपातो जपावृत्त्या भवन्ति हि ॥
५. एकादशं न जप्तव्यं कुलोत्सादस्ततो भवेत् ॥ ८ ॥

९. १. ॐ नमो महापिङ्गलाय त्रिवृते नमः स्वाहा ॥ १ ॥
२. नमः सरान्तितेवतेवसु त्रिवृते त्रिवृते त्रिपर्वणे त्रिशीर्षाय नमः स्वाहा ॥ २ ॥
३. नमः कटविकटकण्टेमाटे पाटले विकले असौर्यासौ असौर्यासौ पृथिवीष्टका इष्टकाजिनात्यून्यो सौगलुंतिगलुंतेकटमसि कटप्रवृते प्रद्विष रुद्र रौद्रेणावेशयावेशय हन-हन दह-दह पच-पच मथ-मथ विध्वंसय-विध्वंसय विश्वेश्वर योगेश्वर महेश्वर नमस्तेऽस्तुमा मा हिंसीः हुं फट् नमः स्वाहा ॥३॥
४. कालाय करालाय नमः स्वाहा ॥ ४ ॥
५. कृतान्ताय नमः स्वाहा ॥ ५ ॥
६. अमोघाय नमः स्वाहा ॥ ६ ॥
७. अघोराय नमः स्वाहा ॥ ७ ॥
८. अनिवर्ताय नमः स्वाहा ॥ ८ ॥
९. भगाय नमः स्वाहा ॥ ९ ॥
१०. भगप्रमथनाय नमः स्वाहा ॥ १० ॥
११. वृषभाय नमः स्वाहा ॥ ११ ॥
१२. इन्द्रनेत्राय नमः स्वाहा ॥ १२ ॥
१३. सुवर्णचूडाय नमः स्वाहा ॥ १३ ॥
१४. हाहा-हीही नमः स्वाहा ॥ १४ ॥

३६.९.१५.नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णदंष्ट्राय भीषणाय सहस्रपादायानन्त-
शीर्षाय वामनाय नमः स्वाहा ॥ १५ ॥

१६. महावक्त्राय पिङ्गलनेत्राय नमः स्वाहा ॥ १६ ॥

१७. खनखनाय नमः स्वाहा ॥ १७ ॥

१८. घनघनाय नमः स्वाहा ॥ १८ ॥

१९. घुसुघुसाय नमः स्वाहा ॥ १९ ॥

२०. अलेपाय नमः स्वाहा ॥ २० ॥

२१. पशवे नमः स्वाहा ॥ २१ ॥

२२. महापशुपतये नमः स्वाहा ॥ २२ ॥

२३. उच्छुष्माय नमः स्वाहा ॥ २३ ॥

२४. उच्छुष्मरुद्राय नमः स्वाहा ॥ २४ ॥ ९ ॥

१०.१. एषां क्रमेण कृत्यानि वक्ष्यमाणानि योजयेत् ।
अष्टसहस्राभिजप्तमन्यद्‍द्रव्यं तु होमतः ॥

२. शत्रोर्नाम्ना लवणस्य सहस्रमष्टकाधिकम् ।
हुत्वा धनायुषोर्हानिर्ज्वरेण स च शुष्यति ॥

३. क्षिप्रं शान्तिर्भवेत्तस्य क्षीरहोमात्तु तावतः ॥ १० ॥

११.१. कर्णैः पुत्तलिकां कृत्वा गोशृङ्गेणार्धधूपने ।
अष्टसहस्राभिजप्तं मदनस्य तु कण्टकम् ॥
तेनाष्टादशवेधात्तु मूलक्षीरान्निवर्तनम् ॥ ११ ॥

१२.१. दध्ना च मधुसर्पिर्भ्यां त्रिवर्णैः सर्षपैर्हुतैः ॥
गौरैरष्टसहस्रेण जप्तैरावेशयेद्रिपून् ॥ १२ ॥

१३.१. दध्याद्यभ्यक्तलाजानां होमादष्टसहस्रतः ॥
नाशयेत्सततज्वरं द्वितीयादिं च दूरतः ॥ १३ ॥

१४.१. परिजप्य दर्भेषीकां कुम्भकारादिवेश्मसु ।
न्यस्त्वा पाकं सुरापाकं कैवर्तादि विनाशयेत् ॥ १४ ॥

३६.१५.१.अक्षतैस्तुण्डुलैः कृत्वा प्रतिदेहं सुशोभनम् ।
संस्थाप्य धान्यराशौ तं चन्दनागुरु दाहयेत् ।
बलिं त्रिमधुरं दत्त्वा स्यात्स राशिश्चतुर्गुणः ॥ १५ ॥

१६. १. खादिरं कीलकं तीक्ष्णं तैलाक्तं द्वादशाङ्गुलम् ।
परिजप्तं ग्राममध्ये निखनेत्सद्य उद्वसेत् ॥

२. महापातकदोषेण ग्रामी निर्धनतां व्रजेत् ।
क्षीरेण कीलकस्नानात्कुर्यात्तुष्टस्तु शान्तिकम् ॥

३. क्षीरस्याष्टसहस्रं च जुहुयात्तदनन्तरम् ॥ १६ ॥

१७. १. कलापमात्रां गुटिकां तन्नाम्ना गव्यमासतः ।
महापातकसंबन्धाज्जायतेऽस्य धनक्षयः ॥ १७ ॥

१८. १. त्रिवर्णसर्षपैर्होमात्सह त्रिमधुरेण तु ।
संपद्यते सुतस्तस्य मेधावी श्रुतधारकः ।
तद्धोमात्केचिदिच्छन्ति उन्मत्तत्वं न संशयः ॥ १८ ॥

१९. १. तिला दूर्वा त्रिमधुरं होमतो व्याधिनिग्रहम् ।
तण्डुलप्रक्षेपश्च ॥ १९ ॥

२०. १. व्यक्तोदुम्बरसमिधो दोग्ध्री धेन्वष्टकप्रदाः ।
एकाहं भैक्षभुग्भूत्वा मासाष्टकयुतस्य वा ॥ २० ॥

२१. १. प्रादेशान्तं बिल्ववृक्षं मूलशाखासमन्वितम् ।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सायं हुत्वा तु रुक्मभाक् ॥ २१ ॥

२२. १. समिधां वैतसीनां तु अश्वावर्केन्धनाद्धुते ।
अहोरात्रिकहोमात्स्यात्पर्जन्यो बहुवर्षदः ।
लक्षत्रयं भैक्षाहारो जप्त्वा कर्मैतदारभेत् ॥ २२ ॥

२३. १. दुग्धाक्तान्सर्षपान्हुत्वा तस्माद्भस्म मुखे क्षिपेत् ।
सर्वेषु व्यवहारेषु स भवत्यपराजितः ॥ २३ ॥

२४. १. शस्त्रं जप्तमुपादाय रणे ग्रस्तो न जीयते ।
खनखनायेति मन्त्रः पूर्वसेवार्थ उच्यते ॥

३६.२४.२.उत्तरस्या विशेषाद्वा चेदानीमत उत्तरम् ।
खादिरत्र्यक्तसमिधां पूर्वसेवा सहस्रतः ।
अतसीसमिधामेवं मेधावी विदुषां प्रभुः ॥ २४ ॥

२५. १. गोचर्ममात्रं स्थण्डिलं गोमयेनोपलेपयेत् ।
तत्राग्निं त्रिकपालेषु ज्वालयित्वा प्रणम्य च ॥
२. शिरसा वानरेणाथ मुखवाद्यं तु कारयेत् ।
यत्र तच्छ्रूयते तत्र आगच्छन्ति वरस्त्रियः ॥
३. दंष्ट्राघण्टानिनादास्तु ज्वालामुखभयानकाः ।
यत्त्वं कामयसे पुत्र तत्सर्वं दद्महे वयम् ॥
४. इति ब्रुवत्यः सर्वास्ता यत्र होमः कृतो भवेत् ।
तद्भस्मना तु संस्पृष्टाश् छागल्यः सुप्रभावतः ॥ २५ ॥

२६.१. लक्षजापोत्तरं गत्वा नदीमुदधिगामिनीम् ।
वालुकास्थण्डिले लिङ्गं तन्मयं तज्जसद्मनि ॥
२. पद्माष्टशतमाहृत्य पूजयित्वा विधानतः ।
उदके नाभिमात्रे च सुप्रभातं पुनर्जपेत् ।
३. ततो माण्डलिको राजा दीनाराणां गवां शतम् ।
प्रणम्य श्रद्धया तस्मै दद्यादुद्धर मामिति ॥ २६ ॥

२७. १. लक्षजपादबाध्यस्तु पशूनां दंष्ट्रिशृङ्गिणाम् ।
इतरेषां पशूनां तु लक्षत्रितपवर्धनम् ॥ २७ ॥

२८. १. संजप्तशिवनिर्माल्यदानादुन्मत्तता व्रजेत् ॥
शमाय चन्दनं दद्यात्त्रिष्वेतं मन्त्र संस्कृतम् ॥ २ ॥

२९. १. समाधिनानुमन्त्रितं गोशृङ्गमरिमन्दिरे ।
निखातं सद्य एवैनं मन्दिरं परिदीपयेत् ॥ २९ ॥

३०. १. तीक्ष्णतैलं कटु प्रोक्तं दर्वी ग्रामस्रुवस्तथा ।
त्रिमधुरं त्वत्र विज्ञेयं मधुसर्पिस्तिलात्मकम् ॥

३६.३०.२.संमुखं मानसं ध्यायञ्छुभं कर्म प्रयोजयेत् ।
विमुखं भञ्जनादौ तु नरः कर्मणि सिद्धिभाक् ॥
३. अष्टोत्तरस्त्रिसाहस्रो होमो ह्यस्य प्रकीर्तितः ।
कीलकास्त्रादि यच्चान्यत्तत्सहस्राभिमन्त्रितम् ॥
इति सहस्राभिमन्त्रितमिति ॥ ३० ॥
इत्युच्छुष्मकल्पः समाप्तः ॥ ३६ ॥
इति परिशिष्टानां पूर्वार्धं समाप्तमिति ॥
श २५७ ॥ खाण्ड ॥ सर्वाङ्के ॥ छ ॥

३७. समुच्चयप्रायश्चित्तानि

इस परिशिष्ट के पाठ की कौशिक सूत्र के १३वें अध्याय के साथ समानता है। सकलपाठ में कौशिक सूत्र से मन्त्रों को उद्धृत करनेमात्र के कारण इसे हम कौशिक सूत्र की परिशिष्ट नहीं कह सकते। इसमें निम्नलिखित बातों के लिये प्रायश्चित का उपदेश किया गया है :—

१. यदि उलूखल से मुसल गिर पड़े।
२. यदि यज्ञ की किसी भी सामग्री का कौआ स्पर्श कर ले।
३. यदि आज्यस्थाली-पात्र गिर पड़े या खिसक जाय।
४. यदि 'पवित्र' को लापरवाही से नष्ट कर दिया जाय।
५. यदि 'बर्हिस्' में आग लग जाय।
६. यदि लापरवाही के कारण समर्पित की जाने वाली सामग्री का कुछ अंश बच जाय।
७. यदि समर्पण सामग्री रोम, केश, अथवा कीड़ों द्वारा गन्दी हो जाय।
८. यदि दूषित दंतपंक्ति वाले शिष्य को दीक्षा दे दी जाय।
९. कवच नष्ट हो जाने पर अथवा विवाह के समय आग बुझ जाने की दशा में।
१०. वेदी तक पहुंचने के पूर्व ही आग के बुझ जानें पर।
११. यदि विवाह के समय पर ऐसा हो।
१२. किसी कृत्य को समय पर सम्पन्न न करने की दशा में।
१३. वेदी तक लाने के बाद आग के बुझ जाने की दशा में।
१४. उपयाम-पात्र के गिर पड़ने पर।
१५. स्रुवा गिर पड़ने पर।
१६. यदि दीक्षा के अवसर पर कटिबन्ध आदि फिसल जाय।
१७. यदि कटिबन्ध गिर या जीर्ण हो जाय।
१८–२०. यदि जल-पात्र नष्ट हो जाय, अपने स्थान से खिसक जाय या टूट जाय।

समुच्चयप्रायश्चित्तानि

३७.१.१. ॐ भृग्वङ्गिरोरूपधारिणे शिवाय नमः ॥ अथ यत्रैतदपहन्यमाने मुसलं पतति तद्घोरं भवति तदाप्येतदृचोक्तम् ॥

२. उलूखलान्मुसलं पतितं हिनस्ति
पत्नीं कुले ज्येष्ठम्।

कृषीः प्रजाः पशवः संविशन्ते
यथेन्द्रसृष्टं प्रपतेत वज्रमिति ॥

३७.१.३. तद्वज्रं शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य अरातीयेरित्युल्लिख्य यत्त्वा शिक्व इति प्रक्षाल्य बर्हिष्याधाय जुहोति ॥

४. वज्रः पतितस्तु वरं हिनस्ति
तं त्वा वयमपहन्म घोरम् ।
स नः शिवोऽस्तु द्विषतां वधाय
सपत्नान्मे द्विषतो हन्तु सर्वान् ॥

५. यद्वत्प्रजाः पापनयद्धस्ताद्यदि वोलूखलात् ।
सपत्नान्मे परिपाहि मां त्वेवं परिपाहि नः ॥

६. यद्यन्तरिक्षे यदि वासि सोच्चैर्
वज्रः सृष्टो यदि वा पार्थिवैरुत ।
मन्त्राः प्रयुक्ता वितता महान्तो
ऽघोरो वज्रो मुसलप्रपातः ॥

७. वज्रोऽसि सपत्नहेति तिस्रः ।

८. वज्रोऽसि सपत्नहा त्वयाद्य वृत्रं साक्षीय ।
त्वामद्य वनस्पते वृक्षाणामुदयुष्महि ।

९. स न इन्द्रपुरोहितो विश्वतः पाहि रक्षसः ।
अभि गावो अनुषताभि द्युम्नं बृहस्पते ॥

१०. प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च इति ॥

११. त्यमू षु त्रातारमिन्द्रः सुत्रामा स सुत्रामा आ मन्द्रैरिन्द्र मर्माणि ते वर्मणा छादयामीत्युलूखलमुसले संपातानानीय संस्थाप्य होमानुलूखलमन्त्रेणैव पूरयित्वा प्रतिप्रवर्तयेदुलूखल-मुसलं वसनं च गां च कर्त्रे दद्यात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ १ ॥

३७.२.१. अथ यत्काकोऽभिमृशति तन्मृत्युमाशङ्कयं भवति ॥ तदप्येतदृचोक्तम् ॥ अन्तकाय मृत्यव आ रभस्व प्राणाय नम इति स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ २ ॥

३. १. अथात आज्यस्थाली च्यवते प्रचलति वा का तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ संनतिमहाव्याहृतिसावित्रीकूष्माण्ड्यः स सर्वाभिर्जुहुयात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ३ ॥

४. १. अथ

पवित्रं चेत्प्रणश्येत कर्ममध्यात्प्रमादतः ।
अन्यच्छित्त्वा मन्त्रयेत कर्मशेषमुपक्रमेत् ।
आत्मेन्द्रियसमायुक्तं तेन मन्त्रेण कारयेत् ॥

२. वायोः पूतः पवित्रेण यन्मे छिद्रं पुनर्मैत्विन्द्रियं मा न आपो मेधां मा नो मेधां मा नः पिपरिदश्विनेति संनतिभिराज्यं जुहुयाद्व्याहृतिभिश्च गां च कर्त्रे दद्यात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ४ ॥

५. १. अथ यस्यासमाप्ते कर्मणि बर्हिरादीप्येत ततस्तन्निर्वाप्य जुहुयात् ॥

२. यदग्निर्बर्हिरदहद्वेद्या वासो अपां ततः ।
त्वमेव ने जातवेदो दुरितात्पाहि तस्मा
य ः इ स्तथा ।
अमित्राणां श्रियं भूतिं तामेषां परि निर्जहि ॥

४. यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु विशांपते ।
ये देवा यज्ञमायान्ति ते नो रक्षन्तु सर्वतः ॥

५. अवदग्धं दुःस्वप्न्यमवदग्धा अरातयः ।
सर्वाश्च यातुधान्यः ॥

६. मा त्वा दभन्यातुधाना मा ब्रघ्नः शंयुमिच्छत ।
दर्भो राजा समुद्रियः परि नः पातु विश्वतः ॥

३७.५.७. अतोऽन्यद्बर्हिरुपकल्प्योदकेन संप्रोक्ष्य पुनः स्तृणाति ॥

८. इदं बर्हिरमृतेनेह सिक्तं
हिरण्मयं हरितं ते स्तृणामि ।
तद्वै पुराणमभिनवं स्तृणीष्व
वासः प्रशस्तं प्रति मे गृहाणेत्य-
न्येन च बर्हिषाभिप्रछादयेत् ॥ ५ ॥

६. १. आहुत्यां तु गृहीतायां हुतोच्छिष्टं प्रमादतः ।
तामाहुतिं प्रतिष्ठाप्य शं नो देवीरित्याचम्य ।
ब्रह्मापरमित्यर्धर्चेनेमां हुत्वा ब्रह्मज्येष्ठेति हुत्वा सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ६ ॥

७. १. केशकीटावपन्ना चेच्छम्भुवाय स्वाहेति भस्मनि हुत्वा हविरुत्पूयान्यां जुहुयात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ७ ॥

८. १. अथ चेच्चलितदन्तं पतितदन्तं वोपनयेत्तत्र प्रायश्चित्तिमाह गृहे वा बहिः वा पिता वाचार्यो वा द्वादशरात्रं दीक्षेयातां कर्ता त्रिरात्रं गौरसर्षपसर्पिः पयोभिः स्नातः प्रयातः शुचिः शुक्लवासाः पौर्णमासं तन्त्रमाज्यभागान्ते सावित्रीमनुयोजयेत्तेन शान्त्युदकेनैनमाचामयति सम्प्रोक्षति च ॥

२. सावित्री शान्तिर्ब्रह्म जज्ञानं ये त्रिषप्ता अग्निं ब्रूम आयुष्यवर्चस्यस्वस्त्ययनाभयापराजितशर्मवर्मभिर्जुहुयात्तं संपात्य यः श्रमात्तपसो यो वेतसं यो भूतमूर्ध्वा अस्येदावत्सराय यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियमित्याप्लावयति सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥८॥

९. १. नश्येच्चेन्मदुघमणिः शाम्येद्वाग्निर्विवाहजः ।
अत्यद्भुतं द्वयमिदं दम्पत्योस्तु विनाशनम् ॥

२. पूतुदारुमणिस्तत्र बन्ध्यो मन्त्राश्च मादुघाः ।
पूतुदारु न विन्द्याच्चेद्यवं तत्र नियोजयेत् ॥

३७.९.३. आयुष्मन्तौ सुप्रजसौ सुवीरौ
धाता पूषा द्रविणे नौ दधातु ।
विमुञ्चतां शमलं किल्बिषं नौ
दीर्घमायुश्च सविता कृणोत्विति ॥
शान्त्युदकेनाङ्गुलिं संप्रोक्ष्य बध्नीयात् ॥

४. समिधोऽभ्याद्ध्याद्युपतिष्ठेत संनतिभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयाद्गां च कर्त्रे दद्यात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ९ ॥

१०. १. ॐ अथ यस्य तन्त्रेऽप्रणीतोऽहुतोऽग्निरुपशाम्यति ॥ पुनस्त्वादित्या इत्यग्निं प्रणीय संनतिभिर्व्याहृतिभिः समास्त्वाग्नेऽभ्यर्चतेति च सूक्ताभ्यां जुहुयात्परिसंख्याहोमांश्च ॥ १० ॥

११. १. अथ यत्रैतद्विवाहाग्निरुपशाम्यति अग्निप्रणायनमन्त्रैः प्राजापत्यं प्रणीय प्राक्तन्त्रं प्रणीय यद्देवा यद्विद्वांसोऽपमित्यमप्रतीत्तं यद्धस्ताभ्यां यददीव्यन्नित्येतैः सूक्तैराज्यं जुहुयात्समिधोऽभ्याद्ध्यादुपतिष्ठेत वासः कर्त्रे दद्यात् ॥ ११ ॥

१२. १. अथ यत्रैतत्
कालातीतासु क्रियास्वतीत उत्तरायणे
आज्यभागान्ते यन्मे स्कन्नं यदस्मृतीत्यनुमन्त्रयेत्तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशादिति पर्यायानेकविंशतिं जुहुयात्संस्कारातीते च कर्मणि ॥ १२ ॥

१३. १. अथ यत्रैतत्प्रणीतोऽग्निरुपशाम्यति ॥ यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनस्त्वादित्या इत्यग्निं प्रणीय प्रज्वाल्य ममाग्ने वर्च इति समिधमाधाय, शेषं कर्म समापयेत् ॥ १३ ॥

१४. १. अथ यस्योपयामोऽवपतेद्धस्तात्सं यन्मे उपयाम इत्याददीत ।
२. यन्मे उपयामोऽपतद्धस्ताद्य आयुषा परिष्कृतः ।
तमहं पुनराददे ॥

३७.१४.३. पुनरिन्द्रः पुनर्भगः पुनर्मे ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्म जीवितु—ँ दादित्याददीत ॥

४. यन्मे छिद्रं यदस्मृतीति जुहुयात् ॥ १४ ॥

१५. १. यन्मे स्रुवोऽपतद्धस्तादित्युपयामेन व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

१६. १. मेखलादीनि चेत्प्लवेरन्पुनरुपनयेत ॥ विमोचनीयान्होमान्हुत्वान्यं ब्राह्मणमनूचानमुपवेश्योदपात्रं चापराजितेन निष्क्रम्य वासो यज्ञोपवीतादि दत्त्वाभ्युक्ष्याचम्यापां सूक्तैः पवित्रैश्च संप्रोक्ष्य प्रियं मा कृणु देवेष्विति यज्ञोपवीतं दत्त्वा विमृग्वरीं मा नः पश्चादिति द्वाभ्यां प्राङ्मुख उपविश्य महाव्याहृतिभिः सावित्री शान्तिसूक्तं ब्रह्म जज्ञानं यदस्मृत्यनुमतिः सर्वमिति जुहुयादभ्यातानैश्च ॥ १६ ॥

१७. १. अथ यत्रैतन्मेखला प्रपतति जीर्णा स्यात्तां सावित्र्योद्धृत्यान्तं कृत्वा शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य महाव्याहृतिभिः सावित्री शान्तिसूक्तं ब्रह्म जज्ञानं ये त्रिषप्ता इदावत्सराय घृतेन त्वाग्नि ब्रूम इति ॥ १७ ॥

१८. १. चतुर्थ्यामहुतायां यदि घटोदकं नश्येत तथैव पुनरानीय शं नो देवीरिहेत देवीरित्यनुमन्त्र्याम्बयो यन्त्यापो हि ष्ठा शं नो देवीरिति संपात्य व्याहृत्या संनत्या च जुहुयादापो भृग्वङ्गिरोरूपमपां पुष्पमित्युदकुम्भमभिमन्त्रयेत् ॥ वासो दक्षिणा ॥ १८ ॥

१९. १. अथ यस्यासमाप्ते कर्मण्युदपात्रं प्रवर्तेत तदनुमन्त्रयतो ।

२. यदुदपात्रं प्रवर्तते ब्रह्मणास्थापितं महत् ।
स्थानाच्च्युतं प्रवर्तितं तन्मे वहतु किल्बिषम् ॥
इत्यास्थापयति ॥

३. पूरणेन पूरयित्वा पुनः पूर्णमित्येतया ।

३७.१९.४.पुनः पूर्णमिदं पात्रं ब्रह्मणास्थापयामसि ।
विश्वैस्तद्देवैरभिष्टुतम् ॥
५. ऊर्जं पुष्टं दधातु नो रायस्पोषं श्रियमायुः ।
मयि कर्म समृध्यतामिति ॥ १९ ॥

२०. १. अथ चत्रभज्येत भूमिर्भूमिमगादित्यनुमन्त्र्यान्यतरमाहृत्य यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियमित्यनुमन्त्र्य वैश्वानरो न ऊतय उदेनं वैश्वानरो रश्मिभिरिति जुहुयात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः सा तत्र प्रायश्चित्तिरिति ॥ २० ॥

इति समुच्चयप्रायश्चित्तानि समाप्तानि ॥ ३७ ॥

सप्तत्रिंशत्तमं परिशिष्टम् ॥

३८. ब्रह्मकूर्चविधिः

एक शुद्धि-कर्म की विधि जिसमें प्रमुखतः गाय के पाँच पदार्थों के मिश्रण तथा कुशोदक को पीने की क्रिया निहित है।

१. १–३. कृत्य की तैयारी तथा तत्सम्बन्धी नियम।

१. ४–२.३ख. आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त करना : प्रयुक्त पात्र; गायों का रंग; मिश्रण की विभिन्न वस्तुओं की मात्रा; मन्त्र जिनका उच्चारण करना चाहिये।

२. ३ग–३. १. मिश्रण को समर्पित तथा पान करना।

३. २–८. इस कृत्य का फल।

ब्रह्मकूर्चविधिः

३८.१.१. ॐ ब्रह्मकूर्चविधिं पुण्यं संक्षेपाद्वच्म्यसंशयम्।
पावनानां परं यो हि पावनं तपसां तपः॥

२. स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे गोमयेनावसेचिते।
वस्त्रेण संहिते चापि सितपुष्पैः प्रपूजिते॥

३. अहोरात्रोषितः क्षान्तः पवित्रात्मा प्रपावनः।
शुक्लवासाः सुगन्धिः प्रागुपविष्टः कुशासने॥

४. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
आहरेत्ताम्रपात्रे तु शकृन्मूत्रं त्वभूगतम्॥

५. गोमूत्रं नीलवर्णायाः कृष्णाया गोमयं तथा।
पयस्तु ताम्रवर्णायाः श्वेताया आहरेद्दधि॥

६. कपिलाया घृतं ग्राह्यमलाभे स्यात्तु पञ्चमम्॥ १ ॥

२. १. गोमूत्रैकपलं दद्यादङ्गुष्ठाग्रं तु गोमयम्।
क्षीरस्य सप्त दध्नस्तु त्रीण्येकैकं धृताम्भसोः॥

२. गायत्र्याहृत्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥

३. तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
सप्तपत्रास्तु ये दर्भा अछिन्नाग्राः समायुताः॥

३८.२.४. तैः समुद्धृत्य होतव्यं देवताभ्यो यथाक्रमम् ।
अग्नये स्वाहा सोमाय प्रजापतय इत्यपि ॥
५. बृहस्पते अति यदिदं विष्णुरितीति च ।
मानस्तोकेन गायत्र्या एतैश्च जुहुयात्ततः ॥
६. प्रणवेन समालोड्य उद्धृत्य प्रणवेन तु ।
होतव्यं प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ॥ २ ॥
३. १. मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा पिबेत् ।
अपि वा ताम्रपात्रेण हुतशेषं विशुद्धये ॥
२. यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ।
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्तोऽग्निरिवेन्धनम् ॥
३. त्रयोदश्यादिचतुर्षु त्रिःस्नानाक्षारभोजनम् ।
पञ्चदश्यां पञ्चगव्यं सोपवासं महाफलम् ॥
४. अभोज्याभक्ष्यशूद्रान्नभक्षणे वेदविक्रये ।
प्रतिग्रहे कालमन्त्रहीने होमे द्युमैथुने ॥
५. बालत्वे यत्कृतं चैव युवा वृद्धवयास्तथा ।
मातापितृकृतं चैव तत्क्षणादेव निर्दहेत् ॥
६. मासे मासे प्रयुञ्जानो देवलोकमवाप्नुयात् ।
अर्धमासेऽर्धमासे च ऋषीणां लोकमुत्तमम् ॥
७. षड्रात्रे चैव षड्रात्रे ब्रह्मलोकमनामयम् ।
अहरहः प्रयुञ्जानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
८. अनेन विधिनैवेष्ट्वा देवतर्पणपूर्वकम् ।
ब्रह्मणा निर्मितं ह्येतत्पवित्रं परमं हितम् ॥
पवित्रं परमं हितमिति ॥ ३ ॥

इति ब्रह्मकूर्चविधिः समाप्तः ॥ ३८ ॥

अष्टात्रिंशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

३९. तडागादिविधिः

१. १–३. परिचय तथा आरम्भिक कृत्य।

१. ९–४. प्रमुख कृत्य के अन्तर्गत पूर्णमासी के दिन यज्ञ तथा भूमि के लिये चरु समर्पित करना आता है। विभिन्न प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण अवश्य करना चाहिये। एक गाय को तडाग से जल पिलाने के बाद उसे उसी तडाग में से उस पार हाँक कर ले जाया जाता है। एक गाय की दक्षिणा निर्धारित की गई है।

१. ९–१२. विभिन्न जलचरों की धातु की मूर्तियाँ, पवित्र जल, तथा पञ्चगव्य को तडाग में फेंका जाता है। यज्ञकर्त्ता तथा दाता दोनों उसी तडाग में स्नान करते हैं और ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। कृत्य-फल।

तडागादिविधिः

३९.१.१. ॐ पिप्पलादे महाप्राज्ञमिदमूचुर्महर्षयः।
भूमिखातस्य शुद्ध्यर्थं विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः॥
२. कूपवापीतडागेषु पुष्करिण्यां च वेश्मसु।
अहोरात्रोषितो भूत्वा ततः कर्म समारभेत्॥
३. शान्त्युदकेन तद्ब्रह्मा पूर्वोक्तं यदगस्तिना।
परि प्रागादिति द्वाभ्यामभिमन्त्रयते ततः॥
४. चरुतन्त्रेण विधिना चरुं भौमं तु निर्वपेत्।
प्राक्तन्त्रमाज्यभागान्तं सत्यं बृहदितिस्मृतम्॥
५. हविराज्यं समिधश्च उपस्थानं यथाक्रमम्।
कूपादीनां समीपे तु जपेन्मन्त्रान्समाहितः॥
६. अम्बयो यन्त्यापो हि ष्ठा शं नो देवीरितित्रयम्।
हिरण्यवर्णाः पुनन्तु मा सस्रुषीर्हिमवतोऽप्सु ते॥
७. जप्त्वा तु धेनुमानीतां पिबन्तीमनुमन्त्रयेत्।
आ गाव इति सूक्तेन तारयेत्तु तथैव गां॥
८. कूपवापीतडागानां समीपे चाभिमन्त्रयेत्।
उपह्वये सूयवसात्कर्त्रे दद्यात्तु गां शुभाम्॥

३९.१.९. कामसूक्तेन गृह्णीयात्कर्म संस्थापयेत्ततः ।
हिरण्यरजतादीनां मत्स्यादीन्कारयेद्बुधः ॥
१०. सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यमुद्गरौ ।
ताम्रौ कुलीरकर्कटावायसः शिशुमारकः ॥
११. शान्त्युदकं पञ्चगव्यं तस्मिन्नेव जले क्षिपेत् ।
कर्तृदातारौ स्नायेतां द्रुपदादिव शुम्भनी ॥
१२. ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पुण्याहं वाचयेत्ततः ।
सम्यग्विधानमेतद्धि कूपादेः संप्रकीर्तितम् ॥
पुण्यं कर्म द्विजातीनां स्वर्गस्याक्षय्यमिच्छताम् ॥
स्वर्गस्याक्षय्यमिच्छतामिति ॥ १ ॥

इति तडागादिविधिः समाप्तः ॥ ३९ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

४०. पाशुपतव्रतम्

पाशुपत व्रत के नियम। इसकी उत्पत्ति की कथा के लिये तुकी० परिशिष्ट ३१. १०. १–२।

१. इस व्रत को ग्रहण करने की योग्यतायें; इसकी अवधि; ऐसे स्थान जहाँ इसे सम्पन्न किया जा सकता है। इसका एक प्रारम्भिक कृत्य।

२. १–८. भूमि को तैयार करना तथा वहाँ रुद्र की मूर्त्ति लाना।

२. ९–३. २. व्रतार्थी का परिचय; उसके उद्देश्य की घोषणा; उसे कटिबन्ध और दण्ड से अभिषिक्त करना—दण्ड के स्थान पर खड्ग, गदा या परशु भी दिया जा सकता है।

३. ३–९. व्रातपत और रौद्र हवियाँ जो प्रधान कृत्य की अंश हैं। जिस अग्नि में ये हवियाँ डाली गई हों उसकी भस्म से स्नान।

४.–५. इस स्नान के समय उच्चरित किये जानेवाले मन्त्र।

६. १–८. व्रत की अवधि के नियम; नियमभंग की दशा में प्रायश्चित्त।

६. १४–१६. व्रतफल।

पाशुपतव्रतम्

४०.१.१. ॐ अथ पाशुपतव्रतादेशो।

२. नाश्रोत्रियाय नाचरितवेदव्रताय नाकृतवपनाय ददीत ॥

३. मासद्वित्रिचतुष्पञ्चसंवत्सरद्वादशसंवत्सरपरिमितं नैष्ठिकं वा,

४. अथास्यायतनानि ॥

५. महादेवायतनेऽपां समीपे ॥

६. गिरिगुहायां गोष्ठेऽग्न्यागारे वा,

७. नदीनां बहूनां प्रतिश्रये,

८. अनुसवनम् ॥

९. भस्मना स्नानं रौद्रहोमस्नपनं च सर्पिःक्षीरगन्धोदकैर्

१०. गन्धपुष्पधूपदीपोदनपायसयावकलाजादि प्रदक्षिणान्तं च ॥

११. निवेद्य निर्माल्यगन्धहारीहासगीतवादनाद्युपहारान्,

४०.१.१२.दक्षिणेन तृतीयमुपतिष्ठते ।

१३. कटककेयूरधारिणे नमो वृषाय नमो वृषभध्वजाय नमो

१४. वानरं ते मुखं रौद्रमनिन्द्यं

शुभं पशुमेवाजननेवाजनकं घोरं

जीवं जात्यमेव रुक्मं ददामीत्य्

एकवासा विवासा वा विरागाणि वस्त्राणि ददीत ॥ १ ॥

२. १. गोचर्ममात्रं स्थण्डिलमुपलिप्य गोमयेनोल्लिख्याभ्युक्ष्याग्ने प्रेहीत्यग्निं प्रणीयोपसमाधाय परिस्तीर्य ब्रह्माणं कल्पयित्वा नान्यदेवतादिशि रुद्रस्य दक्षिणोदपात्रं स्थापयित्वा महाव्याहृतिभिरग्न्यातने निधाय रुद्रमावाहयति ॥

२. रुद्रं क्रुद्धाशनिमुखं देवानामीश्वरं परम् ।
श्वेतपिङ्गलं देवानां महादेवं प्रपद्ये शरणागतः ॥

३. यस्य युक्ता रथे सिंहा व्याघ्राश्च विषमाननाः ।
तमहं पुण्डरीकाक्षं देवमावाहये शिवम् ।
इत्यावाह्याभ्यर्च्य ॥

४. न तं यक्ष्मै तु देव इति गुग्गुलं धूपं च दद्यात् ॥

५. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

६. तस्मै देवाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रोऽनुमन्यताम् ।
इति रुद्रसावित्रीं जप्त्वा ॥

७. यो अग्नौ रुद्र इत्यनुमन्त्रयेन्नमो अस्तु यावदावाहने देवदेवस्यावाहयाम्यहमिति ॥

८. प्रमर्दने सर्वासुरविनाशाय ॐ फट्कारं करोति ॥

९. निवेदनेऽहममुकं निवेदयामीति जटी मुण्डी पञ्चशिखी वा ॥२॥

४०.३.१. ब्राह्मणो वा अहममुकसगोत्रो भगवतो महेश्वरस्य व्रतं चरिष्यामीति वाचयित्वा ॥

२. ततोऽस्य मौञ्जीं प्रयच्छति ॥ सावित्र्या तु दण्डं पालाशं बैल्वमाश्वत्थं वा असिं लकुटं खट्वाङ्गं परशुं वा ॥

३. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्योऽघोरघोरतरेभ्यश्च । सर्वतः शर्वशर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र रूपेभ्य

इत्यादौ शर्वं नमस्कृत्योपविश्याज्यं निरतिशायित्वेध्माना-दीपयत्यन्तर इति,

४. इध्मा जातवेदसः समिद्धस्य तेभ्यो वर्धयस्व प्रजया पशुभिः श्रिया गृहैर्धनेनेति ॥

५. यवाघारावाज्यभागौ जुहुयाद्

६. वायवे स्वाहा ॥ शर्वाय रुद्राय स्वाहा ॥ पशुपतये भीमाय स्वाहा ॥

शान्तायाधिपतये देवाय स्वाहेत्य-

७. एवमेव पत्नीनां तूष्णीमधिपस्य जुहुयाद्

८. एवं सर्वेषु व्रतनिवेदनेषु व्रातपतीर्जुहोति ॥

९. व्रतेन त्वमित्युभयीरुहमितिपश्चभीरौद्रान्होमान्हुत्वा होमाव-सानेन भस्मना स्नानं करोति ॥ ३ ॥

४. १. भस्मस्नानं तावद्ग्रहीष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
भस्मस्नानेन रुद्रो हि स्नातोऽभूत्पूत आत्मना ॥

२. भस्मना स्नायते रुद्रो विष्णुः स्नायते भस्मना ।
तेन स्नानेन स्नाम्यहं येन स्नातो महेश्वरः ॥

३. येन स्नाता उमा देवी रुद्रो भर्ता महेश्वरः ।
येन स्नाता गणाः सर्वे येन स्नाता द्विजातयः ॥

४. येन स्नातः शिवः शर्वः शङ्करश्च वृषध्वजः ।
स्नातानि सर्वभूतानि गङ्गायमुनयागमे ॥

४०.४.५. स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ।
वारुणाग्नेयसौम्यानां भस्मना स्नानमुत्तमम् ॥
तेन स्नानेन स्नाम्यहं येन स्नातो महेश्वरः ॥ ४ ॥

५. १. भूतिस्तु पिङ्गलो बभ्रुर्भूतिर्विष्णुः सनातनः ।
भूतिर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च भूतिर्देवाः सह ऋषिभिः ॥

२. भूतिर्मेऽलक्ष्मीं निर्णुदेद्भूतिर्मे श्रियमावहेत् ।
भूतिर्म आयुषा वित्तं वर्चो ब्रह्म प्रयच्छतु ॥

३. भस्मना चरन्तो नित्यं ध्यायिनः परिचिन्तकाः ।
यान्ति पाशुपतं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

४. वाचा तु यत्कृतं कर्म मनसा च विचिन्तितम् ।
अलक्ष्मीश्चापद्दुःस्वप्नं भस्मना तत्प्रणश्यतु ॥

५. मोक्षणं मोक्षकाले च भस्मशेषं विसर्जयेत् ।
मुक्तोऽहं सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं व्रजाम्यहम् ॥ ५ ॥

६. १. एतत्स्नानं वारुणं पर्वसु शरीरलेपेन यथाकामं पर्वसूपवसेत् ॥

२. स्त्रीशूद्रं नाभिभाषेत ॥

३. तदा सावित्रीं जपेत् ॥

४. यदि भाषेत तदा रुद्रसावित्रीं जपेत् ॥

५. कमण्डलुकपाले भिन्ने भूमिर्भूमिमगादित्यप्सु प्रवेशयेत् ॥

६. रेतः स्कन्दे,
यन्मे रेतस्तेजसा संनिषद्य
देहात्प्रस्कन्देत्पुनर्न भवाय ।
तदग्निर्वायुः·········
अपि चेयं पृथिवी कश्चखन्तेति ॥

७. सम्यक्क्वचित्करोति,

८. व्रतमुपाध्यायाछन्दो वर्तयेत् ॥

९. तत उदीक्षणम् ॥

४०.६.१०.व्रातपतिर्जुहोति ॥

११. समासोऽहं व्रतस्त्रिष्टकृत इति हुत्वादित्याभिमुखस्तिष्ठेत ॥

१२. यन्मे दुरुक्तं दुर्हुतं दुर्ध्यातं दुर्विचिन्तितम् ।
तन्मे भगवानीशानः सर्वं त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

१३. नवो नवो भवसि जायमान इत्यप्सु प्रवाहयेद्

१४. ये श्रद्धयेदं पशुपतेर्व्रतं चरन्ति ।
तेषां मधु विशाक्षे हे ददते न पुनर्गमनं मधुरिवाद्येहैव च ।
ते रुद्रा विरतौ पशुपतिसायुज्यं गच्छन्ति

१५. तदेष श्लोकः ॥

१६. विलीनपाशपञ्जराः समाप्ततत्त्वगोचराः ।
प्रयान्ति शङ्करं परं पतिं विभुं सदाशिवम् ॥
पतिं विभुं सदाशिवमिति ॥ ६ ॥

इति पाशुपतव्रतं समाप्तम् ॥ ४० ॥

द्वितीया विंशतिः समाप्ता ॥

एवं द्वितीयविंशत्याम् ॥ १६४ ॥ उभय्याम् ॥ २८८ ॥

४१. संध्योपासनविधिः

१.१–३.६. सावित्री मन्त्र के साथ सन्ध्योपासन विधि से युक्त यह एक गद्यात्मक वर्णन है जिसमें संध्योपासना के महत्त्व तथा फल का भी उल्लेख है।

३.७–४.८. इस उपासना के फल का श्लोकों में वर्णन।

५.१–६.५. सावित्री की एक रहस्यवादी व्याख्या।

संध्योपासनविधिः

४१.१.१. ॐ अथातः संध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामः ॥

२. प्राङ् वोदङ् वा ग्रामान्निष्क्रम्य शुचिः शुचौ देशे गुप्ततीर्थायतनेषु वा ।

३. सुप्रक्षालितपाणिपादवदनः प्राग्वीरासनेनोपविश्य जीवा स्थेत्याचम्यापो हि ष्ठेत्यभ्युक्ष्य प्राणायामान्कृत्वाचम्योत्तिष्ठन्दक्षिणहस्तस्था आपो अयोजाला इत्यप उत्सृजेद्बहुधा ॥

४. हरिः सुपर्ण इति प्रातर्

५. उदु त्यं चित्रं देवानामिति मध्यंदिने

६. अथ सौरमन्त्रान्यथाकामं जपेद्

७. उद्वयं तमसस्परीति च

८. उद्वेदभि श्रुतामघमित्यस्तमित आसीनः

९. सावित्र्यन्ते वाञ्जलयो जपश्च ॥ १ ॥

२. १. अथोर्ध्वजानुरासीन इति वीरासनी

२. प्रत्युत्थायाभयं पश्चादभयं पुरस्तादित्युपतिष्ठते,

३. तिष्ठन्प्रातः प्राङ्मुख

४. आयातु वरदेत्यावाह्य

५. गायत्रं छन्दः सविता देवता विश्वामित्र ऋषीर्,

६. यथाक्षरं दैवतं रूपं च मनसि समाधाय महाव्याहृतिभिः संधाय गायत्रीं जपेत् ॥

४१.२.७. अष्टकृत्व एकादशकृत्वो द्वादशकृत्वः पञ्चदशकृत्वः शतकृत्वः सहस्रकृत्व इति ॥

८. अष्टकृत्वः प्रयुक्ता गायत्री गायत्रेण छन्दसा संमिता भूलोकमभिजयति ॥

९. एकादशकृत्वः प्रयुक्ता त्रैष्टुभेन छन्दसा संमितान्तरिक्षलोकमभिजयति ॥

१०. द्वादशकृत्वः प्रयुक्ता जागतेन छन्दसा संमिता दिवं लोकमभिजयति ॥

११. पञ्चदशकृत्वः प्रयुक्ता पञ्चदशेन वज्रेण संमिता ब्रह्मलोकमभिजयति ॥

१२. शतकृत्वः प्रयुक्ता शतपर्वणा वज्रेण संमिता सर्वाणि लोकानभिजयति ॥

१३. सहस्रकृत्व प्रयुक्ताग्निष्टोमाप्तोर्यामादीनां क्रतूनां फलमवाप्नोति ॥ २ ॥

३. १. अतो यथाकामं जपित्वा पश्येम शरदः शतमिन्द्र जीवेत्याशिषः र्श्यते ॥

२. स्तुता मया विसृज्योदीराणा उत सूर्यस्याद्युतमसपत्नं पुरस्ताद्यस्मात्कोशादिति यथार्थमुपतिष्ठते ॥

३. य इमां न विन्दन्ति नाधीयते संध्याकालेनोपासते ते ह्यश्रोत्रिया भवन्त्यनुपनीताः क्रियाहीनाश् छेदनभेदनभोजनमैथुनान्यभिचरन्तः ॥

४. संध्याकाले ह्यजपन्तः श्वसूकरसृगालकुक्कुटसर्पयोनिषु वर्षसहस्राणि जायन्ते ॥

५. समास्तस्यैवोपजायन्ते ॥

६. तस्माद्यथोक्तां सायं प्रातः संध्यामुपासीत ॥

४१.३.७. अरण्यचरितो गुप्तः शुक्लब्राह्मणकर्मसु ।
प्रायेण लभते लोकान्यथोक्तांस्तां समाचरन् ॥

८. सायं संध्यामुपासीत कृतवीरासनो द्विजः ।
कृतोत्थानस्तथा प्रातः प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥

९. एतद्वीरासनं स्थानं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
द्विजानां बालवृद्धानां पुरश्चरणमुत्तमम् ॥

१०. सायं प्रातस्तु यः संध्यामस्कन्नामुपतिष्ठते ।
स तया पावितो देव्या ब्राह्मणः पूतकिल्बिषः ॥

११. न सीदेत्प्रतिगृह्णानः पृथिवीमपि ससागराम् ।
ये चास्य विषमाः केचिद्दिवि सूर्यादयो ग्रहाः ॥

१२. ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवाः सुखकराः सदा ।
स्थानं वीरासनं चैषां पृथिवी च प्रदक्षिणा ।
अग्निहोत्रं हुतं चैषां ये वै संध्यामुपासते ॥ ३ ॥

४. १. अर्धास्तमित आदित्ये अर्धोदिते दिवाकरे ।
गायत्र्यास्तत्र संनिध्यं संध्याकालः स उच्यते ॥

२. भूम्यादित्यान्तरं यस्तुच्छादयेच्चतुरङ्गुलम् ।
तां तु संन्ध्यां परां विद्याच्छायासंभेदने परे ॥

३. यावन्तस्तु कराद्भ्रष्टाः पतन्ति जलबिन्दवः ।
भूत्वा वज्राणि ते सर्वे पतन्ति ह्यसुरेषु वै ॥

४. ततो विभावसुस्तेषां प्रीतात्माप्यायते वरम् ।
यैरहं मोक्षितो विप्रैस्तेषां लोको यथा मम ॥

५. गायत्र्या अक्षमालायां सायं प्रातः शतं जपेत् ।
चतुर्णां खलु वेदानां समग्रं लभते फलम् ॥

६. संध्यां ये नोपतिष्ठन्ति ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
अब्राह्मणांस्तु तान्विद्याद्यथाशूद्रास्तथैव हि ॥

४१.४.७. आ जन्मस्वपि तेषां तु ब्राह्मण्यं नोपपद्यते ।
उपपद्येत वा भूयो यदि स्युस्तीर्थमृत्यवः ॥

८. ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घाण्यायूंष्यधारयन् ।
तस्माद्दीर्घामुपासीत समिच्छन्वृद्धिमायुषः ॥ ४ ॥

५. १. तद्यथाग्निर्देवानां ब्राह्मणो मनुष्याणां वसन्त ऋतूनामेवं गायत्री छन्दसाम् ॥

२. तद्यथा गायत्री कत्यक्षरा कतिपदा किं वास्या गोत्रं किं वास्या रूपं कीदृशं तस्याः शरीरं भवति ॥

३. यद्वै भूः स ऋग्वेदो यद्भुव इति स यजुर्वेदः यत्स्वरिति स्वर्गो वै लोकः स सामवेदस्तदिति सोऽथर्ववेद इति ।

४. तद्यथेदमक्षरमोमित्यक्षरं तत्परमं शमित्यक्षरं गुह्यं तत्परमं पवित्रम् ॥

५. आदित्यो वै सावित्र्यादित्येन सह सावित्री स्तौति सुवति प्रातः प्रसुवति तस्मात्सावित्रीत्वम् ॥

६. अक्षरदैवतं व्याख्यास्यामः

७. प्रथममाग्नेयं द्वितीयमाश्विनं तृतीयं सौम्यं चतुर्थं वैष्णवं सावित्रं पञ्चमं षष्ठं पौष्णं सप्तमं मारुतमष्टमं बार्हस्पत्यं नवमं मैत्रं दशमं वारुणमेकादशमैन्द्रं द्वादशं वैश्वदेवं वसूनां त्रयोदशं चदुर्दशं रुद्राणां पञ्चदशमादित्यानामदितेः षोडशं वायव्यं सप्तदशमं भौममष्टादशमेकोनविंशमान्तरिक्षं दिव्यं विंशं दिग्देवतानि चत्वार्यक्षराणि ॥ ५ ॥

६.१. अथ यत्पूर्वं संध्यामुपास्ते तद्गायत्र्याः शिरस्तेन पृथिवीं जयति ॥

२. अथ यन्मध्याह्ने तीक्ष्णं रुद्रस्तपति तद्द्वितीयं शिरस्तेनान्तरिक्षं जयति ॥

३. अथ यदस्तमियात्तत्तृतीयं शिरस्तेन दिवं जयति ॥

४१.६.४. तस्या ओंकारः शिरः सह व्याहृतिभिर्दर्भाः केशा ओषधीवनस्पतयो लोमानि चक्षुषी सूर्याचन्द्रमसौ विद्युद्भ्रसितं विष्णुवरुणावुरसी रुद्रो हृदये पौर्णमासी चामावास्या च स्तनावहश्च रात्री च पार्श्वे,

५. दश दिशः कुक्षी सर्वज्ञानानि व्याकरणमुदरं पृथिवी श्रोणी वायुः स्थानं भूषणं नक्षत्राणि श्रीसरस्वतीरूपा पदक्रममन्त्रब्राह्मणकल्पशरीरा सावित्री गोत्रेण ब्रह्मदेया भवति,
ब्रह्मदेया भवति
ब्रह्मदेयाभवतीति ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति संध्योपासनविधिः समाप्तः ॥ ४१ ॥

४२. स्नानविधिः

१. १. परिचय

१. २–४. स्नान योग्य स्थान

१.५–२.४. सांस्कारिक कृत्य

२. ५–६. अपने भीगे वस्त्रों को निचोड़ने के पूर्व पितृतर्पण करने की आवश्यकता ।

२. ७. स्नान के समय शान्त रहने का कारण

२. ८–११. उतारे वस्त्रों को साफ करना, अपने पैरों को एक बार पुनः धोना, तथा 'आध्यात्मिकानि सूक्तानि' का जप ।

२.१२–१३. कृत्य का फल ।

स्नानविधिः

४२.१.१. अथ स्नानविधिं पुण्यं वक्ष्यमाणं निबोधत ।
येन स्नाता दिवं लोकं प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥

२. सरित्सु वा तडागे वा देवखाते ह्रदेऽपि वा ।
गर्तप्रस्रवणे वापि पुण्यं स्नानं समाचरेत् ॥

३. पारक्ये तु तडागे हि स्नानं नैव विधीयते ।
तडागकर्तुर्दुष्कृतैर्लिप्यते स्नानमाचरन् ॥

४. सरितां सरसां चैव अप्राप्तौ निर्झरस्य च ।
उद्धृत्य चतुरः पिण्डान्स्नायात्तु परखातके ॥

५. अन्वीक्ष्यमाणः पार्श्वानि कुशहस्तः समाहितः ।
द्विजो मध्यंदिनादर्वागरोगी स्नानमाचरेत् ॥

६. यत्ते भूम इति मृदं संगृह्यर्चा समाहितः ।
यस्ते गन्ध इति त्रिभिर्मृद्भिरात्मानमालभेत् ॥

७. अघद्विष्टेति सूक्तेन दूर्वां शिरसि विन्यसेत् ।
अग्रमग्रमित्येतया गोमयेनानुलेपयेत् ॥

४२.१.८. अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने ।
यन्मे रोगं च शोकं च तन्मे त्वं नुद गोमय ॥
९. प्रणवाद्या व्याहृतीस्तु गायत्रीं च शिरोयुताम् ।
पठेत्त्रिरनवानं हि प्राणायामः स उच्यते ॥
१०. अम्बयो यन्तीत्यादीनित्रीणि सूक्तानि हि क्रमात् ।
हिरण्यवर्णा यददो वायोः पूतः पुनन्तु मा ॥ १ ॥
२. १. वैश्वानरो रश्मिभिश्च तथाप्सु त इति स्मृतम् ।
एतैः संप्लावयेत्सूक्तैस्ततोऽघमर्षणं स्मृतम् ॥
२. अपो दिव्याश्च सं माग इदमापः शिवेन मा ।
यदापो नक्तमिति च एतत्स्यादघमर्षणम् ॥
३. यदापो नक्तं मिथुनं चकार
यद्वा दुद्रोह दुरितं पुराणम् ।
हिरण्यवर्णास्तत उत्पुनन्तु
प्र मा मुञ्चन्तु वरुणस्य पाशात् ॥
४. सरस्वतीं गयां गङ्गां नैमिषं पुष्कराणि च ।
स्मृत्वा तीर्थानि पुण्यानि अवगाहेज्जलं ततः ।
५. गच्छतः स्नानकार्याय पितरः सह दैवतैः ।
पृष्ठतस्त्वनुगच्छन्ति तत्समीपं जलार्थिनः ॥
६. आशां त्यक्त्वा निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडनेन तु ।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥
७. उत्साहं वरुणः स्नाने अग्निर्होतुः श्रियं हरेत् ।
आयुष्यं भुञ्जतो मृत्युस्त्रिषु मौनमतश्चरेत् ॥
८. स्नानवस्त्रे मृदस्तिस्रः प्रदद्याच्छुद्धिहेतुना ।
स्नात्वा पर्युक्ष्य वासोऽन्यच्छोध्ये जङ्घे मृदा पुनः ॥
९. वस्त्रनिष्पीडतोयेन अपवित्रीकृते हि ते ।
उत्तीर्य वस्त्रं निष्पीड्य जपेदाध्यात्मिकानि तु ॥

४२.२.१०.अध्यात्ममस्यवामीयं कौत्सं कौष्माण्डिकं तथा ।
जप्त्वाथर्वशिरश्चैव भवाशर्वीयमेव च ॥

११. प्राणश्च भगवान्कालः पुरुषो मन्युरेव च ।
उच्छिष्टो रोहितो व्रात्य एतान्याध्यात्मिकानि तु ॥

१२. सम्वत्सरेण यत्पापं कृतं घोरमविस्तरम् ।
जप्त्वैतानि ततः पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥

१३. विषासहिं मनसा हि जप्त्वा
गायत्रीं च तथा त्रिदिवं प्रयाति ।
परिभ्रष्टस्त्रिदिवात्तपःक्षये
जातिस्मरत्वं पुनरेव विन्दते ॥
जातिस्मरत्वं पुनरेव विन्दत इति ॥ २ ॥

इति स्नानविधिः समाप्तः ॥ ४२ ॥

४३. तर्पणविधिः

१–६. यहाँ परिशिष्ट ४२. २. ६. में निर्धारित पितृतर्पण की विधि दी गई है। इसमें अधिकांशतः प्रार्थना मन्त्र ही हैं।

तर्पणविधिः

४३.१.१. ॐ अथ तर्पणविधिमनुक्रमिष्यामः ॥
२. स्नातोपस्पर्शनकालेऽत्रगाह्य देवतास्तर्पयति ॥
३. वसूनां नमो
४. ब्रह्मणे नमो
५. वैश्रवणाय नमो
६. धर्माय नमः
७. कामाय नमो
८. लोकाय नमो
९. देवाय नमो
१०. वेदाय नम
११. ऋषिभ्यो नम
१२. आर्षेभ्यो नमो-
१३. ऽङ्गिरोभ्यो नम
१४. आङ्गिरसेभ्यो नमो-
१५. ऽथर्वभ्यो नम
१६. आथर्वणेभ्यो नमो
१७. मरुद्भ्यो नमो
४३.१.१८. मारुतेभ्यो नमो
१९. वसुभ्यो नमो
२०. रुद्रेभ्यो नम
२१. आदित्येभ्यो नमः
२२. सिद्धेभ्यो नमः
२३. साध्येभ्यो नम
२४. आप्येभ्यो नमो-
२५. ऽश्विभ्यां नमो
२६. गुरुभ्यो नमो
२७. गुरुपत्नीभ्यो नमः
२८. पितृभ्यो नमो
२९. मातृभ्यो नमः ॥ १ ॥
२. १. अग्निस्तृप्यतु ॥
२. वायुस्तृप्यतु ॥
३. सूर्यस्तृप्यतु ॥
४. विष्णुस्तृप्यतु ॥
५. प्रजापतिस्तृप्यतु ॥
६. विरूपाक्षस्तृप्यतु ॥
७. सहस्राक्षस्तृप्यतु ॥

४३.२.८.सोमस्तृप्यतु ॥
९. ब्रह्मातृप्यतु ॥
१०. देवास्तृप्यन्तु ॥
११. वेदास्तृप्यन्तु ॥
१२. ऋषयस्तृप्यन्तु ॥
१३. आर्षेयास्तृप्यन्तु ॥
१४. सर्वाणि छन्दांसितृप्यन्तु ॥
१५. ओंकारवषट्कारौ तृप्यताम्॥
१६. महाव्याहृतयस्तृप्यन्तु ॥
१७. सावित्री तृप्यतु ॥
१८. गायत्री तृप्यतु ॥
१९. द्यावापृथिव्यौ तृप्यताम् ॥
२०. यज्ञास्तृप्यन्तु ॥
२१. ग्रहास्तृप्यन्तु ॥
२२. नक्षत्राणि तृप्यन्तु ॥
२३. अन्तरिक्षं तृप्यतु ॥
२४. अहोरात्राणि तृप्यन्तु ॥
२५. संख्यास्तृप्यन्तु ॥
२६. संध्यास्तृप्यन्तु ॥
२७. समुद्रास्तृप्यन्तु ॥
२८. नद्यस्तृप्यन्तु ॥
२९. गिरयस्तृप्यन्तु ॥
३०. क्षेत्रौषधिवनस्पतयस्तृप्यन्तु॥
२१. गन्धर्वाप्सरसस्तृप्यन्तु ॥

४३.२.३२.नागास्तृप्यन्तु ॥
३३. वयांसि तृप्यन्तु ॥
३४. सिद्धास्तृप्यन्तु ॥
३५. साध्यास्तृप्यन्तु ॥
३६. विप्रास्तृप्यन्तु ॥
३७. यक्षास्तृप्यन्तु ॥
३८. रक्षांसितृप्यन्तु ॥
३९. मन्त्रास्तृप्यन्तु ॥
४०. भूतान्येवमादीनि तृप्यन्तु॥
४१. श्रुतिं तर्पयामि ॥
४२. स्मृतिं तर्पयामि ॥
४३. धृतिं तर्पयामि ॥
४४. रतिं तर्पयामि ॥
४५. गतिं तर्पयामि ॥
४६. मतिं तर्पयामि ॥
४७. दिशं तर्पयामि ॥
४८. विदिशं तर्पयामि ॥
४९. श्रद्धामेधे तर्पयामि ॥
५०. धारणां तर्पयामि ॥
५१. गोब्राह्मणांस्तर्पयामि ॥
५२. स्थावरजङ्गमानि तर्पयामि॥
५३. सर्वान्देवांस्तर्पयामि ॥
५४. सर्वभूतानि तर्पयामि ॥२॥

४३.३.१. यज्ञोपवीतं ग्रीवायामवलंब्य सनकादि मनुष्यां स्तर्पयति ॥
सनकस्तृप्यतु
२. सनन्दनस्तृप्यतु ॥
३. सनातनस्तृप्यतु ॥
४. कपिलस्तृप्यतु ॥
५. वोढस्तृप्यतु ॥
६. आसुरिस्तृप्यतु ॥
७. पञ्चशिखस्तृप्यतु ॥
८. सनन्दनं तर्पयामि ॥
९. ससनकं तर्पयामि ॥
१०. विद्वांसं सनातनं तर्पयामि ॥
११. सनत्कुमारं तर्पयामि ॥
१२. सनकं तर्पयामि ॥
१३. सहदेवं सनातनं तर्पयामि ॥
१४. प्लुतिं तर्पयामि ॥
१५. पुलस्त्यं तर्पयामि ॥
१६. पुलहं तर्पयामि ॥
१७. भृगुं तर्पयामि ॥
१८. अङ्गिरसं तर्पयामि ॥
१९. मरीचिं तर्पयामि ॥
२०. क्रतुं तर्पयामि ॥
२१. दक्षं तर्पयामि ॥
२२. अत्रिं तर्पयामि ॥

४३.३.२३. वसिष्ठं तर्पयामि ॥
२४. मानसांस्तर्पयामि ॥
२५. अञ्जली द्विर्द्विः ॥३॥
४.१. अथापसव्यं कृत्वा पित्र्यां दिशमीक्षमाणः शतर्चिनाद्यर्षींस्तर्पयति ॥
शतर्चिनस्तृप्यन्तु ॥
२. माध्यमिकास्तृप्यन्तु ॥
३. गृत्समदस्तृप्यतु ॥
४. विश्वामित्रस्तृप्यतु ॥
५. अघमर्षणस्तृप्यतु ॥
६. वामदेवस्तृप्यतु ॥
७. अत्रिस्तृप्यतु ॥
८. भरद्वाजस्तृप्यतु ॥
९. वसिष्ठस्तृप्यतु ॥
१०. प्रगाथास्तृप्यन्तु ॥
११. पावमान्यस्तृप्यन्तु ॥
१२. क्षुद्रसूक्त महासूक्तौ तृप्यताम् ॥
१३. शुनस्तृप्यतु ॥
१४. जैमिनिस्तृप्यतु ॥
१५. वैशम्पायनस्तृप्यतु ॥
१६. पाणिनिस्तृप्यतु ॥
१७. पैलस्तृप्यतु ॥
१८. सुमन्तुस्तृप्यतु ॥

४३.४.१९.भाष्यगार्ग्यौ तृप्यताम् ॥
२०. बभ्रुबाभ्रव्यौ तृप्यताम् ॥
२१. मण्डमाण्डव्यौ तृप्यताम् ॥
२२. गार्गी तृप्यतु ॥
२३. वाचक्नवी तृप्यतु ॥
२४. वडवा तृप्यतु ॥
२५. प्रातिथेयी तृप्यतु ॥
२६. सुलभा तृप्यतु ॥
२७. मैत्रेयी तृप्यतु ॥
२८. कहोलं तर्पयामि ॥
२९. कौषीतकिं तर्पयामि ॥
३०. महाकौषीतकिं तर्पयामि ॥
३१. सुयज्ञं तर्पयामि ॥
३२. शाङ्खायनं तर्पयामि ॥
३३. महाशाङ्खायनं तर्पयामि ॥
३४. आश्वलायनं तर्पयामि ॥
३५. ऐतरेयं तर्पयामि ॥
३६. महैतरेयं तर्पयामि ॥
३७. पैठीनसिं तर्पयामि ॥
३८. मधुछन्दांसि तृप्यन्तु ॥
३९. भारद्वाजं तर्पयामि ॥
४०. जातूकर्ण्यं तर्पयामि ॥
४१. पैङ्ग्यं तर्पयामि ॥
४२. महापैङ्ग्यं तर्पयामि ॥
४३. शाकलं तर्पयामि ॥

४३.४.४४.बाष्कलं तर्पयामि ॥
४५. गार्ग्यं तर्पयामि ॥
४६. माण्डुकेयं तर्पयामि ॥
४७. पैङ्ग्यस्तृप्यतु ॥
४८. महापैङ्ग्यस्तृप्यतु ॥
४९. मदमित्रं तर्पयामि ॥
५०. महामदमित्रं तर्पयामि ॥
५१. औदवाहं तर्पयामि ॥
५२. सौयामिं तर्पयामि ॥
५३. शौनकिं तर्पयामि ॥
५४. पैठीनसिं तर्पयामि ॥
५५. महापैठीनसिं तर्पयामि ॥
५६. शाकपूणिं तर्पयामि ॥
५७. ये चान्य आचार्यास्तान्सर्वांस्तर्पयामि ॥
५८. प्रतिपुरुषं पितरः ॥
५९. पितृवंशस्तृप्यतु ॥
६०. मातृवंशस्तृप्यतु ॥
६१. अञ्जलींस्त्रींस्त्रीन् ॥ ४ ॥

५. १. धरस्तृप्यतु ॥
२. ध्रुवस्तृप्यतु ॥
३. सोमस्तृप्यतु ॥
४. आपस्तृप्यतु ॥
५. अनलस्तृप्यतु ॥
६. अनिलस्तृप्यतु ॥

४३.५.७. प्रत्यूषस्तृप्यतु ॥
८. प्रभासस्तृप्यतु ॥
इति वासवः ॥
९. मृगव्याधस्तृप्यतु ॥
१०. सर्पस्तृप्यतु ॥
११. निर्ऋतिर्महाशयस्तृप्यतु ॥
१२. अज एकपात्तृप्यतु ॥
१३. अहिर्बुध्न्यस्तृप्यतु ॥
१४. पिनाकी परंतपस्तृप्यतु ॥
१५. भुवनस्तृप्यतु ॥
१६. ईश्वरस्तृप्यतु ॥
१७. कपाली महाद्युतिस्तृप्यतु॥
१८. स्थाणुस्तृप्यतु ॥
१९. भवो भगवांस्तृप्यतु ॥
इति रुद्राः ॥
२०. भगस्तृप्यतु ॥
२१. अंशस्तृप्यतु ॥
२२. अर्यमा तृप्यतु ॥
२३. मित्रस्तृप्यतु ॥
२४. वरुणस्तृप्यतु ॥
२५. सविता तृप्यतु ॥
२६. धाता तृप्यतु ॥
२७. त्वष्टा तृप्यतु ॥
२८. पूषा तृप्यतु ॥
२९. विवस्वान्महाबलस्तृप्यतु ॥

४३.५.३०. इन्द्रस्तृप्यतु ॥
३१. विष्णुस्तृप्यतु ॥
इत्यादित्याः ॥
३२. कव्यवालं तर्पयामि ॥
३३. अनलं तर्पयामि ॥
३४. अनिलं तर्पयामि ॥
३५. सोमं तर्पयामि ॥
३६. यमं तर्पयामि ॥
३७. अर्यमणं तर्पयामि ॥
३८. अग्निष्वात्तांस्तर्पयामि ॥
३९. सोमपांस्तर्पयामि ॥
४०. बर्हिषदस्तर्पयामि ॥
इति देवपितरः ॥
४१. यमाय नमो
४२. धर्मराजाय नमो
४३. मृत्यवे नमो-
४४. ऽन्तकाय नमो
४५. वैवस्वताय नमः
४६. कालाय नमः
४७. चित्राय नमः
४८. चित्रगुप्ताय नमः
४९. सर्वभूतक्षयाय नमः
५०. कृताय नमः
५१. कृतान्ताय नमो
५२. महोदराय नमो

४३.५.५३. धात्रे नमो
५४. विधात्रे नमो
५५. यमेभ्यो नमो
५६. यमदूतेभ्यो नमः ॥
५७. विश्वेशास्तृप्यन्तु ॥
५८. सिकतास्तृप्यन्तु ॥
५९. पृश्निजास्तृप्यन्तु ॥

४३.५.६०. नीलास्तृप्यन्तु ॥
६१. शृङ्गिणस्तृप्यन्तु ॥
६२. श्वेतास्तृप्यन्तुः ॥
६३. कृष्णास्तृप्यन्तु ॥
६४. अजास्तृप्यन्तु ॥

इति यमदूताः ॥ ५ ॥

६.१. यां कां चित्सरितं गत्वा कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
एकैकस्य तिलैर्मिश्रान्दद्यात्त्रीनुदकाञ्जलीन् ॥
२. आ यातेति हि तिसृभिः पितॄनावाहयेत्ततः ।
उदीरतामिति तिसृभिः पितृभ्यो दद्यात्तिलोदकम् ॥
३. नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिन्तयेन्मनसा पितॄन् ।
तथा मातामहेभ्यश्च शुचौ देशेऽथ बर्हिषि ॥
४. परा यातेत्येतया पितॄंस्तृप्तान्विसर्जयेत् ।
मनोन्वा ह्वामहीत्येवं पञ्चभिर्मन उपाह्वयेत ॥
५. एतद्धि तर्पणं श्रेष्ठं स्वयमुक्तं स्वयंभुवा ।
श्रद्दधानः समाचष्टे ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥
ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ इति ॥ ६ ॥

इति तर्पणविधिः समाप्तः ॥ परिशिष्टम् ॥ ४३ ॥

४४. श्राद्धविधिः

१. श्राद्ध के चार स्वरूप—उनका विभेद ।
२–४. नित्य श्राद्ध-विधि ।
२. ब्राह्मणों को निमन्त्रण; उनकी संख्या तथा योग्यतायें; उनका स्वागत; आवाहन-कृत्य ।
३. ब्राह्मणों को जल, सुगन्ध, माला, धूप, अञ्जन, दर्पण और दीप समर्पित करना; हर प्रकार के भोज्य पदार्थों की आहुति देना, शेष भाग को पितरों के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मणों को देना ।
४. ब्राह्मण-भोजन के समय उच्चरित स्तुतियाँ; अन्न को इधर-उधर बिखेरना; भोज्य पदार्थ के तीन पिण्ड बनाना; अन्न को पुनः बिखेरना; समापन कृत्य ।

श्राद्धविधिः

४४.१.१. ॐ अथातः श्राद्धविधिं व्याख्यास्यामः ॥
२. चतुष्प्रकारं श्राद्धं भवति ॥
३. नित्यमाभ्युदयिकं काम्यमेकोद्दिष्टं चेति ॥
४. तत्र नित्यममावास्यायाम् ॥
५. आभ्युदयिकं मातृपूर्वकं पुंसवनादिषु संस्कारेषु ॥
६. काम्यं तिथिद्रव्यब्राह्मणसंयोगे ॥
७. एकोद्दिष्टं संचयनप्रभृत्या सपिण्डीकरणात् ॥
८. तत्र नित्ये युग्मान्दैवे ब्राह्मणानुपामन्त्रयेत् ॥
९. आभ्युदयिके उभयत्र युग्मान् ॥
१०. यवैस्तिलार्थ ऋजवो दर्भाः प्रदक्षिणं कुर्यात् ॥
११. काम्यं तु नित्यवत् ॥
१२. अथैकोद्दिष्टं तुष्णीं यावदुक्तम् ॥
१३. नाग्नेयं न दैवमयुग्मान्ब्राह्मणान् ॥
१४. दक्षिणामुख उपविश्य पित्र्येणोपचर्यैकं पवित्रमेकमुदपात्रमप्रत्यावृत्तिमासनं नामगोत्रेणैकं पिण्डमेतत्ते अन्नमिति ॥ १ ॥

४४.२.१. श्वोऽद्येति वा श्राद्धं करिष्यामीति ब्राह्मणानुपामन्त्रयेत् ॥
२. त्रीन्पञ्च सप्त वा न प्रसज्येत विस्तर इति वचनात् ॥
३. प्राङ्मुखान्विश्वेदेवानुदङ्मुखान्पितॄन् ॥
४. वेदवेदाङ्गविदः पञ्चाग्निरनुचानोऽव्यवहारी श्रोत्रियस्त्रिणचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णी छन्दोगो ज्येष्ठसामगोऽथर्वशिरसोऽध्येता संध्यास्नायी देवपितृसदाह्निको मातृपितृशुश्रूषुर्ऋग्यजुरङ्गिरोविद्धर्मशास्त्रविदिति ॥
५. प्रयतोऽपराह्णे शुचिः शुक्लवासाः ॥
६. स्वागतेनाभ्यर्च्याचमनीयं कृत्वा दत्त्वा ब्रह्मणानुपसंगृह्योपवेशयेद् ,
७. दैवे पित्र्ये च सदर्भेष्वासनेषु,
८. ततोऽनुज्ञापयेद्देवान्पितॄंश्चावाहयिष्यामीत्य,
९. आवाहय सौम्यस्ते सन्त्वित्यनुज्ञातः पूर्वं देवानावाहयेद्विश्वे दैवास आगतेति ॥
१०. विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदतेति ॥
११. आयातेति पितॄनावाहयेदाच्या जान्वित्युपवेशयेत्सं विशंत्विति संवेशयेदिति ॥ २ ॥

३.१. यज्ञोपवीती सावित्र्योदपात्रमभिमन्त्र्य,
२. विश्वेभ्यो देवेभ्यः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयमिति ब्रह्मणास्तेषु निनयेत् ॥
३. त्रीण्युदपात्राणि कल्पयेद्गन्धमाल्यतिलैर्मिश्राणि कृत्वो,
४. दीरतामिति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं सपवित्रेषु ब्राह्मणहस्तेषु निनयेत् ॥
५. प्रपितामहेभ्यः पितामहेभ्यः पितृभ्यश्चेति दत्त्वा,
६. गन्धमाल्यधूपाञ्जनादर्शप्रदीपस्योपहरणं

४४.३.७. सर्वान्नप्रकारमादायाग्नौ करिष्यामीत्यनुज्ञाप्य कुरुष्वेत्यनुज्ञातो दर्भैर्दक्षिणाग्रैरग्निं परिस्तीर्य जुहुयादग्नये कव्यवाहनायेति तिसृभिः

८. हुतशेषं ब्रह्मणेभ्यो दद्याद्

९. अङ्गुष्ठमुपयम्य प्रदक्षिणं दैवे प्रसव्यं पित्र्य इदं विष्णुरिति जपेज्जानुं निपद्य भूमाव्

१०. अतस्तिलैर्मांसैः शाकैर्यूषैः कृसरापायसापूपैर्लाजैर्भक्षैरिक्षुविकारैः पानैर्मधुना घृतेन दध्ना पयसा चैव प्रभूतमृष्टतोऽन्नं दद्यादनसूयः ॥ ३ ॥

४. १. पवित्रपाणिर्दर्भेष्वासीनो मधु वाता इति जपेत्

२. पवित्रं धर्मशास्त्रमप्रतिरथं प्राणसूक्तं पुरुषसूक्तमुपनिषदमन्यद्वाध्यात्मिकं किंचित् ,

३. तृप्तान्ज्ञात्वान्नं प्रकीर्य दत्त्वा चापः सकृत्सकृदन्नं येऽग्निदग्धा इति विकिरम् ॥

४. दर्भैरास्तीर्य द्यौर्दर्विरक्षितेति तिसृभिः सर्वान्नप्रकारमुद्धृत्याज्येन संनीय त्रीन्पिण्डान्संहतान्निदधात्ये-

५. तत्ते प्रततामहेति दक्षिणतः पत्नीभ्य इदं वः पत्न्या इतीदमाशंसानामिदमाशंसमानामित्यन्नेन प्रसव्यं परिकिरणम् ॥ ये दस्यव इत्युल्मुकेनाभिपरिहरणम् ॥

६. एकोद्दिष्टे त्वेकं पिण्डमेकमुदपात्रमाचम्योपस्थाय एतं भागमेतं सधस्थाः श्येनो नृचक्षा इति च श्राद्धं दत्त्वाभिमन्त्रयेच्छेषम्

७. अनुज्ञाप्याचमनीयं दत्त्वा पुण्याहं वाचयेद्दक्षिणां च दत्त्वा यथाशक्त्युदपात्रशेषं सपवित्रेषु ब्राह्मणहस्तेषु निनयेत्

८. पुत्रं पौत्रमित्येकमापो अग्निमिति द्वितीयं युक्ताभ्यां तृतीयं पुत्रं पौत्रमित्येकयोदपात्रमिति कौशिकः ॥

४४.४.९. प्रपितामहेभ्यः पितामहेभ्यः पितृभ्यो मातुलमातामहेभ्यो निर्दिष्टं तेभ्यः सर्वेभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधावदक्षय्यमस्त्वक्षय्यस्त्विति ब्राह्मणवचनम् ॥

१०. दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्वित्ये-

११. वं वरान्याचयित्वा नमो वः पितर इत्येवमादि मनोन्वाह्वामहीत्येवमन्तं समानं पिण्डपितृयज्ञेन मध्यमपिण्डप्रदानं चेति ॥

१२. वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो
धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं
तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥

१३. इति ब्राह्मणान्हस्तेषु गृहीत्वोत्थाप्य प्रदक्षिणं कुर्याद्

१४. एष श्राद्धविधिरनेन विधिना पुत्रान्पशून्धान्यं हिरण्यमायुश्च लभते य एवं वेदेति च ब्राह्मणम् ॥

१५. माहकिः कौशिकाच्च माहकिः कौशिकाच्चेति ॥ ४ ॥

इति श्राद्धकल्पः समाप्तः ॥ ४४ ॥

चतुश्चत्वारिंशं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ ४४ ॥

४५. अग्निहोत्रहोमविधिः

इस परिशिष्ट में वर्णित अग्निहोत्रहोमविधि का वैतान सूत्र के सातवें अध्याय के साथ घनिष्ठ साम्य है।

अग्निहोत्रहोमविधिः

४५.१.१. ॐ अग्निहोत्रम् ॥

२. सायमारम्भः पातरपवर्गः ॥

३. नान्तरेणान्यत्कुर्यात् ॥

४. प्रातरारम्भमित्येके ॥

५. यज्ञपात्राणि प्रक्षाल्याग्निहोत्रं श्रपयेत् ॥

६. श्रप्यमाणं चेद्विष्यन्देत्तदद्भिरुपनिनयेत्

७. तदनुमन्त्रयते पृथिवीं तुरीयमित्येताभिः

८. प्रत्यानीयोदगुद्वास्य बर्हिरुदपात्रमुन्दयति पर्युक्ष्य ॥

९. ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीतिहोष्यन् ॥

१०. सत्यं त्वर्तेनेति हुते ॥

११. गार्हपत्यादाहवनीयमुदकधारां निनयति ॥ अमृतमस्यमृतममृतेन संधेहीति ॥

१२. आहवनीयं पर्युक्ष्य गार्हपत्यं प्राप्याङ्गारानवलोड्य चरुस्थाल्या संस्पर्शयति ॥

१३. निरूढं जपत्युभयमिति प्रत्युढमिति प्रतिनिन्यति

१४. स्रुवं स्रुचं च प्रतितपति निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातय इत्य-

१५. द्भिरभ्युक्ष्य चरुस्थाल्यां स्रुवेण स्रुचि गृहीतमिति समानम्

१६. स्रुचमादाय मुखसम्मितामुद्गृह्याहवनीयमभिक्रामतीदमहं यजमानं स्वर्गं लोकं उन्नयामीति ॥

४५.१.१७.बर्हिषि स्रुचं निधाय समिधमादधाति ॥
१८. अग्निज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवतीं स्वर्ग्यां स्वर्गायोपदधामि भास्वतीं स्वाहेति सायम् ॥ सूर्यज्योतिषमिति प्रातः ॥
१९. समिधं प्रदीप्तामभिजुहोति ॥
२०. सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहेति सायम् ॥
२१. सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहेति प्रातरा-
२२. हुतिरुदयहोमेऽग्नेरेव,
२३. ज्योतिष्मानुदेत्यायंतनतामिति ॥
२४. प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति मनसैवोभयत्र प्राजापत्योत्तराहुतीर्हुत्वा
२५. स्रुवं त्रिरुदश्चमुन्नयति रुद्रान्प्रीणामीति,
२६. बर्हिषि स्रुवं निधायोन्मृज्य······
२७. पित्र्युपवीतं कृत्वा दक्षिणतः पितृभ्यः स्वधां करोमीति ॥१॥
२.१. हुतमग्निहोत्रं सर्वेष्वित्येके ॥
२. चरुस्थाल्याः स्रुवेण ॥
३. इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजां जनयतु प्रजापतिः । अग्नये गृहपतये रयिमते पशुपतये पुष्टिपतये स्वाहेति गार्हपत्ये ॥
४. अग्नयेऽन्नादायान्नपतये स्वाहेति दक्षिणाग्नौ हुत्वा ॥
५. मनसैवोभयत्र प्रजापतेश्चरुस्थाली
६. स्रुचं स्रुवं बर्हिष्याधायोत्तरतोऽग्नेरुपविश्य प्राश्नाति ॥
७. प्राणान्प्रीणामित्युपस्पृश्य गर्भान्प्रीणामीति द्वितीयं विश्वादेवान्प्रीणामीत्यन्ततः सर्वं
८. अप्रक्षालितयोदकं स्रुचा निनयति सर्पेतरजनान्प्रीणामीति

४५.२.९. बर्हिषा प्रक्षाल्य सर्पपुण्यजनान्प्रीणामीति द्वितीयम् ॥

१०. गन्धर्वाप्सरसः प्रीणामीत्यपरेणाहवनीयमुदकं तृतीयम् ॥

११. सप्तर्षीन्प्रीणामीति स्रुचं स्रुवं च प्रतितपति

१२. दक्षिणान्नयामीतिरात्रौस्रुग्दण्डमवमार्ष्टि ॥

१३. प्रातरुन्मार्ष्टि ॥

१४. इत्युक्तं समिदाधानम्,

१५. अग्न्युपस्थानम् ॥ रात्रिं रात्रिमप्रयातं भरन्त इति ॥

१६. यथाकालं सायं सायं गृहपतिरयं नोग्निरिति द्वे,

१७. गार्हपत्यपश्चाद्दुग्धान्नस्याग्निहोत्रश्रपणी विधीयते ॥

१८. यज्ञ ते वेद पृष्ठमित्येतयालभ्याभिमन्त्रयते ॥

१९. उखायां स्रवन्त्यां स मर्दकर्मभ्योऽन्यस्यां दृढतरायां प्रत्यासिच्यसुता देवेष्वित्यनुमन्त्रयते ॥

२०. एवं सर्वास्वूखासु सोमकलशमहावीरे वा

२१. अथ यस्याग्निहोत्रधेन्वादि व्यापद्येत। तत्र यथादेवतं जुहुयादप्रतिभावे व्याहृतिभिः ॥ २ ॥

इत्यग्निहोत्रहोमविधिः समाप्तः ॥

पञ्चचत्वारिंशं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ ४५ ॥

४६. उत्तमपटलम्

इस परिशिष्ट में कुछ व्रतों, विशेषतः वेदव्रत के नियम से सम्बद्ध विधान हैं। इसके लिये "वेदों के प्रथम और अन्तिम मन्त्रों; अथर्ववेद के अर्धों, चतुर्थांशों, काण्डों, अनुवाकों, महत् काण्डों और उसके सूक्तों के प्रथम और अन्तिम मन्त्रों" के साथ यज्ञ करने की आवश्यकता होती है। इस परिशिष्ट में अधिकांशतः इन्हीं आवश्यकताओं से सम्बद्ध सूचनायें प्रस्तुत की गई हैं। इसके लिये उपरोक्त सभी विभाजनों के अन्तिम मन्त्रों को उद्धृत किया गया है, और सम्भवतः इसी कारण इस परिशिष्ट को 'उत्तमपटलम्' नाम दिया गया है। समाससूक्तों (अवे० १२, २२ और २३) को भी अन्त में जोड़ दिया गया है।

उत्तमपटलम्

४६.१.१. अथ वेदव्रतस्यादेशनविधिं व्याख्यास्यामः ॥

२. सांवत्सरिकं वेदव्रतम् ॥

३. कल्पानां षाण्मासिकम् ॥

४. रोमनखानि धारयेत्रिषवणं तु स्नायाद्धविष्यमश्नीयान्न तु नक्तमणून्माषान्मासूरांस्तु ॥

५. दण्डमथितमुद्धृतस्नेहं नाश्नीयात् ॥

६. दण्डकमण्डलुधारणं वासश्चाथोर्णं

७. शिरोव्रतं च सांवत्सरिकं वेदव्रतेनैव व्याख्यातम् ॥

८. अथ प्रमाणानि वक्ष्यामो

९. यमानां मित्रस्य मृगार्थस्याक्षीराक्षारभोजनमयुग्ममाछादनमनन्तर्हिता शय्या ।

१०. मृगार्थेष्वविशेषेण यमेषु सर्वमेव शमीधान्यं न भुञ्जीता-

११. ऽथोपसमादधाति ॥ १ ॥

२. १. समास्त्वास्मै क्षत्राण्येतमिध्ममग्निर्भूम्यामिति तिसृभिर्ममाग्ने वर्च इति सर्वसूक्तेनायुष्यैर्वर्चस्यैः स्वस्त्ययनैरभयैरपराजितैः शर्मवर्मभिश्चोपसमादधाति ॥

४६.२.२. व्रतं निवेद्य व्रातपतीभिः समिधोऽभ्यादध्यादा-
३. ङ्गिरसान्समासान्हुत्वा भार्गवैर्विपर्यस्तामाङ्गिरसीं
४. वेदादिभिर्वेदोत्तमैः वर्गादिभिर्वर्गोत्तमैः पदादिभिः पदोत्तमैः काण्डादिभिः काण्डोत्तमैरनुवाकादिभिरनुवाकोत्तमैर्महत्काण्डै-र्विशेषेण सूक्तादिभिः सूक्तोत्तमैर-
५. त्रैतान्यष्टर्चप्रभृतीनि व्याख्यातानि ॥
६. ब्रह्मज्येष्ठेत्येका कामो जज्ञे कामस्तदिति हुत्वा
७. कल्पव्रते विशेषो वचनकर्मसु ब्राह्मणं श्रावयेत्
८. केशीब्राह्मणं च
९. येषु व्रतविशेषः स्यान्न तान्मन्त्रानुदाहरेत् ।
समासवत्स होतव्यः पुराणार्थं विजानता ॥ २ ॥

३. १. अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्
होतारं रत्नधातमम् ॥
२. तच्छं योरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।
देवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः ।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
३. इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थोपायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भाग-मूर्जस्वतीः पयस्वतीः प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशँसो रुद्रस्य हेतिः परि वो वृणक्तु ध्रुवा अस्मिन्गो-पतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥
४. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥
५. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

४६.३.६. एष स्य ते धारया सुतोऽव्यो वारेभिर्यवने मर्दितव्यम् ।
क्रीडन्रश्मिरपार्थिवः ॥ ३ ॥

४. १. ये त्रिषप्ता वस्योभूयाय ये त्रिषप्ताममर्माणि ते वस्योभूयाय ये त्रिषप्ता ये दिशां मर्माणि ते यां देवावस्योभूयाय ये त्रिषप्ताः समानां मासामा ते नयत्वा पर्जन्यस्य ये दिशां कृत्याकृतं वलगिनमक्षितास्ते मर्माणि ते विषमेवेन्द्रं मित्रं वशां देवा यां देवाः सूर्य एनमन्नाद्येन यशसा प्रबुध्यस्वाह्वा प्रत्यग्वस्योभूयाय ॥ ४ ॥

५. १. ये त्रिषप्ताः शं न आपो यथा वातो यदि नो गां हँस्यपेन्द्र द्विषतः पुत्रमत्तु समानां वृषायमाणः सूर्यमृतं परिपाणमस्या हरामि ये क्रिमय

२. आ ते नयतु पर्णोऽसीन्द्रपुत्रे विश्वाहा ते गोसनिं व्यस्मै मित्रावरुणावा पर्जन्यस्य स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन देवानामस्थि महान्तं कोशं यो अन्तरिक्षेणोप श्रेष्ठा अहमेव वात इवाव बाधे ये दिशां ।

३. अर्थमर्धेनैवा महानुर्वाञ्चमिन्द्रं शीर्षामयमुपहत्यामश्वस्यास्न इन्द्रस्य वरूथं हिरण्यवर्णा सुभगा अत्रैनानिन्द्रोदायुरुद्बृहता मनो ।

४. देवो देवाय सद्यो जातस्तस्तुवन्नग्निरिवैतु शतं च मे यद्येका-दशोऽसि नास्य धेनुरिषुरिव दिग्धा न वर्षमच्युतच्युदेता देवसेना

५. गन्धारिभ्यः सर्वेषां च क्रिमीणां ततस्ततामहाः प्रजापते श्रेष्ठे-नाश्विना ब्रह्मणाग्ने स्वाहा घृतादुल्लुप्तं तार्ष्टाघीरयं लोकः कृत्याकृतं वलगिनम् ॥ ५ ॥

६. १. दिवे चक्षुषे अयं नस्त्रिशद्धाम मा नो हासिषुर्यत्किं चेदमहं जजान यावदङ्गीनं यस्तेऽङ्कुशस्तनूष्टे वाजिन्नाञ्जनस्य द्वादशधा ।

४६.६.२. अभ्यञ्जनमक्षितास्ते यावन्तो मा ब्रध्नः समीचीर्यदि वासि बृहस्पतिर्नो यो नः शपात्त्वयवसाद्यं देवा यथा शेपो नमस्कृत्य मर्माणि ते अग्नेः शरीरम्

३. प्रति चक्ष्वाप्रजास्त्वमितो जय यत्प्रत्याहन्ति विषमेव यास्ते शिवा एतं वो युवानं ज्योतिष्मतो लोकान्सं ते शीर्ष्णे इन्द्रं मित्रं प्रभ्राजमानामारे अभूद् ।

४. एतमिध्ममकामो धीरो वशां देवा नमस्ते घोषिणीभ्यः प्राण मा मद्यन्मातली अस्तु स्तीमासु यां देवा भूमे मातः प्रत्यञ्च-मर्कं ऊर्ध्वायै त्वा यदि हुतां

५. सूर्य एनं यो यज्ञस्याबोध्यग्निः कृष्णायाः पुत्रो अन्नाद्येन यशसा ब्रह्मापरं प्रबुध्यस्वैनं श्रद्धा अह्वाप्रत्यङ्शकरी स्थ वस्योभूयाय ॥ ६ ॥

४. १. व्रतैर्भृग्वङ्गिरःप्रोक्तैरानुपूर्व्याद्विधानतः ।
उपसन्ने गुरुः कुर्याद्व्रतविद्ब्रह्मचारिणि ॥

२. ग्रामाद्यथोक्तं बाह्येन स्थण्डिलेऽग्निं प्रणीय तु ।
नित्येनोपसमाधाय संस्कृत्य जुहुयाद्धविः ॥

३. औपगव्या व्याहृतयः सावित्री शान्तिरेव च ।
व्रातपत्यः समासौ च तन्मत्रांहोमुचैः सह ॥

४. कूष्माण्ड्यः कामसूक्तं च ब्रह्मवत्योऽथ देवताः ।
व्रतादेशे तथोत्सर्गे होमः क्षीरोदनः स्मृतः ॥

५. उत्सर्गे कामसूक्तं च पूर्वां चाहुतिमुद्धरेत् ।
निवेद्य व्रातपत्योऽन्ते इदावत्सर एव च ॥ ७ ॥

८. १. आवर्तनान्तं सामान्यं व्याहृत्याद्युभयोरपि ।
एतत्सामासिकं प्रोक्तमादेशोद्दीक्षणं बुधैः ॥

२. व्रतेषु दक्षिणा धेनुः कल्याणी तरुणी च या ।
अनड्वान्वा धुरंधरस्तत्समं वापि काञ्चनम् ॥

४६.८.३. सावित्र्या अथ वेदस्य कल्पानां तदनन्तरम् ।
मैलं मैलोत्तरं चैव षष्ठं संमितमुच्यते ॥

४. षड्व्रतं ब्राह्मणं विद्यात्त्रिव्रतं क्षत्रियं विदुः ।
द्विव्रतस्तु भवेद्वैश्य एतदाचार्य शासनम् ॥

५. वैषासहिं सहमानमग्निर्मा गोप्ता ओ चित्सखायमित एत
उदारुहं धनुर्हस्तादेतदा रोह चन्द्रमा अप्स्वति ॥ ८ ॥

९. १. ओमाङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥

२. षष्ठाय स्वाहा ॥

३. सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥

४. नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥

५. हरितेभ्यः स्वाहा ॥

६. क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥

७. पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥

८. प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥

९. द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥

१०. तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥

११. उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥

१२. उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥

१३. उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥

१४. ऋषिभ्यः स्वाहा ॥

१५. शिखिभ्यः स्वाहा ॥

१६. गणेभ्यः स्वाहा ॥

१७. महागणेभ्यः स्वाहा ॥

१८. सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥

१९. पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥

४६.९.२०. ब्रह्मणे स्वाहा ॥

२१. ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोऽथ जज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणास्पर्धितुं कः ॥ ९ ॥

१०. १. आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥

२. पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥

३. षडर्चेभ्यः स्वाहा ॥

४. सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥

५. अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥

६. नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥

७. दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

८. एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

९. द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१०. त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

११. चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१२. पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१३. षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१४. सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१५. अष्टदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥

१६. एकोनविंशतिः स्वाहा ॥

१७. विंशतिः स्वाहा ॥

१८. महत्काण्डाय स्वाहा ॥

१९. तृचेभ्यः स्वाहा ॥

२०. एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥

२१. क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥

४६.१०.२२. एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥

२३. रोहितेभ्यः स्वाहा ॥

२४. सूर्याभ्यां स्वाहा ॥

२५. व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥

२६. प्रजापत्याभ्यां स्वाहा ॥

२७. विषसह्यै स्वाहा ॥

२८. मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥

२९. ब्रह्मणे स्वाहा ॥

३०. ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोऽथ जज्ञे
तेनार्हति ब्राह्मणा स्पर्धितुं क इति ॥ १० ॥

इत्युत्तमपटलं समाप्तम् ॥ ४६ ॥

षष्ठं चत्वारिंशं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

४७. वर्णपटलम्

अथर्ववेद प्रातिशाख्य में उन वर्णों का कोई वर्णन नहीं है जिनकी उसमें पूर्वमान्यता है। प्रस्तुत परिशिष्ट में उसी कमी को पूरा करने का प्रयास किया गया है। (देखिये जअओसो ७.३३३-६१६ जहाँ ह्विटने ने अथर्ववेद प्रातिशाख्य के अनुवाद सहित उस पर अपनी एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है)।

वर्णपटलम्

४७.१.१. ॐ वर्णान्पूर्वं व्याख्यास्यामः प्राकृता ये च वैकृताः।
श्रुतिनिर्वचनात्सर्वे विवदन्ते विवृत्तिषु॥

२. वृत्तिः करणं वर्णानां कर्णयोस्तु श्रुतिर्यथा।
श्रुतिप्रदेशाद्विमितस्तद्यथा वर्ण उच्यते॥

३. समान संध्यक्षराणि स्पर्शा अन्तःस्था ऊष्माणः।
एतैरन्ये न दृश्यन्ते एतावान्वर्ण संचयः॥

४. येषां च श्रुति संहितायां त्रिभागे असदृशी स्यात्।
तानेव वर्णान्विरुद्धादये च प्रदिशे कृतः॥

५. ये वर्णाभ्यां श्रूयन्ते च येषां नास्ति विभागतः।
मानसांश्चापि संग्राह्यानुपदेशेन वर्तयेत्॥

६. क्रान्तान्बहिर्निधानस्य यमाश्चाननुनासिकान्।
सव्याक्षेपं ततो वर्णानुपदेशेन वर्तयेत्॥

७. इति वर्णाः स्वराः प्रोक्तास्तेषामाद्याश्चतुर्दश।
समानाक्षराण्युच्यन्ते शेषः संध्यक्षराणि तु॥

८. अनवर्णस्वरो नामी काद्यो व्यञ्जनं स्मृतम्।
पञ्चविंशतिराद्यैषां स्पर्शो वर्गाश्च पञ्चकाः॥

९. चत्वारो यादयोऽन्तःस्थाः शादिरूष्माष्टको गणः।
अयोगवाहा वर्तन्ते तेषामाद्याः पृथग्विधाः॥

४७.१.१०. विसर्जनीयोऽनुस्वारो जिह्वामूलीय इत्यधः ।
उपध्मानीय इत्येते चत्वारोऽतः परे यमाः ॥
११. नासिक्याभिनिधानौ च विद्यते येन पूरणम् ।
पञ्चषष्टिरियान्वाचो राशिर्यो वेदलोकयोः ॥
१२. मुखनासिके ये वर्णा उच्यन्ते तेऽनुनासिकाः ।
समानास्यप्रयत्ना ये ते सवर्णा इति स्मृताः ॥
१३. ह्रस्वोऽवर्णपरस्तस्य सवर्णस्य च वाचकः ।
ह्रस्वोत्तरस्तु दीर्घोऽपि तस्मात्तस्यैव वाचकः ॥
१४. वर्गान्तरस्तु वर्गादिर्वर्गस्य ग्राहको मतः ।
वर्गाणां च यथासंख्यं प्रथमादित्वमिष्यते ॥
१५. अकारेणोच्यतेऽतस्तु कारो यस्मात्परो भवेत् ।
तस्य तद्ग्रहणं बोध्यं ककारोऽत्र निदर्शनम् ॥
१६. व्यञ्जनं घोषवत्संज्ञमन्तःस्थाहः परौ यमौ ।
त्रयस्त्रयश्च वर्गान्त्या अघोषः शेष उच्यते ॥
१७. शषसाश्च यमौ द्वौ च द्वितीयाः प्रथमाश्च ये ।
अघोषा व्यञ्जनशेषं घोषवद्दृश्यते बुधैः ॥
१८. अतः स्थानानि वर्णानां कण्ठोऽवर्णहकारयोः ।
विसर्जनीय ऐ औ च स्वाद्ययोर्मात्रयोः स्मृतः ॥
१९. शेषस्ताल्वोष्ठयेर्योध्यः स यथासंख्यमिष्यते ।
द्विस्थानं यमयोश्चापि वर्गान्त्यानां च शिष्यते ॥
२०. जिह्वामूलम् ऋवर्णस्य कवर्गस्य च भाष्यते ।
यश्चैव जिह्वामूलीय ऌ-वर्णश्चेति च स्मृतः ॥ १ ॥
२. ९. ताल्वे-य-श-चवर्गाणाम् इ-वर्णस्य च भाष्यते ।
मूर्धा स्थानं ष-कारस्य ट-वर्गस्य तथा मतः ॥
२. दन्ता ल-स-तवर्गाणाम् उ-वर्णस्त्वोष्ठ्य उच्यते ।
उपध्मानीय ओ-कारो वः प-वर्गश्च तथा मताः ॥

४७.२.३. नासिक्ये नासिका स्थानं तथानुस्वार इष्यते ।
यमा वर्गोत्तमाश्चापि यथोक्तं चैव ते मताः ॥

४. रेफस्य दन्तमूलानि प्रत्यग्वा तेभ्य इष्यते ।
इति स्थानानि वर्णानां कीर्तितानि यथाक्रमम् ॥

५. अपर आह
हनुमूले तु रेफः स्याद्दन्तमूलेषु वा पुनः ।
प्रत्यग्वा दन्तमूलेभ्यो मूर्धन्य इति चापरे ॥

६. उरःस्थो घोषो विसृष्टः कण्ठदेशे निहन्यते ।
ततो नादो वितिष्ठते तस्य विकृतिरक्षरम् ॥

७. पूर्वाभिरणुमात्राभिः कण्ठ्यं संसेव्यतेऽक्षरम् ।
उत्तराभिस्तु मात्राभिर्मुखविकृतिरुच्यते ॥

८. अपि प्रयोगस्य हेतोः संयोगः सह धार्यते ।
अव्यवहितोऽक्षरेण नानावर्णः स्वरोदयः ॥

९. द्वितीयेषु तथोष्मणां तृतीयेषु च घोषाणाम् ।
चतुर्थेषु घोषोष्मणामुपदेशेन वर्तयेत् ॥

१०. उत्तमेषु तु नासिक्यमन्तःस्थेषु घोषं स्मृतम् ।
हकारस्य घोषोष्माणावुपदेशेन वर्तयेत् ॥ २ ॥

३. १. ऋकाराक्षरयो रेफमणुमात्र सर्व ...... ।
स्वरितस्य द्वैधीभावे उपदेशेन वर्तयेत् ॥

२. ऋवर्णदेशसंदेहोऽस्वरः स्यात्स्यादनन्तरम् ।
परो वा यदि वा पूर्वो रेफमेव तु विद्धितम् ॥

३. अ-कारश्च इ-कारश्च उ-कार ऋ-कार एव च ।
ह्रस्वदीर्घप्लुताः सर्वे ऌ-वर्णे नास्ति दीर्घता ॥

४. ए-कारश्च तथैकार ओकार औकार एव च ।
दीर्घमात्रप्लुतास्तेषां संज्ञा संध्यक्षराणि च ॥

४७.३.५. उदात्ताश्चानुदात्ताश्च स्वरिताः कम्पिताश्च ये ।
अनुनासिकास्तथा शुद्धा दृश्यते ह्रस्वता बुधैः ॥

६. वर्णाः पञ्चषष्टिः स्वरा द्वाविंशतिः समानाक्षराणि चतुर्दश अष्टौ संध्यक्षराण्येकोनविंशतिर्नामिनस्त्रिचत्वारिंशद्व्यञ्जनानि स्पर्शाः पञ्चविंशतिश्चत्वारस्त्वन्तःस्थाः चत्वारो यमाश्चाष्टावूष्माणोऽयोगवाहा दशायोगवाहा दश ॥ ३ ॥

इति वर्णपटलं समाप्तम् ॥ ४७ ॥

४८. कौत्सव्यनिरुक्तनिघण्टुः

(तुकी० कौत्सव्य के निरुक्त पर ब्लूमफील्ड का लेख, जअओसो० १५, पृ० ४८–५०)।

प्रस्तुत परिशिष्ट में यास्क की कृति के आधारों का निर्माण करनेवाले निघण्टुओं की तीसरी शाखा के विषयवस्तु को प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह अन्य दोनों शाखाओं से स्पष्टतः पृथक् है, तथापि रॉथ द्वारा प्रकाशित दूसरी शाखा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस शाखा के गुणों का पर्याप्त मूल्यांकन प्रायः असम्भव है। इसके पाठ की प्रकृति इसे एक विचित्र रूप से भ्रष्ट सिद्ध करती है, और इस कारण इसकी पाण्डुलिपियाँ तो सामान्य से भी कहीं अधिक भ्रष्ट हैं। वास्तव में यदि पाण्डुलिपि के पाठ को देखा जाय तो उसे व्यवहारतः अस्पष्ट ही कहा जायगा, अतः सम्पादक ने इसके पाठ को सभी निघण्टुओं के पाठ की तुलना के आधार पर पुर्नार्निमित किया है। फिर भी, अनेक ऐसे निरर्थक शब्द अब भी बच गये हैं जिनके लिये कोई सफल पाठ निर्धारित करना प्रायः कठिन था। ऐसे सभी स्थलों को चौकोर कोष्ठ ([ ) में प्रस्तुत किया गया है। निघण्टुओं से दो स्पष्ट अन्तर को जान-बूझ कर अपरिवर्तित छोड़ दिया गया है। छूटे शब्दों को पूरा करने का भी प्रयास नहीं किया गया है तथा एक 'गुण' के अन्तर्गत शब्दों के क्रम को भी परिवर्तित नहीं किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी अन्तर विशुद्धतः यान्त्रिक कारणों से उत्पन्न हुए हैं परन्तु ऐसे अन्तरों का उनसे विभेद प्रायः असम्भव है जो स्वयं इसके लेखक के कारण उत्पन्न हुये हैं।

यहाँ जो पाठ प्रस्तुत किया गया है वह प्रकाशित शाखाओं से, कुछ औपचारिक विशिष्टताओं की दृष्टि से, भिन्न है—जैसे एक अत्यन्त भिन्न नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत विषयवस्तु के कुछ अंश को छोड़ देना और थोड़ी सी नवीन सामग्री को जोड़ देना। साथ ही कुछ पाठभेद ऐसे हैं जिनका स्वयं अपना महत्त्व है और उन्हें यास्क के भाष्यकारों ने भी उद्धृत किया है। जो नवीन विषय-वस्तु सम्मिलित किये गये हैं उनमें से कुछ तो निरुक्त के विषय हैं जिनके स्वरूप का यास्क से अत्यधिक घनिष्ठ साम्य है। फिर भी सबसे मनोरंजक अंश वह है जो विशिष्टतः अथर्वन् प्रतीत होता है। इसमें (११६) अथर्वन् शब्दों की एक सूची है जिसे नैघण्टुक के 'अनेकार्थाः' की सूची में जोड़ दिया गया है। दुर्भाग्य है कि वर्तमान सम्पादक को उपलब्ध पाण्डुलिपियों पर ही अधिकांशतः निर्भर रहना पड़ा है और उक्त शब्दों में से बहुत थोड़ों का ही सही-सही निर्धारण सम्भव हो सका है।

कौत्सव्यनिरुक्तनिघण्टुः

४८. १. ॐ अथर्वणे नमः ॥

२. [पचति । पचते । अशनशि । सिस्रते । गमेः । वायि । चायि ॥ १ ॥ व्यापि । चक्रि । देवाचष्टे । अव चाकशत् । व्यानशे । त्रिषि निषामयत्योः । योषितिः सप्ते च ॥ २ ॥ रिञ्जति ।]

३. वश्मि । वश्मि । उशमसि । अत्र वेति । वाञ्छति । वेष्टि । वनोति । जुषते । हर्यति । आ चके । उशिक् । मन्यते । अछान्त्सुः ॥ ३ ॥ छन्त्सत् । चाकनत् । चकमानः । कनति । कानिषत् । कामे ॥

४. मिमेति ॥ ४ ॥ नर्दति । ध्वनति ॥

५. ध्वंसते । [कृणति । किंशक्के ॥]

६. वनति । भनति । [स्तर्षति] । स्फूर्जति ॥

७. ह्लादते । [निर्ह्रुते ।] ह्लादयति ॥

८. शब्दयति ॥

९. अर्च(ति) । अर्चति । रेभति । गायति । जल्पति । स्तोभति । स्तौति । यौति । रौति । नौति । गदति । नदति । भनति । भनते । [तत्रते ।] पणते । पणस्यति । पणायते । भन्दते । [यत्रस्यते । कुकुंधंपात्] कृपण्यति । धमति । सपति । पपृक्षाः । गूर्धयति । वेदयति । वादयति ॥ ५ ॥ वल्गूयति । महयति । मन्त्र(य)ते । सेत्रते । पृच्छति ॥ ६ ॥ छन्दति । शशमानः । जरते । [चरति ।] वनेति । वन्दते ॥

१०. इरज्यति । इरज्यति ॥ ७ ॥ विधेम । दुवस्यति । नमस्यति । विवासति । ऋध्नोति । ऋणद्धि । ऋच्छति ॥

११. परिस्रव । परि-स्रव ॥ ८ ॥ पवस्व । अभ्यर्ष । आशिषः ॥

४८.१२. ईमहे । ईमहे । यामि । मन्महे । दद्धि । पूर्धि । शग्धि । मिमीहि । रिरीहि । रिरिड्ढि । मिमिड्ढि । पीपरत् । यन्तारः । इषुध्यति । वनेमहि । मनामहे । याचते ॥

१३. दासति । दासति ॥ ९ ॥ दाशति । शिक्षति । महते । पृणाति । राति । रासति । प्राति । तुञ्जति । [मत्स्यति ।] ददाति ॥

१४. उरुष्यति । उरुष्यति ॥ १० ॥ पिपर्ति । पारयति । पाति । पासति । प्राति । तुञ्जति । पृणाति । रक्षे ॥

१५. आ वयति । आ वयति । भर्वति । बभस्ति । वेनति । वेति । वेवेष्टि । अविष्यन् । [प्रग] प्साति । बप्सति । भसथः । बब्धाम् ।

१६. [वदति । आदेति । तिरति । त्विष्यति । हिनोति । वृद्धेः ॥]

१७. [उत्पपीति । उत्पपीति ॥ ११ ॥ तपति । पिप्पहु । सहोति । युग्भिदी भेदयोजनयोश्च ॥]

१८. हेडते । हेडते ॥ १२ ॥ भामते । हृणीयते । भ्रीणाति भ्रेषते । दोधति । हेडः । हरः । हृणिः । त्यजः । भामः । मन्युः । क्रोधे नमानि च क्रोधस्य ॥

१९. श्नथति । श्नथति ॥१३॥ [दोवति । कुर्वति ।] तूर्वति । [मनुष्यति । धनुष्यति ।] श्रृणाति । मृणाति । भृञ्जति । अमति । तृणेढि । दभ्नोति । [शूषति ।] ध्वरति । धूर्वति । कृन्तति । श्वसति । स्नेहयति । मृद्गाति । [स्रध्नाति ।] दासति । स्तृणुते । स्तरते । [कृणाति] नि तोजति । नि वपति । [अमति । रिति ।] यातयते । आखण्डलं । तडित् । हिंसायाम् ॥

२०. इनद्धि । इनद्धि ॥ १४ ॥ स्वरति । हृष्यति । पथति । सृजति । ज्योतते । द्योतते [द्योप्यते ।] भ्राजते । भ्राशते ।

दीदयति । साधते । द्युमत् । जमत् । कल्मलीकिनम् । मल्म-लाभवन् । जञ्जणाभवन् । अर्चिः । शोचिः । तपः । तेजः । हरः । भृङ्गाणि । ज्वले ज्वलतश्च नामानि ॥

४८.२१. इरज्यति । इरज्यति ॥ १५ ॥ पत्यते । क्षयति । राजति । ईश्वरे ॥

२२. [स्वस्त्ययलेपी । स्वपे ॥]

२३. सिषक्ति । सेचति । सेचते ॥

२४. [अबिभस्ते ।] अभि दासते । अभि मन्यते ॥

२५. बिभर्ति । दधति । धारयते ॥

२६. हृणीयते । भृणीयते ॥

२७. वादयते । पुनाति । पणायति । पूजयति । वदति । [कुसी । हूर्छि । सासुद्यति ।] श्लघायाम् ॥

२८. सूर्क्षति । [रादले । व्युच्छति । र प्रसादे । शरुलिप्सायाम् । मुक्षति ।] सादरे । [व्युच्छति । अप्रमादे । शरुलिप्सा-याम् । व्याखदि । पृथग्भावे ओषधि-किच्छ्रजीवने । दश-स्यति । द्रोहे । पीयति । स्पर्धायाम् । वक्षति । निवासे । इष्टाति । स्वादने ॥]

२९. पिवति । पाने ॥

३०. धिनोति । प्रीतौ ॥

३१. जिन्वति । उभयत्र ॥

३२. जिघर्ति । सेचने ॥

३३. [विस्वति । विस्याप्ये ॥]

३४. गोपयति । गोपने ॥

३५. शुम्भति । शोभने ॥

३६. मुश्चति । शुद्धौ च ॥

३७. शर्धति । ध्वंसने ॥

४८. ३८. मृदति । सुखने ॥
३९. चक्षुर्भिर्मोहते । दृशिहाने ॥
४०. विन्दति । लाभे ॥
४१. पुष्यति । वृद्धौ ॥
४२. [कोभति] । क्षये । दस्यति च ॥
४३. [श्रोशित च । लितगुतौ ॥]
४४. ऋञ्जति । [पार्जन्यः ।] ऋजुगमने ॥
४५. [वाचौष्टयति । विलासे ॥]
४६. रदति । खनने ॥
४७. [सेवति । आ क्रोशति । स्पर्शे ॥
४८. नसति । नेचते ॥
४९. जिघर्ति । ग्रहणे । गिरणे च ॥]
५०. मन्दति । तृप्तौ ॥
५१. [अमनि । भावने ॥
५२. चक्रति । प्रतिवेदने ॥
५३. जक्षति । क्षुत्सहने ॥
५४. श्लिष्यति । आश्लेषे ॥
५५. भजति । प्रेप्सायाम् ॥
५६. सेवति । सेवायाम् ॥
५७. ह्लादयति । शीतीभावने ॥
५८. काशति ॥ प्रकाशने ॥
५९. [दानपनुपरिवस्यते ॥]
६०. रोदसी ॥१६॥ रोदसी । रोधसी । क्षोणी । स्वधे । पुरंधी । ऋतावृतौ । प्रपित्वे । प्रतिष्ठे । प्रशस्ये । उरूची । [सान्तापे] । रजसी । त्रिषाणे । धिष्ण्ये । गभीरे । गम्भीरे ॥ १७ ॥ ओण्यौ । चम्वौ । नप्त्यौ ॥ १८ ॥ पार्श्वौ ।

दूरे अन्ते । अनन्ते । द्यावापृथिव्योः ॥

४८. ६१. अपः । अपः ॥ १९ ॥ अप्नः । दंसः । वेयः [वेदः ।] वेषः । विष्ट्वी । व्रतम् । कर्वरम् । शक्म । क्रतुः । करणानि । करांसि । करिक्रत् । करन्ती । चक्रत् । कर्तुम् । कर्ता । कर्तवे । [थलित । हिंसायाम् । इनद्धि ।] धीः । सत्रः । शमी । शक्तिः । शिल्पम् । कर्मणः ॥

६२. अस्नेमा अस्नेमा ॥२०॥ अनेद्यः । अनिन्द्यः । अनभिशस्तिः । अनवद्यः । उक्थ्यः । सुनीथः । पाकः । प्रशस्य (स्य) ॥

६३. आगः । आगः । एनः । अंहः । रिपुः । दुरितम् । अशस्तिः । शमलम् । वृजिनं । अघस्य ॥

६४. शिम्बाता । शिम्बाता ॥ २१ ॥ शतरा । शातवन्ता । शिल्पम् । शेवृधम् । स्यूमकं । मयः । द्योतनम् । सुदिनम् । शुपम् । द्युम्नम् । इन्द्रियम् । शेवम् । शिवम् । शुनम् । शं । भेषजम् । जलापम् । सुखस्य ॥

६५. निर्ऋतिः । निर्ऋतिः ॥२२॥ कृच्छ्रम् । तृप्रम् । दुःखस्य ॥

६६. तुवि । पुरु । भूरि । शश्वत् । विश्वम् । व्यानशिः । व्योमनी ॥ शतम् । सहस्रम् । अयुतम् । नियुतम् । प्रयुतम् । अर्बुदम् । अत्यर्बुदम् । असंख्येयम् । सरिरम् । बहोः ॥

६७. ऋहन् । ऋहन् । निघृष्वः । कृशमः । मायुकः । प्रतिष्ठा । कृधुकः दहरकः । वम्रकः । अर्भकः । [अथुराणः] । ह्रस्वस्य ॥

६८. महः । महः । बध्नः । ऋष्वः । उक्षः । उक्षितः । गभीरः । अभवः । तवसः । ऋभुक्षा । उक्षा । [उक्षिता] विहायाः । यह्वः । उरु । बृहत् । अम्भृणः । विरप्शी । अद्भुतः । ववक्षिथ (वविषिपुः) । वरिपीः । महतः ॥

४८. ६९. नवम् । नवम् ॥ २३ ॥ नूतनम् । नूत्नम् । नव्यम् । अधुना । इदानीम् । नवस्य ॥

७०. प्रत्नम् ॥ २४ ॥ प्रत्नम् । प्रदिवः । प्रवयाः । सनेमि । [मोक्तः । माहुः । यतः ।] पुराणस्य ॥

७१. [अधाह्यः ॥ २५ ॥ सत्रा । बट् । ऋतम् । अद्धा । सत्यस्य ॥

७२. गौः । गौः ॥ २६ ॥ ग्मा । ज्मा । क्ष्मा । क्षा । क्षमा । क्षोणी । क्षितिः । अवनिः । उर्वी । मही । रिपः । अदितिः । इडा । निर्ऋतिः । गातुः । भूः । भूमिः । पूषा । गोत्रा । पृथिव्याः । पराणि । तदायतनानाम् ॥

७३. तडित् । तडित् । आसात् । अम्बरम् । तुर्वशे । अस्तमीके । उपाके । अर्वाके । अन्तमानाम् । अवमे । उपमे । अन्तिकस्य ॥

७४. श्यावी । श्यावी । क्षपा । शर्वरी । अक्तुः । [उर्वी ।] ऊर्म्या । रम्या । नम्या । [वोषा ।] दोषा । नक्ता । तमः । रजः । असिक्नी । तमस्वती । [दमस्वती ।] महस्वती । यशस्वती । घृताची । शिरिणा । मोकी । शोकी । ऊधः । पयः । हिमा । वस्वी । रात्रेः ।

७५. अर्णः । अर्णः ॥ २७ ॥ गरः । क्षोदः । क्षद्म । नभः । अम्भः । कबन्धम् । सलिलम् । वाः । वनम् । घृतम् । मधु । पुरीषम् । पिप्पलम् । क्षीरम् । विषम् । रेतः । शकम् । जह्म । बृबूकम् । बुसम् । तुग्रयाः । सुक्षेमम् । वरुणः । सुरा । अररिन्दानि । ध्वस्मन्वत् । जामि । आयुधानि क्षपः । अहिः । अक्षराः । तृप्तिः । रसः । सरः । पयः । भेषजम् । स्रवः । शवः । सहः । ओजः । सुखम् । क्षत्रम् । आवयाः । शुभम् । यादः । भूतम् । भुवनम् । भविष्यत् ।

आपः । महत् । व्योम । यशः । शर्णीकम् । [स्वर्णीकरम् ।] गहनम् । गभीरम् । [गम्भीरम् ।] गह्वरम् । कम् । अन्नम् । [सु] हविः । सद्म । सदनम् । ऋतम् । [ऋत] योनिः । ऋतस्य योनिः । सत्यम् । नीरम् । रयिः । सत् । पूर्णं । सर्वम् । अक्षितम् । सर्पिः । अपः । पवित्रम् । अमृतम् । इन्दुः । हेम । सर्गाः । शम्बरम् । अभ्वम् । वपः । अम्बु । तोयम् । तूयम् । कृपीटम् । अक्षरम् । क्षराः । वारि । जलम् । [चूर्णाः । संस्त्यानाः । धानाप्यम् ।] विस्रुतम् । जलापम् । जलाषम् ॥ २८ ॥ कर्बुरम् । काष्ठाः । [इदम्] इदम् । शुक्रम् । मेध्यम् । पावकम् । पावनम् । ह्लादनम् । ह्लादनम् । [पार्वम् ।] अम्भः । [भूरी ।] उदकस्य ॥

४८. ७६. अवनयः । अवनयः ॥ २९ ॥ यह्वयः । खाः । शीराः । स्रोत्याः । एन्यः । धुनयः । रुजानाः । वक्षणाः । खादो अर्णाः । रोधचक्राः । हरितः । योषितः । स्वसृतः । अर्णवाः । सिन्धवः । कुल्याः । वहाः । उर्व्यः । इरावत्यः । पार्वत्यः । ओजस्वत्यः । सरस्वत्यः । हरस्वत्यः । अजिराः । मातरः । नदीनाम् ॥ [मधुः । वथः ।]

७७. काटः । काटः । खातः । अवतः । अवटः । क्रिविः । सूदः । उत्सः । ऋश्यदः । कारोतरः । कुशयः । केवटः । [त्रपुः] कूपस्य ॥

७८. नराः । नराः ॥ ३० ॥ जन्तवः । विशः । क्षितयः । कृष्टयः । चर्षणयः । नहुषः । अरयः । अर्याः । मर्याः । मर्ताः । व्राताः । पूर्वाः । तुर्वशाः । द्रुह्यवः । आयवः । यदवः । अनवः । पूरवः । जगतः । तस्थुषः । पञ्चजनाः । विवस्वन्तः । मानवाः । मनुष्याणाम् ॥

४८. ७९. निर्णिक् । निर्णिक् ॥ ३१ ॥ वव्रिः । वर्पः । वपुः । अमतिः । अप्सः । रप्सु । पिष्टम् । शष्यम् । कृशनम् । पेशः । मरुत् । रूपस्य ॥

८०. जठरम् ॥ ३२ ॥ जठरम् । [परीसानम् । जगृतम् । गर्द-नम् ।] कुदरम् । उदरम् । [दर्दुरम् ।] उदरस्य ॥

८१. आयती । आयती । च्यवाना । अभीशू । अप्नवाना । विनङ्गृसौ । गभस्ती । बाहू । भुरिजौ । शक्वरी । भरित्रे । बाह्वोः ॥

८२. अग्रुवः । अग्रुवः ॥३३॥ अण्व्यः । त्रिशः । शर्याः । रशनाः । धीतयः । अथर्यः । विपः । कक्ष्याः । हरितः । स्वसारः । जामयः । योक्त्राणि । योजनानि । धुरः । शाखाः । अभी-शवः । दीधितयः । अङ्गुलीनाम् ॥ ३४ ॥

८३. [व्रजिः । धुनिः । तर्थाः ।] तक्वा । रिपुः । रिभ्वा । रिक्वा । रिह्वा । तायुः । तस्करः । वनगुः । मलिम्लुचः । अघशंसः । वृकः । स्तेनस्य ॥

८४. धीः । धीः । मेधा । केतुः । चेतः । चित्तम् । क्रतुः । असुः । शची । वयुनम् । माया । बुद्धेः ॥ ३५ ॥

८५. विप्रः । विप्रः । विग्रः । गृत्सः । धीरः । [रेनुः ।] वेनः । मेधाः । कण्वः । ऋभुः । नवेदाः । कविः । मनीषी । मन्धाता । मनश्चित् । आकेनिपासः । उशिजः । कीस्तासः । अद्धातयः । मतयः । मतुथाः । मेधाविनः ॥

८६. मेना । मेना । ग्ना । योषा । नना । अङ्गना । रतयः । स्त्रीणाम् ॥ ३६ ॥

८७. तुक । तुक । तोकम् । तनयम् । तक्म । शेपः । प्रजा । बीजम् । अप्नः । गयः । [ऋप] जाः । यहुः । सूनुः । नपात् । अपत्यस्य ॥ ३७ ॥

४८. ८८. [कङ्कम् ।] अन्धः । [धा] सिनम् । श्रवः । [शवः । शाहः । वनः ।] अन्नम् । वाजः । पयः । पृक्षः । पितुः । सुतम् । क्षु । धासिः । इडा । इषम् । ऊर्जः । रसः । स्वधा । अर्कः । नेमः । ससम् । नमः । वयः । सूनृता । ब्रह्म । कीलालम् । अन्नस्य ॥ ३८ ॥

८९. ······गर्तः । हर्म्यम् । नीरम् । पस्त्यम् । दुरोणम् । दुर्याः । स्वसराणि । अमा । दमः । कृत्तिः । योनिः । वर्म । शर्म । शरणम् । वरूथम् । क्षया । छन्दः । छदिः । छर्दिः । छाया । वेश्म । अज्मः । कुलायम् । तकः । गृहस्य ॥ ३९ ॥

९१. मघम् । मघम् । रेक्णः । रिक्थम् । वेदः । श्वात्रम् । रत्नम् । रयिः । क्षत्रम् । क्षेत्रम् । भगः । मीढम् । द्युम्नम् । इन्द्रियम् । वसु । रायः । राधः । दानः । वृत्रम् । दानम् । वृतम् । वामम् । धनस्य ॥ ४० ॥

९१. हेम । हेम । चन्द्रम् । रुक्मम् । अरः । पेशः । कृशनम् । लोहम् । कनकम् । काञ्चनम् । हरितम् । भर्गः । अमृतम् । मरुत् । दत्रम् । जातरूपम् । हिरण्यम् । सुवर्णस्य ॥ ४१ ॥

९२. अघ्न्या । अघ्न्या । उस्रा । उस्रिया । स्त्री । मही । अदितिः । इडा । निर्ऋतिः । गोः ॥ ४२ ॥

९३. अत्यः । अत्यः । हयः । अर्वा । वाजी । सप्तिः । वह्निः । दधिक्राः । दधिक्रावा । एतग्वः । एतशः । पैद्वः । दौर्गहः । उच्चैःश्रवसः । तार्क्ष्यः । आशुः । ब्रध्नः । अरुषः । मांश्चत्वः । अव्यथयः । श्येनासः । सुपर्णाः । नराः । वार्याणाम् । हंसासः । अश्वानाम् ॥ ४३ ॥

९४. रोहितः । रोहितोऽग्नेः । नियुतो वायोः । हरी इन्द्रस्य । विश्वरूपा बृहस्पतेः । पृषत्यो मरुताम् । रासभावश्विनोः ।

अरुण्यो गात्र उषसाम् । हरय आदित्यस्य । हरितः सूर्यस्य । श्यावाः सवितुः । अजाः पूष्णः ॥ ४४ ॥

४८.९५. अध्वरः । अध्वरः । वेषः । वेदः । [वेपः । भायी ।] विदथः । सवनम् । होत्रा । इष्टिः । देवताता । मखः । विष्णुः । इन्दुः । प्रजापतिः । घर्मः । क्रतुः । कर्म । यज्ञस्य ॥

९६. भरताः । भरताः ॥ ४५ ॥ कुरवः । वाघतः । वृक्तबर्हिषः । सबाधः । यतस्रुचः । वृक्तः । मरुतः ॥ ४६ ॥ देवयवः । ऋत्विजः ॥

९७. रेभः । रेभः । जरिता । कारुः । कीरिः । सूरिः । नदः । नादः । छन्दस्यः । [क्वोसनः ।] रुद्रः । कृपण्युः । स्तामुः । स्तोतुः ॥ ४७ ॥

९८. अम्बरम् । अम्बरम् । वियत् । व्योम । बर्हिः । स्वः । आकाशम् । आयः । पृथिवी । भूः । स्वयंभूः । अध्वा । ब्रध्नः । [पीरिठम् । पीठम् ।] सगरः । सलिलम् । समुद्रः । अन्तरिक्षस्य । पराणि तदायतनानाम् ॥ ४८ ॥

९९. आताः । आताः । आशाः । आष्ठाः । उपराः । काष्ठाः । व्योम । ककुभः । दिशाम् ॥ ४९ ॥

१००. सख्रिः । सख्रिः । अलातृणः । क्वणन् । कुणारुः । दानवः । उदधिः । [सिरिः ।] वृत्रः । पर्वतः । चमसः । अहिः । अभ्रम् । वलाहकः । दृतिः । ओदनः । वृषन्धिः । वृत्रः । कोशः । असुरः । मेघस्य ॥ ५० ॥

१०१. अद्रिः । अद्रिः । ग्रावा । गोत्रः । वलः । अश्नः । पुरुभोजाः । वलिशानः । अश्मा । गिरिः । व्रजः । चरुः । वराहः । शम्बरः । रौहिणः । रैवतः । परिघः । [पाणिघः ।] उपरः । उपलः । सानौ । रुद्रः । पर्वतस्य ॥ ५१ ॥

४८.१०२.गौः । गौः । गौरी । गान्धर्वी । गभीरा । गम्भीरा । मन्द्रा । मन्द्राजनी । [वाणीः] । वाशी । वाणी । वाणीची । वाणः । पविः । भारती । धमनिः । मेडिः । सूर्या । सरस्वती । निवित् । स्वाहा । वग्नुः । उपब्दिः । काकुः । मायुः । जिह्वा । घोषः । श्लोकः । शब्दः । स्वरः । स्वनः । ऋक् । होत्रा । गीः । गाथा । गणः । धेना । ग्नाः । विपा । नना । कशा । धिषणा । नौः । अक्षरम् । मही । अदितिः । शचीः । त्सर्धीः । अनुष्टुप् । [शब्दः ।] रसः । [वसा । मधु । कशा ।] विराट् वाचः ॥ ५२ ॥

१०३. ओजः । ओजः । पाजः । शवः । शर्धः । त्वक्षः । बाधः । नृम्णम् । तरः । तविषी । शुष्मम् । शुष्णम् । दक्षः । वीडु [तु] । च्यौत्नम् । द्युम्नम् । इन्द्रियम् । सहः । वयः । वधः । वर्गः । मज्मना । पौंस्यानि । धर्णसि । स्यन्द्रासः । द्रविणम् । बलस्य ॥ ५३ ॥

१०४. विद्युत् । विद्युत् । नेमिः । पविः । वज्रः । सृकः । [यतः ।] वधः । अर्कः । शम्बः । कुलिशः । कुत्सः । सायकः । त्रपुपी । वज्रस्य ॥ ५४ ॥

१०५. रणः । रणः । विवाक् । नदनुः । विखादः । भरे । क्रन्दः । आहावः । समनीके । ममसत्यम् । नेमधितिः । सङ्का । समनम् । स्पृधः । पृत्सु । समत्सु । समरणे । समोहे । संख्ये । वृत्रतूर्ये । समर्ये । आणौ । प्रतरणे । [मंतसा] समनीके । [खाय । सेने ।] खले । खजे । पौंस्ये । महाधने । पृतना । ज्येष्ठः । संग्रामस्य ॥ ५५ ॥

१०६. [खरे । स्वारम् । सुष्टि ।] नु । नु । मक्षु । द्रवत् । ओपम् । जीराः । जूर्णिः । शूर्ताः । शूघनाः । शीभम् । तृपु । तूयम् । तूर्णिः । अजिरम् । भूरण्युः । आशु । प्राशु । तूतुजानः ।

तूतुजिः । तुज्यमानासः । अज्राः । साचीवित् । द्युगत् । ताजत् । तरणिः । वातरंहा । क्षिप्रस्य ॥ ५६ ॥

४८.१०७. निण्यम् । निण्यम् । अपीच्यम् । सस्वः । हिरुक् । [तत्र । तत्तन्त । तायतम् ।] अन्तर्हितस्य ॥

१०८. स्वः । स्वः । पृश्निः । नाकः । गौः । विष्टप् । इष्टम् । नभः । दिवः । अन्तरिक्षस्य च । पराणि तदायतनानाम् ॥ ५७ ॥

१०९. [हिरुक् । हिरुक् ।] आके । पराचैः । आरे । परावतः । इति दूरस्य ॥ ५८ ॥

११०. विभावरी । विभावरि । सूनरी । [भावती । सुनरी ।] भास्वती । ऊर्जस्वती । चित्रामघा । अर्जुनी । वाजिनी । वाजिनीवती । सुम्नावरी । अहना । द्योतना । श्वेत्या । अरुषी । सूनृतावरी । उषसः ॥ ५९ ॥

१११. वस्तोः । वस्तोः । भानुः । वासरम् । स्वसराणि । घ्रंसः । घर्मः । घृणिः । दिवा । दिनम् । दिवे-दिवे । द्यवि-द्यवि । अह्नः ॥ ६० ॥

११२. दीधितयः । गभस्तयः । वनम् । उस्राः । वसवः । मरीचयः । सप्त ऋषयः । साध्यासः । सुपर्णासः । मयूखाः । रश्मीनाम् ॥ ६१ ॥

११३. खेदयः । खेदयः । किरणाः । गावः । अभीशवः । [रश्मीन् ।] रश्मीनां च ॥ ६२ ॥

११४. आर्यः । आर्यः । राष्ट्री । नियुत्वान् । इनः । ईश्वरस्य ॥ ६३ ॥

११५. संयोगः । संयोगः । आशुशुक्षणिः । जहा । शिताम । मेहना । मूषः । मन्दू । इर्मान्तासः । [वाजरान्ध्यम् ।] कायमानः । विद्रधे । तुग्वनि । नोधात् । नदः । च्यवनः । कश्यपः । नूचित् । अकूपारस्य । अग्रायुवः । रजः । जुहुरे । क्राणा । विषुणः । जामिः । जसुरिः । चयसे । अन्धः । दुग्धम् ।

आहनः। नदः। अर्कः। सचा। चित्। पवित्रम्। पृथुज्रयाः। काणुका। अध्रिगुः। आङ्गूषः। आपान्तमन्युः। श्मशा। वाजगन्ध्यम्। [जराध्य।] पाकस्थामा कौरयाणः। व्रन्दी। निषपी। क्षुम्पम्। निचुम्पुणः। [मजायेम। धूरुः।] जोषवाकम्। कुटस्य। केपयः। सलल्लूकम्। अस्कृधोयुः। निश्रृम्भाः। [ध्रुवद्रक्षं।] उपलप्रक्षिणी। उपसि। सर्वीमनि। विदथानि। श्रायन्त इव। अमूरः। विजामातुः। अमवान्। अमीवा। अमतिः रिशादसः। आनुषक्। गिर्वणाः। अम्यक्। यादृश्मिन्। शुरुधः। अप्रतिष्कुतः। द्विबर्हाः। उराणः। जवारु। ततनुष्टिम्। इलीबिशः। [इराविणः।] कियेधाः। तुरीपम्। प्रतद्वसू। दिविष्टिषु। दूतः। ऋचीषमः। अनर्शरातिम्॥ ६४॥ अनर्वा। [अनर्वा। चाण्डा। वाल्हा।] जढवः। बकुरः। [वक्तारः।] बेकनाटान्। अभिधेतन। सदान्वे। पराशरः। करूडती। दनः॥

४८.११६. इक्षुणा। कीलालम्। विजाम्नि। दोषा। [अष्टमर्त्यः] ॥ ६५॥ ज्येष्ठम्। [ज्येष्ठम्। असिपक्व।] विश्वाहा। विवस्वान्। वाते। [तन्यन्तः। त्रालम। काम्पीवकंसम्। जस्यत्यम्। जलाली।] अन्धः। विपश्यन्। अया विष्ठा। [आंसा। रन्तु। तमायीवयः।] शमोप्यात्। गुल्फः। बिष्कले। खर्गला। प्रतोदः। वेदः। [यत्रास्मन्नतः। रध्रः। चिक्रिः। नुलुः।] पुच्छधौ। [सुनिः।] अपाष्ठः। मेदी। [ज्येना।] मर्यः। [सप्तघ्नेतः।] वालिनि। यातारम्। [रुषंकिः। सिक्तः।] सगणाः। [मुडिम्नाना। लिङ्गकाः। नादिना।] मल्वः। अम्नः। [जुगुः।] नीलागलसाला। ऐलबः। [दरिद्रः।] नीललोहितः। श्वापदः। कुनखी। कुरीरम्। [उपसः।] तादुरि। कमथ। रुमथा। सर्व-

तेंभ्यः । इदं । अध्वर्युः । द्युम्नी । कुवितः । दम्नना ।] दुरोणे । [परेक्तौति ।] तितौ । [उत्पवाधत ।] किमीदी । वामस्य । एकचक्रम् । अमतिः । सुमतिः । [दयते । दयन्ति । व्रीहि । वृत्ते ॥ ६ ॥ ईडे । ईडे । क्षयति । तपति । रजति । अनेकार्थाः ॥

४८.११७. प्रयित्वे । अभीके । आप्तस्य ॥

११८. तिरः । सतः । अप्राप्तस्य ॥

११९. त्वः । नेमः । अर्धस्य ॥

१२०. ऋक्षाः । स्तृभिः । इति नक्षत्राणाम् ॥

१२१. वम्रीभिः । उपजिह्विका । सीमिकानाम् ॥

१२२. रम्भः । [रथः ।] पिनाकम् । इति दण्डस्य ॥

१२३. शेपः । वैतसः । इति पुंस्प्रजननस्य ॥

१२४. [परंगतिविलीके] । इति स्त्रीप्रजननस्य ॥

१२५. अनेन । अनया । [पनस्य ॥

१२६. मकि । ह्वकिर्] । इति प्रतिषेधस्य ॥

१२७. वरूथम् । असग्रम्] । चर्मणोऽरुत्साहस्य ॥

१२८. पणिः प्रकलविद्वणिजः ॥

१२९. श्वघ्नी । कितवस्य । अक्षधूर्तस्य ॥

१३०. [मृण्यः] । सीमिकस्य ॥

१३१. कुटस्य । कुलिशः ।

१३२. अग्निः । जातवेदाः । वैश्वानरः । द्रविणोदाः । वनस्पतिरिति सूक्तभाञ्जि ॥

१३३. इध्मः । [विष्णुः ।] तनूनपात । नराशंसः । देवीर्द्वारः । उषासानक्ता । दैव्या होतारा । तिस्रो देवीः । त्वष्टा । वनस्पतिः । स्वाहाकृतय इति निपातभाञ्जि ॥

४८.१३४.इन्द्रः । विष्णुः । सोमः । पर्जन्यः । ऋतुः । अग्नायी । पृथिवी । इडा । भृगवः । अथर्वाण इति संस्तविकास्तस्यैकवद्बहुवत्स्त्रीवच्च ॥

१३५. वहनं च हविषामाहावाहनं च देवानां यच्च दार्ष्टिविषयिकं तदस्य कर्म ॥

१३६. अयं लोकः । वसन्तः । प्रातःसवनम् । गायत्री त्रिवृद्रथंतरमिति तद्भक्तीनि ॥ ६७ ॥

१३७. वायुः । वरुणः । इन्द्रः । रुद्रः । पर्जन्यः । बृहस्पतिः । ब्रह्मणस्पतिः । वास्तोष्पतिः । क्षेत्रस्य पतिः । कः । यमः । अपां नपात् । मित्रः । विश्वकर्मा । मन्युः । तार्क्ष्यः । दधिक्राः । सरस्वान् । अग्निः । असुनीतिः । वाजः । कुतः । वातः । ऋतः । मृत्युः । धाता । विधाता । पुरूरवाः । गन्धर्वाः । अनुड्वान् । प्राणाः । स्तम्भः । व्रात्य इति सूक्तभाञ्जि ॥

१३८. प्रजापतिः । चन्द्रमाः । सोमः । इन्दुः । अदितिः । धेनवः । अहिर्बुध्न्य इति निपातभाञ्जि ॥

१३९. सरस्वती । वाक् । अदितिः । उर्वशी । गौः । धेनुः । सरमा । उषा । इन्द्राणी । पृथिवी । दस्य । गोधुकसा । विराट् । अघ्न्या । सिनीवाली । कुहूः । अनुमतिः । राका । यमी । सरण्यूः । पथ्या । रोदसी । देवपत्न्यः । मरुतः । रुद्राः । ऋभवः । अङ्गिरसः । भृगवः । अथर्वाण इति संस्तविकास्तस्यैकवद्बहुवत्स्त्रीवच्च ॥

१४०. स्नेहानुप्रदानं वृत्रवधो या च का च बलकृतिस्तदस्य कर्म ॥

१४१. अन्तरिक्षलोकः । ग्रीष्मः । मध्यंदिनं सवनम् । त्रिष्टुप्पञ्चदशः । बृहदिति तद्भक्तीनि ॥ ६८ ॥

४८.१४२. आदित्यः । सविता । भगः । सूर्यः । पूषा । विष्णुः । केशी । विश्वानरः । वृषाकपिः । कालः । ब्रह्मचारी । रोहित इति । सूक्तभाञ्जि ॥

१४३. दध्यङ् । अथर्वा । यमः । अज एकपात् । मनुः । विवस्वान् । दक्षः । अर्यमा । वैश्वानरः । सुपर्ण इति निपातभाञ्जि ॥

१४४. उषाः । सूर्या । वृषाकपायी । साध्याः । वसवः । आदित्याः । सप्त ऋषयः । वाजिनः । विश्वे देवा इति संस्तविकास्तस्यैकद्बहुवत्स्त्रीवच्च ॥

१४५. रसादानं रश्मिभिश्च रसाधारणं यच्च प्रवाल्हितं तदस्य कर्म ॥

१४६. असौलोकः । वर्षास् । तृतीयसवनम् । जगती । सप्तदशः । वैरूपमिति तद्भक्तीनि ॥

१४७. एतेषामेव लोकानामृतुछन्दःस्तोमपृष्ठानामानुपूर्वेण भक्तिशेषोऽनुकल्पो

१४८. देवताद्वन्द्वे च पूर्वस्यापरः संस्तविकः ॥

पूर्वस्यापरः संस्तविकः ॥ ६९ ॥

इति कौत्सव्यनिरुक्तनिघण्टुः समाप्तः ॥

परिशिष्टम् ॥ ४८ ॥ समाप्तम् ॥

४९. चरणव्यूहः

१. १–४. वेद, उनके उपवेद, उनके देवता, तथा उनके ऋषिकुल।
१. ५–७. ऋग्वेद।
२. १–६. यजुर्वेद।
३. १–६. सामवेद।
४. १–५.११. अथर्ववेद।
५. १२. इस ज्ञान का फल।

चरणव्यूहः

४९.१.१. ॐ अथातश्चरणव्यूहं व्याख्यास्यामः ॥

२. तत्र चत्वारो वेदा भवन्ति। ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदश्चेति ॥

३. तत्र ऋग्वेदस्यार्थशास्त्रमुपवेदः। यजुर्वेदस्य धनुर्वेदोपवेदः। सामवेदस्य गान्धर्ववेदोपवेदः। ब्रह्मवेदस्यायुर्वेदोपवेदः। अभिचारकार्थशास्त्रमित्युच्यते।

४. ऋग्वेद आत्रेयसगोत्रोऽग्निर्देवता। यजुर्वेदः काश्यपसगोत्रो वायुर्देवता। सामवेदो भारद्वाजसगोत्रो विष्णुर्देवता। ब्रह्मवेदो वैतायनसगोत्रो ब्रह्मा देवता ॥

१५. अथातः ऋग्वेदः पीतवर्णः पद्मपत्राक्षः सुविभक्तग्रीवः कुञ्चितकेशश्मश्रुः सुप्रतिष्ठितजानुसङ्घः। प्रमाणेन स वितस्तयः पञ्च ॥

६. तत्र ऋग्वेदस्य सप्त शाखा भवन्ति। तद्यथा। अश्वलायनाः। शाङ्खायनाः। साध्यायनाः। शाकलाः। बाष्कलाः। औदुम्बराः। माण्डूकाश्चेति ॥

७. तेषामध्ययनम्।

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च एतत्पारणमुच्यते ॥ १ ॥

४९.२.१. तत्र यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिर्भेदा भवन्ति ॥ तद्यथा ॥ काण्वाः । माध्यंदिनाः । जाबालाः । शापेयाः । श्वेताः । श्वेततराः । ताम्रायणीयाः । पौर्णवत्साः । आवटिकाः । परमावटिकाः । हौष्याः । धौष्याः । खाडिकाः । आह्वरकाः । चरकाः । मैत्राः । मैत्रायणीयाः । हारितकर्णाः । शालायनीयाः । मर्चकठाः । प्राच्यकठाः । कपिष्ठलकठाः । उपलाः । तैत्तिरीयाश्चेति ॥

२. तेषामध्ययनम् ।
द्वे सहस्रे शते न्यूने वेदे वाजसनेयके ।
सकलं परिसंख्यातं ब्राह्मणं तु चतुर्गुणम् ॥

३. अष्टादश शतानि भवन्ति । तान्येव त्रिगुणमधीत्य क्रमपारो भवति । सप्तसु वीराश्चेति ॥

४. शाखास्तिस्रो भवन्ति । तद्यथा । वार्चिकमर्धाध्ययनीयाः । पारश्चर्याः । पारश्रमणीयाः । पारक्रमव्रतः । क्रमपारश्चेति ॥

५. षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्भवति ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि ॥

६. अथ यजुर्वेदः प्रांशुः प्रलम्बजठरः स्थूलगलकपालो रक्तो वर्णेन प्रादेशाः षड्दीर्घत्वेन यजुर्वेदस्यैतद्रूपं भवति ॥ २ ॥

३. १. तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीदनध्यायेष्वधीयानाः सर्वे ते शक्रेण विनिहताः । [प्रविलीनाः]

२. तत्र केचिदवशिष्टाः प्रचरन्ति । तद्यथा । राणायणीयाः । साद्यमुग्राः । कालपाः । महाकालपाः । कौथुमाः । लाङ्गलिकाश्चेति ॥

३. कौथुमानां षड्भेदा भवन्ति । तद्यथा । सारायणीयाः । वातरायणीयाः । वैतधृताः । प्राचीनास्तेजसाः । अनिष्टकाश्चेति ॥

४९.३.४. तेषामध्ययनम् ।
अष्टौसामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।
सोह्यानि सरहस्यानि एतत्सामगणं स्मृतम् ॥

५. अथ सामवेदः सुवर्चाः सुगन्धिस्तेजस्वी मृदुवक्ता ब्रह्मण्यः प्रलम्बबाहुर्दुश्चर्मी कृष्णो वर्णेन कातरः स्वरेणेति ॥

६. षडरत्निः प्रमाणेन च स्मृतः। स्तुवन्त्य् ऋषयो ब्रह्मा सामानि तिष्ठति संनिधौ सभगवान्सामवेदो महेश्वरभक्तः॥३॥

४. १. तत्र ब्रह्मवेदस्य नव भेदा भवन्ति । तद्यथा । पैप्पलादाः । स्तौदाः । मौदाः । शौनकीयाः । जाजलाः । जलदाः । ब्रह्मवदाः । देवदर्शाः । चारणवैद्याश्चेति ॥

२. तेषामध्ययनम् ।
ऋचां द्वादश सहस्राण्यशीतिस्त्रिशतानि च ।
पर्यायिकं द्विसहस्राण्यन्यांश्चैवार्चिकान्बहूनित्य्

३. एतद्ग्राम्यारण्यकानि षट्सहस्राणि भवन्ति ॥

४. तत्र ब्रह्मवेदस्याष्टाविंशतिरुपनिषदो भवन्ति । मुण्डका प्रश्नका ब्रह्मविद्या क्षुरिका चूलिका अथर्वशिरो अथर्वशिखा गर्भोपनिषन्महोपनिषद्ब्रह्मोपनिषत्प्राणाग्निहोत्रं माण्डूक्यं नादबिन्दु ब्रह्मबिन्दु अमृतबिन्दु ध्यानबिन्दु तेजोबिन्दु योगशिखा योगतत्त्वं नीलरुद्रः पञ्चतापिनी एकदण्डी संन्यासविधिः अरुणिः हंसः परमहंसः नारायणोपनिषद्वैतथ्यञ्चेति ॥

५. तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत्तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति ॥

६. तत्र षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्भवति षडङ्गानि भवन्ति शिक्षा कल्पो॑व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ॥

४९.४.७. पञ्च कल्पा भवन्ति ।
नक्षत्रकल्पो वैतानकल्पस्तृतीयः संहिताविधिः ।
चतुर्थ आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः ॥

८. लक्षणग्रन्था भवन्ति । चतुराध्यायिका प्रातिशाख्यं पञ्चपटलिका दन्त्योष्ठविधिर्बृहत्सर्वानुक्रमणी चेति ॥

९. तत्र द्वासप्ततिः परिशिष्टाणि भवन्ति कौशिकोक्तानि । कृत्तिकारोहिणी । राष्ट्रसंवर्गः । राजप्रथमाभिषेकः । पुरोहितकर्माणि । पुण्याभिषेकः । पिष्टरात्र्याः कल्पः । आरात्रिकम् । घृतावेक्षणम् । तिलधेनुः । भूमिदानम् । तुलापुरुषः । आदित्यमण्डकः । हिरण्यगर्भः । हस्तिरथः । अश्वरथः । गोसहस्रदानम् । हस्तिदीक्षा । अश्वदीक्षा । वृषोत्सर्गः । इन्द्रोत्सवः । ब्रह्मयागः । स्कन्दयागः । संभारलक्षणम् । अरणिलक्षणम् । यज्ञपात्रलक्षणम् । वेदिलक्षणम् । कुण्डलक्षणम् । समिल्लक्षणम् । स्रुवलक्षणम् । हस्तलक्षणम् । ज्वालालक्षणम् । लक्षहोमः । काङ्कायनोक्त बृहल्लक्षहोमः । कोटिहोमः । गणमाला । घृतकम्बलम् । अनुलोमकल्पः । आसुरीकल्पः । उच्छुष्मकल्पः । समुच्चयप्रायश्चित्तानि । ब्रह्मकूर्चविधिः । पैठीनसितडागविधिः । पाशुपतव्रतविधिः । संध्योपासनविधिः । स्नानविधिः । तर्पणविधिः । श्राद्धविधिः । अग्निहोत्रविधिः । उत्तमपटलम् । वर्णपटलम् । निघण्टुः । चरणव्यूहः । चन्द्रप्रातिपदिकम् । ग्रहयुद्धम् । ग्रहसंग्रहः । राहुचारः । केतुचारः । ऋतुकेतुलक्षणम् । कूर्मविभागः । मण्डलानि । दिग्दाहलक्षणम् । उल्कालक्षणम् । विद्युल्लक्षणम् । निर्घातलक्षणम् । परिवेषलक्षणम् । भूमिकम्पलक्षणम् । नक्षत्रग्रहोत्पातलक्षणम् । उत्पातलक्षणम् । सद्योवृष्टिलक्षणम् । गोशान्तिः । अद्भुतशान्तिः । स्वप्नाध्यायः । अथर्वहृदयम् ।

भार्गवीयगार्ग्यबार्हस्पत्यौशनसाद्भुतानि । महाद्भुतानि । बृहत्सर्वानुक्रमणी चेति ॥

४९.४.१०. तत्र पञ्चदशोपनिषदो भवन्ति । मुण्डका । प्रश्नका । ब्रह्मविद्या । क्षुरिका । चूलिका । अथर्वशिरः । अथर्वशिखा । गर्भोपनिषत् । महोपनिषत् । ब्रह्मोपनिषत् । प्राणाग्निहोत्रम् । माण्डूक्यम् । वैतथ्यम् । अद्वैतम् । अलातशान्तिश्चेति ॥

११. तत्र ब्रह्मवेदेऽष्टादश व्रतानि चरिष्यन्सावित्रीव्रतम् । वेदव्रतम् । वेदोत्तरव्रतम् । मैलव्रतम् । मैलोत्तरव्रतम् । मृगारव्रतम् । रोहितव्रतम् । विषासहिव्रतम् । यमव्रतम् । शान्तिव्रतम् । शिखिव्रतम् । गणव्रतम् । शिरोव्रतम् । शिखाव्रतम् । मरुद्व्रतम् । अधिव्रतम् । अङ्गिरोव्रतम् । पाशुपतव्रतं चरेत् ॥

१२. कृच्छ्रम् । तप्तकृच्छ्रम् । अतिकृच्छ्रम् । सर्वकृच्छ्रम् । मौन्दभायः । तुलापुरुषः । सांतपनम् । महासांतपनं चेति ॥

५. १. यो वै ब्रह्मवेदेषूपनीतः स सर्ववेदेषूपनितो

२. यो वै ब्रह्मवेदेष्वनुपनीतः स सर्ववेदेष्वनुपनीतः ॥

३. अन्य वेदे द्विजो यो ब्रह्मवेदमधीतुकामः स पुनरुपनेयो

४. देवाश्च ऋषयश्च ब्रह्माणमूचुः ॥

५. को नो स्मो ज्येष्ठः । क उपनेता । क आचार्यः । को ब्रह्मत्वं चेति ॥

६. तान्ब्रह्माब्रवीत् ॥

७. अथर्वा वो ज्येष्ठोऽथर्वोपनेताथर्वाचार्योऽथर्वा ब्रह्मत्वं चेति ॥

८. तदप्येतदृचोक्तम् । ब्रह्मज्येष्ठेत्येतया ।

९. इति तस्यार्हं ब्रह्मवेदश्चतुर्णां वेदानां साङ्गोपाङ्गानां तं सवाकोवाक्यानां सेतिहासपुराणानाम् ॥

१०. अथातो ब्रह्मवेदः कपिलो वर्णेन तीक्ष्णः प्रचण्डः कामरूपी विश्वात्मा जितेन्द्रियः । स तस्मिन्भगवति दुर्वारज्वालः ।

४९.५.११.क्षुद्रकर्मा स च भगवान्ब्रह्मवेदश्चतुर्मुखो द्विपक्षो दान्तो धर्मी बलवान्प्राज्ञः कृतोत्थापनीयः क्रूरः षड्रात्राणि विमृशी षड्रात्राणिषडवैतायनो गोत्रेण

१२. य एकैकस्मिन्वेदानां नामवर्णगोत्ररूपप्रमाणं च कीर्तयेद्यो विद्वान् जातिस्मरो भवति मृतः स ब्रह्मलोकं गच्छति । मृतः स ब्रह्मलोकं गच्छति ।

मृतः स ब्रह्मलोकं गच्छतीति ॥ ५ ॥

इति चरणव्यूहः समाप्तः ॥ ४९ ॥

५०. चन्द्रप्रातिपदिकम्

१. १–२. शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा के दिखाई पड़ने पर कुछ ध्यानार्ह बातें।

१. ३–२. ३. चन्द्रमा के उत्तरोन्नत और दक्षिणोन्नत दशाओं में से प्रत्येक में प्रभावित होनेवाले लोग।

२. ३–६. चन्द्रमा के पुरुष-लक्षण होने पर उससे प्रभावित होनेवाले लोग।

३. १–४. ४. चन्द्रमा की असाधारण गतियाँ और रूप।

४. ५–२. ४. क्रोष्टुकि द्वारा उपदेशित चन्द्रमा की आठ स्थितियाँ।

५. ४–६. चन्द्रमा के वर्ण का महत्त्व।

६. १–१. ७. अन्य फल।

७. २–९. ६. सूर्य में देखे जानेवाले फल।

चन्द्रप्रातिपदिकम्

५०.१.१. ॐ वृत्तां प्रातरमावास्यां पश्चाद्दृश्येत चन्द्रमाः।
तस्य वर्णं गतिं रूपं स्थानं चैवोच्चनीचताम् ॥

२. ह्रासवृद्धिं च शृङ्गाणां नक्षत्रं यच्च योजयेत्।
तानि लक्षेत सोमस्य वर्षावर्षं भयाभयम् ॥

३. प्रथमे दर्शने त्विन्दोः समासाद्य यदा ग्रहम्।
उत्तरं वर्धते शृंङ्गं नीचीभवति दक्षिणम् ॥

४. एवमेव श्रविष्ठाभ्यस्तेषामन्ते च चन्द्रमाः।
उद्यच्छेद्दक्षिणं शृङ्गं नीचीभवतिचोत्तरम् ॥

५. अनुपश्येत राष्ट्रं च अन्तर्गिरिमहागिरिम्।
विदर्भान्मद्रकांश्चैव कौशिकान्द्रविडांस्तथा ॥

६. अन्ध्रांश्चैव शकांश्चैव भरतांश्चापि सर्वतः ॥ १ ॥

२. १. साराणां विजराणां च समुद्रे ये च दक्षिणे।
एताञ्जनपदान्हन्ति यदा स्यादुत्तरोन्नतः ॥

५०.२.२. काश्मीरान्दरदान्दर्वाञ्छूरसेनान्ययावरान् ।
शाल्वानां च विराजानां समुद्रे ये च पश्चिमे ॥
३. एताञ्जनपदान्हन्ति यदा स्याद्दक्षिणोन्नतः ।
पुरुषः स्त्री नृपं हन्ति अपरान्तो विनश्यति ॥
४. बाह्लिकान्यवनकाम्बोजाञ्छाल्वान्मद्रानुशीनरान् ।
गोधांश्च भद्रकांश्चैव मध्यं च कुरुभिः सह ॥
५. सौराष्ट्रान्सिन्धुसौवीरान्वानेयांश्चापि सिंसकान् ।
क्षुद्रकान्मालवान्मत्स्यान्म्लेच्छान्सह पुलिन्दकैः ॥
६. शस्त्रोपजीविकुड्यांश्च ब्राह्मणा योधिनश्च ये ।
एतांञ्जनपदान्हन्ति सोमः पुरुषलक्षणः ॥ २ ॥
३. १. लक्षणाद्वा भवेत्स्थूलः काये शृङ्गे च हीयते ।
अल्पे शरीरे दुर्भिक्षं भयं रोगं विनिर्दिशेत् ॥
२. यदा प्रातिपदश्चन्द्रः प्रकृत्या विकृतो भवेत् ।
अनुद्भिन्नो विलूनो वा राजमृत्युं विनिर्दिशेत् ॥
३. षष्ठ्यां मध्यं यदा गच्छेद्राजा वध्येत पार्थिवः ।
अवन्तीनां च पूर्वार्धे मागधाश्च विशेषतः ॥
४. परं कुमारेष्वष्टम्यां राजानं दशमी परम् ।
एवं च पक्षापचये मध्ये दृश्येत द्वादशी ॥
५. हन्ति पञ्चनदं तत्र राजानं सुमहद्बलम् ।
सर्वांश्च कुर्याद्राज्ञस्तु तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ ३ ॥
४. १. अद्भुतानि च दृश्यन्ते तस्मिन्नुत्पातदर्शने ।
वैश्वानरपथं प्राप्तः समुद्रमपि शोषयेत् ॥
२. कृत्तिकानां मघानां च रोहिण्याश्च विशाखयोः ।
एतेषामुत्तरो मार्गो राजवीथीति तां विदुः ॥
३. यदीमं मार्गमास्थाय चन्द्रमा विनिवर्तते ।
नावर्षा उत्तमा ज्ञेया योगक्षेमं तथैव च ॥

५०.४.४. गजवीथीं नागवीथीं यदि गच्छति चन्द्रमाः ।
... ...
गोवीथीतितदाप्याहुर्गर्गस्य वचनं यथा ॥
५. अष्टौ स्थानानि चन्द्रस्य, क्रोष्टुकिर्यानि वेद वैः
नौस्थायी लाङ्गली चैव तृतीयश्चोत्तरोन्नतः ॥
६. दण्डस्थायी चतुर्थस्तु दण्डशायी तु पञ्चमः ।
षष्ठस्तु यूपस्थायी स्यात्पार्श्वशायी तु सप्तमः ॥
७. अष्टमोऽवाङ्छिराश्चैव फलमस्य निबोधत ।
राजानः स्वेषु राष्ट्रेषु युक्तदण्डाः प्रशासति ॥ ४ ॥

५. १. लाङ्गली ग्रसते लेकान्युगान्तं प्रतिपादयेत् ।
मारीं समधिकामाहुर्यदा स्यादुत्तरोन्नतः ॥
२. दण्डस्थायी त्वमात्यानां भयं रोगं विनिर्दिशेत् ।
शक्तिछेदा ग्रन्थिछेदा गोस्तेनाः पारदारिकाः ॥
३. एते देशान्विलुम्पन्ति दण्डस्थायी यदा भवेत् ।
दण्डशायी तु विप्राणां भयं तत्र विनिर्दिशेत् ॥
४. यूपस्थायी तु धान्यानां भयं तत्र निनिर्दिशेत् ।
हरिते शरीरे सोमस्य पशूनां वधमादिशेत् ॥
५. कृष्णे शरीरे सोमस्य शूद्राणां वधमादिशेत् ।
पीते शरीरे सोमस्य वैश्यानां वधमादिशेत् ॥
६. रक्ते शरीरे सोमस्य राज्ञां तु वधमादिशेत् ।
शुक्ले शरीरे सोमस्य ब्रह्मवृद्धिं विनिर्दिशेत् ॥

६. १. स्निग्धः पीतः सुवर्णाभः पक्षादौ यदि चन्द्रमाः ।
गोस्थायी संप्रदृश्येत विप्रवृद्धिं विनिर्दिशेत् ॥
२. उच्चस्थाने यदा पीतः समशृङ्गः शशी भवेत् ।
नागवीथीगतः स्निग्धः स सर्वगुणपूजितः ॥

५०.६.३. धूम्राभो लाङ्गलस्थायी श्रीमान्सलक्ष्ममण्डलः ।
पक्षादौ यदि दृश्येत ब्रह्मक्षत्रसुखावहः ॥
४. राजवीथीं तु संप्राप्त उग्रदण्डी यदा भवेत् ।
हरिद्राकुङ्कुमाभश्च श्मशानमवलोकयेत् ॥
५. मृत्युं संयोजयेत्सोमो बालाकृतिरवाङ्छिराः ।
लाक्षारुधिरसंकाशो धनुःस्थायी यदा भवेत् ॥ ६ ॥
७. १. संग्रामं योजयेत्सोमो लोके तु तुमुलं भयम् ।
द्विचन्द्रं गगनं दृष्ट्वा ब्रूयाद्ब्रह्मवधो महान् ॥
२. द्वौ सूर्यौ वा यदा स्यातां तदा क्षत्रवधो महान् ।
दृष्ट्वा तु चतुरः सूर्यानुदितान्सर्वतोदिशम् ॥
३. शस्त्रेण जनमारेण तद्युगान्तस्य लक्षणम् ।
आदित्ये पाण्डुरं छत्रं संध्यावेलां यदा भवेत् ॥
४. देशस्य विद्रवं सूर्यो राजमृत्युं विनिर्दिशेत् ।
आदित्यस्य रथः श्वेतः संध्यावेलां यदा भवेत् ॥
५. प्रत्यासन्नं भयं विद्यात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ ७ ॥
८. १. आदित्यः सर्वतश्छिन्नो द्वैधीभूतः प्रदृश्यते ।
देशस्य विद्रवं सूर्यो राजमृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥
९. १. क्षेमं विकुक्षिले ब्रूयात्स्थालीपिठरसंस्थिते ।
संक्षिप्ते क्षीयते लोको दुर्भिक्षं वज्रसंस्थिते ॥
२. दिवा ह्यस्मिन्पतत्युल्का सततं कम्पते मही ।
अपर्वाशनिनिर्घोषाः संध्या च ज्वलनच्छवा ॥
३. नक्षत्रपातस्योत्पत्तिर्धूमस्य रजसोऽपि वा ।
शृङ्गं भवत्यादित्यस्य तृणकाष्ठं च शुष्यति ॥
४. राजानो ह्यशिवास्तत्र चित्रं वर्षति माधवः ।
द्वादशानां तु मासानां मध्ये नश्यति पार्थिवः ॥

५०.९.५. कार्त्तिक्यां शुक्लपक्षस्य बहुलस्य त्रयोदशीम् ।
विद्यात्तु स्वातिसंपातं दिवसानेकविंशतिम् ॥
६. सप्ताहं तु भवेद्गोषु सप्ताहं मृगपक्षिषु ।
मानुषेषु च सप्ताहं ततः श्रेयस्तु कल्पयेत् ॥
ततः श्रेयस्तु कल्पयेदिति ॥ ९ ॥

इति चन्द्रप्रातिपदिकं समाप्तम् ॥ ५० ॥

इति पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५१. ग्रहयुद्धम्

१. १–२. परिचय; गर्ग ने इसकी शिक्षा दी थी ।

१. ३–५. ग्रहों का जन्म स्थान ।

२. १–२. नागरों का और आक्रामकों का प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रहों के नाम ।

२. ३–४. चार प्रकार के ग्रहयुद्धों का वर्णन तथा उनका महत्त्व ।

२. ५–३. १. इस बात का निर्णय कैसे करें कि कोई ग्रह पराजित अथवा विजयी हुआ ।

३. २. चन्द्रमा और ग्रह का सौख्य ।।

३. ३–५. २. निम्नलिखित क्रम के अनुसार ग्रहों के पराजय का महत्त्व-वर्णन : सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि राहु और केतु ।

५. ३–४. किसी भी फल को गर्जन, विद्युत और वर्षा से अथवा होम और दक्षिणा से अवरुद्ध किया जा सकता है ।

५. ५. चार प्रकार के युद्धों के अनुसार फलपूर्ति का समय ।

५. ६. बहुत स्पष्ट नहीं है ।

ग्रहयुद्धम्

५१.१.१. ॐ केचिद्ग्रहा नागरानाश्रयन्ते
केचिद्ग्रहा ज्योतिषि संग्रहे च ।
ग्रहो ग्रहेणैव हतः कथं स्याद्
विज्ञाय तत्त्वं भगवान्ब्रवीतु ॥

२. एवं स पृष्टो मुनिभिर्महात्मा
प्रोवाच गर्गो ग्रहयुद्धतन्त्रम् ।
पराजयं चैव जयं च तेषां
शुभाशुभं चैव जगद्धिताय ॥

३. अर्को जातः कलिङ्गेषु यवनेषु च चन्द्रमाः[1] ।
अङ्गारकस्त्ववन्त्यायां मगधायां बुधस्तथा ॥

५१.१.४. बृहस्पतिः सैन्धवेषु महाराष्ट्रे तु भार्गवः ।
शनैश्चरः सुराष्ट्रायां राहुस्तु गिरिशृङ्गजः ॥
केतुर्मलयके जात इत्येतद्ग्रहजातकम् ॥
५. यस्मिन्देशे तु यो जातः स ग्रहः पीड्यते यदा ।
तं देशं घातितं विद्याद्दुर्भिक्षेण भयेन वा ॥ १ ॥

२. १. दिवाकरश्चैव शनैश्चरस्तथा
बृहस्पतिश्चैव बुधश्च नागराः ।
प्रजापतिः केतुरथापि चन्द्रमास्
तथैव राहूशनसौ च यायिनः ॥
२. यदा ग्रहो नागर एव नागरं
विजेष्यते या व्यथवापि यायिनम् ।
तदा नृपो नागर एव नागरं
विजेष्यते या व्यथवापि यायिनम् ॥
३. आरोहणं च भेदश्च लेखनं सव्यदक्षिणम् ।
रश्मिसंसर्जनं चैव ग्रहयुद्धं चतुर्विधम् ॥
४. प्रसव्ये विग्रहं ब्रूयात्संग्रामं रश्मिसंगमे ।
लेखनेऽमात्यपीडा स्याद्भेदने तु जनक्षयः ॥
५. सर्वेषां नभसि समागमे ग्रहाणाम्
उत्कृष्टो भवति तथैव रश्मिवान्यः ।
स्निग्धत्वं भवति तु यस्य स ग्रहो ग्रहेण
संयुक्तो भवति तु यः पराजयेत शेषः ॥ २ ॥

३. १. श्यामो वा व्यपगतरश्मिमण्डलो वा
रूक्षो वा व्यपगतरश्मिवान्कृशो वा ।
आक्रान्तो विनिपतितस्ततोऽपसव्यो
विज्ञेयो हत इति स ग्रहो ग्रहेण ॥

५१.३.२. बुधश्च भौमः शनिभार्गवाङ्गिराः
प्रदक्षिणं याति यदा निशाकरम् ।
अनामयत्वं त्रिषु सौख्यमुत्तमं
विपर्यये चापि महाञ्जनक्षयः ॥

३. धनकनकरजतसंचयाश्च सर्वे
शमदममन्त्रपराश्च ये मनुष्याः ।
शकयवनतुखारबाल्हिकाश्च
क्षयमुपयान्ति दिवाकरस्य घाते ॥

४. अथ सोमे हते विद्याद्ध्रुवं राज्ञो विपर्ययः ।
संहरन्ति च भूतानि भूमिपालाः पृथक्पृथक् ॥

५. परस्परं विरुध्यन्ते क्षुद्भयं चापि दारुणम् ।
अनावृष्टिभयं घोरं विद्यात्सोमविपर्यये ॥ ३ ॥

४. १. त्रैगर्ताः क्षितिपतयः सयोधमुख्याः
पीड्यन्ते गिरिनिलयाग्निजीविनश्च ।
संग्रामाः सरुधिरपांसुवर्षमिश्रा
दुर्भिक्षं भवति धरासुतस्य घाते ॥

२. सागरनिलयाः पौराः
क्षयमुपयान्ति नरा वणिक्प्रधानाः ।
भवति तु राजा विजयी प्रयायी
बुधबन्धने प्रपतन्ति चात्र सभ्याः ॥

३. दैवज्ञास्तपसि चिरं सुनिश्चितार्थाः
स्युर्दान्ता नृपतिगणः पुरोहिताश्च ।
आगन्तुजयति वधश्च नागराणां
त्रैलोक्यं च भयमुपैति गुरोस्तु घाते ॥

५१.४.४. यो राजा प्रथितपराक्रमः पृथिव्यां
वङ्गाङ्गादिषु मगधाः सशूरसेनाः ।
ये योधाः समरणभूमिलब्धशब्दास्ते
सैन्यैः क्षयमुपयान्ति शुक्रघाते ॥

५. महिषकवृषभाः सभस्मपौण्ड्राः
कृषिपशुपाल्यरताश्च ये मनुष्याः ।
विविधभयसमाहितास्तु सर्वे
क्षयमुपयान्ति शनैश्चरस्य घाते ॥ ४ ॥

५. १. ये केचिन्नृपतिषु दाम्भिकाः पिशाचाः
कार्याणां व्रतनियमेषुछन्नपापाः ।
ये चान्ये शबरपुलिन्दचेदिगाधा
बाध्यन्ते यदि भवतेऽत्र राहुघातः ॥

२. आक्रान्तं समनुभवन्ति यायिसंघा
वध्यन्ते यदि भवते परस्परोऽहिघातः ।
संग्रामाः सरुधिरपांसुवर्षमिश्रा
दुर्भिक्षं भवति तु केतुपीडनेन ॥

३. यत्किंचिद्दिविगतमन्तरिक्षजं वा
भौमं वा भवति निमित्तमप्रशस्तम् ।
तत्सर्वं स्तनितमहाभ्रविद्युद्वर्षैः
शान्तं स्याद्भवति सदक्षिणैश्च होमैः ॥

४. ये देशा ग्रहगणभिन्नभूमिकम्पा
येषां वा ग्रह उपयातचन्द्रसूर्यः ।
तान्देशान्ग्रहगणभिन्नभूमिकम्पान्
पर्जन्यः शमयति सप्तरात्रवृष्टया ॥

५१.५.५. प्रसव्यस्त्रिषु मासेषु संसर्गो मासिकः स्मृतः ।
लेखने पक्ष इत्याहुर्भेदने सप्तरात्रिकम् ॥

६. आग्नेया वासवाश्चैव वायव्या वारुणास्तथा ।
सर्व एव शुभा ज्ञेया गर्गस्य वचनं यथा ॥
गर्गस्य वचनं यथेति ॥ ५ ॥

इति ग्रहयुद्धं समाप्तम् ॥

इत्येकपञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ ५१ ॥

५२. ग्रहसंग्रहः

१. परिचय । इस परिशिष्ट में पद्मयोनि द्वारा शौनक को दिये गये उपदेश के अनुसार अथर्वा ने ग्रहों के सन्बन्ध में जानने योग्य बातों का संग्रह प्रस्तुत किया है । यद्यपि इसमें 'ग्रह' शब्द को उसके विस्तृततम आशय में ग्रहण किया गया है, तथापि प्रमुख रूप से उन 'ग्रह-पुत्राः' का ही वर्णन है जिन्हें बाद के ज्योतिष-शास्त्र में 'दिव्याः केतवः' कहा गया है ।

२. १–५. १. इन 'केतवाः' में से ९९१ की यहाँ गणना कराई गई है; प्रमाण के लिये गर्ग का अनुसरण किया गया है जिन्होंने 'विदिक्पुत्राः' को जोड़ कर उक्त संख्या को एक सहस्र कर दिया है । प्रस्तुत परिशिष्ट में इन 'विदिक्पुत्राः' का बाद में वर्णन किया गया है ।

५. २–८. ४. उसी विषय का पूर्ववत विवेचन जो यहाँ या तो कम व्यवस्थित अथवा अत्यधिक भ्रष्ट है ।

८. ५–९. ३. विदिक्पुत्राः ।

९. ३–११. ४. 'स्थावराः' अथवा 'कूटस्थानानि' का वर्णन, जिनका चारों दिशाओं तथा ऊर्ध्व दिशा के अनुसार विभाजन करते हुये उनके फलों का भी उल्लेख है ।

११. ४–१२. ३. युगग्रहाः ।

१२. ३–१४. १. 'केतवाः' की एक तीसरी गणना जिसके अनुसार इनकी संख्या केवल १०१ ही रह जायगी । यह सिद्धान्त पराशर में मिलता है । तुकी० बृह० सं० ११० पर भाष्य ।

१४. २–१६. ३. ग्रह फलों की विवेचना ।

१६. ४–५. परिशिष्ट के विषय-स्रोत ।

१६. ६–७. 'महाशान्ति' सम्पन्न करके ग्रहों से उत्पन्न संकटों का प्रतिकार किया जा सकता है ।

ग्रहसंग्रहः

५२.१.१. ॐ अथर्वाणं नमस्कृत्य उवाच भगवान् ऋषिः ।
कीदृशा ग्रहपुत्राश्च कियन्तो वा वदस्व मे ॥
२. पृष्टः स शौनकेनाथ ब्राह्मणानां हिताय वै ।
संख्यामुवाच भगवान्पद्मयोनिमतं यथा ॥

५२.१.३. दिक्चारिणो दिविचरा भूचरा व्योमचारिणः ।
दिवाचरा रात्रिचरा दिवारात्रिचराश्च ये ॥
४. पृथक् चराश्च ये तत्र ये च स्युः संघचारिणः ।
चरन्त्यपरवीथीषु ये च विभ्रान्तमण्डलाः ॥
५. ते ग्रहाः संग्रहेणाहं शतशोऽथ सहस्रशः ।
अनेकविधसंस्थानं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ १ ॥
२. १. गोक्षीरकुमुदप्रख्यास्तीव्रेण वपुषान्विताः ।
चरन्त्यन्तरवीथीषु स्निग्धा विपुलतेजसः ॥
२. एते विसर्पका नाम अर्चिष्मन्तो महाप्रभाः ।
विज्ञेयाश्चतुरशीतिः शुक्रपुत्रा महाग्रहाः ॥
३. शुक्ला निकराः सौराभास्त्यजन्त इव चार्चिषः ।
स्फुरन्त इव चाकाशे बिम्बका रश्मिभिर्वृताः ॥
४. प्रायशो दक्षिणे मार्गे नीचैर्विभ्रान्तमण्डलाः ।
विकचाः पञ्चषष्टिस्ते बृहस्पतिसुताः स्मृताः ॥
५. ये श्वेताः किंचिदाकृष्णा विशिखाः स्युर्वितारकाः ।
ते षष्टिः कनका नाम शनैश्चरसुता ग्रहाः ॥ २ ॥
३. १. एकपञ्चशतो ज्ञेयास्तस्कराः सूक्ष्मरश्मयः ।
बौधाः कमलगर्भाभाः किंचित्पाण्डुरतेजसः ॥
२. कौङ्कुमा लोहिताङ्गस्य पुत्रा विद्रुमतेजसः ।
त्रिशिखा वा त्रिभागा वा षष्टिरित्युत्तरे पथि ॥
३. नानाधूमनिभा रूक्षा धूमव्याकुलरश्मयः ।
शतमेकाधिकं मृत्योः पुत्राः स्युर्धूमकेतवः ॥
४. कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः कलुषाकृतिरश्मयः ।
राहोः पुत्रास्त्रयस्त्रिंशद्ग्रहास्तामसकीलकाः ॥
५. नानावर्णाग्निसंकाशा ज्वालामाला विसर्पिणः ।
विश्वरूपाः सुता अग्नेर्ग्रहा विंशं शतं स्मृतम् ॥ ३ ॥

५२.४.१. अरुणास्तु सुता वायोर्दारुणाः सप्तसप्ततिः ।
वातेरिता भ्रमन्तीव रूक्षा विकीर्णरश्मयः ॥
२. तारापुञ्जप्रतीकाशास्तारामण्डलसंवृताः ।
प्राजापत्या ग्रहास्त्वष्टौ गणका नामनामतः ॥
३. चत्वारस्तारका युक्ताः सूक्ष्माणो रूपरश्मयः ।
ब्रह्मसंतानका नाम द्वे शते चतुरुत्तरे ॥
४. वंशगुल्मप्रतीकाशावंशगुल्मसरश्मयः ।
काकतुण्डनिभाभिश्च रश्मिभिः किंचिदावृताः ॥
५. उदकं चोत्सृजन्तीव स्निग्धत्वात्सौम्यदर्शनाः ।
एते नाम्नाः स्मृताः कङ्कास्त्रिंशद्द्वौ वारुणाग्रहाः ॥ ४ ॥
५. १. मुण्डताराः कबन्धाभा रुक्मकेशाश्च रश्मयः ।
कालपुत्राः कबन्धास्ते स्मृताः षण्णवतिर्ग्रहाः ॥
२. अर्चिष्मांश्च प्रभासश्च रोमशो विषमास्तथा ।
अस्निग्धाश्चातिकायाश्च किंशुको राजसायकः ॥
३. ऋषकैश्चैव राधातः कुमुदः फनको घनः ।
एषामश्वेति विज्ञेया आरास्तु परिसर्पकाः ॥
४. नक्षत्रचारिणो ह्येते भृगुपुत्रा महाबलाः ।
पाण्डुराभिः सुदीर्घाभिः शिखाभिः शीतरश्मयः ॥
५. अतिसंतानकास्त्वन्ये षष्टिर्वायोः सुता ग्रहाः ।
विकेसराः प्रकाशन्ते कृष्णलोहितरश्मयः ॥ ५ ॥
६. १. मिश्रीभूतास्तु ते ज्ञेया गुण्ठिता इव रेणुना ।
धूमकेतोः सुता ज्ञेयाः शतमेकाधिकं च तत् ॥
२. अत्यर्थं कनकास्त्वन्ये प्रतप्तकनकप्रभाः ।
अन्तकपुत्रकाः षष्टिरस्निग्धा मध्यचारिणः ॥
३. ये तु नक्षत्रवंशस्य भागमुत्तरमाश्रिताः ।
एकतारा वपुष्मन्तो महाकायाः प्रभान्विताः ॥

५२.६.४. व्यालकस्य तु ये पुत्राः सप्तषष्टिः समन्ततः ।
नामतोऽधिकचा नाम तत्त्वज्ञैः परिकीर्तिताः ॥
५. संतानकनिभा ये तु दृश्यन्ते सूक्ष्मरश्मयः ।
एकतारा द्वितारा वा अथवा पञ्चतारकाः ॥ ६ ॥
७. १. ब्रह्मराशेस्तु ते पुत्रा ग्रहाः संतानसंस्थिताः ।
संचरन्ति नभः सर्वमुत्पन्ने पुरुषक्षये ॥
२. अणवो लोहितास्त्वन्ये प्रकाशन्तेऽधिकेशकाः ।
पञ्चषष्टिस्तु ते ज्ञेयाः प्रजापत्या ग्रहाः स्मृताः ॥
३. परिवेषेषु जातेषु ग्रहाणां मण्डलेषु च ।
दृश्यन्ते कार्मुका नाम सप्तत्येका समाः स्मृताः ॥
४. अधर्मसंभवास्त्वन्ये चतुर्दश परिक्रमाः ।
अधः शिखाः प्रकाशन्ते विवर्णा घोरतारकाः ॥
५. कर्णछिद्रप्रतीकाशाः कृष्णास्ते तारकाकृतौ ।
कीलका राहुपुत्रास्तु चन्द्रसूर्यतलाश्रयाः ॥ ७ ॥
१. वज्रः कबन्धस्त्रिशिराः शङ्खभेदी शिखावतः ।
दण्डाश्चराहुपुत्राः स्युर्नामभिस्तुल्यवर्चसः ॥
२. यथा सोमार्कयोर्ज्योति मण्डलाभ्याशसेविनः ।
राजन्यत्वात्प्रदृश्यन्ते प्रजानां संक्षयावहाः ॥
३. तत्र मन्दफला ज्ञेयाः शशाङ्कतलसेविनः ।
दिवाकरतलाभ्याशं सेविनो भृशदारुणाः ॥
४. पन्नगास्तुचतुर्त्रिंशत्कृष्णा द्वात्रिंशतिर्ग्रहाः ।
दक्षिणाधासु वीक्ष्यन्ते नीचैर्विभ्रान्तमण्डलाः ॥
५. केवलं तारकाकारा दृश्यन्ते निःप्रभप्रभाः ।
पीतरक्ता ग्रहाः पञ्च पूर्वदक्षिणतः स्मृताः ॥ ८ ॥
९. १. दक्षिणापरतश्चापि पीतरक्तौ ग्रहौ स्मृतौ ।
उत्तरापरतस्त्वेकः पीतरक्तो ग्रहः स्मृतः ॥

५२.९.२. ऐशान्यां श्वेतरक्ताभ एकस्तिष्ठति सूर्यकः ।
यः संधिवेलास्वर्काभो दिक्षु सर्वासु दृश्यते ॥
३. नातिदूरे रवेः स्निग्धः स वर्षायाभयाय च ।
यवक्रीतोषरैभ्याश्च नारदः सर्वतस्तथा ॥
४. कर्णश्च रैभ्यस्य पुत्रौ चार्वावसुपरावसू ।
सप्तैते स्थावरा ज्ञेयाः सह सूर्येण सर्पिणः ॥
५. स्थावराणां नरेन्द्राणां प्राच्यानां पक्षमाश्रिताः ।
स्वस्त्यात्रेयो मृगव्याध ऋमुचुः प्रमृचुस्तथा ॥ ९ ॥
१०. १. प्रभासश्चन्द्रभासश्च तथागस्त्यः प्रतापवान् ।
दृढव्रतास्त्रिशङ्कुश्च अजौ वैश्वानरे मृदः ॥
२. अरुणश्च दनुश्चैव याम्यायां स्थावराः स्मृताः ।
गौतमोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तु कश्यपः ॥
३. ऋचीकपुत्रश्च तथा भरद्वाजश्च वीर्यवान् ।
एते सप्त महात्मान उदीच्यां स्थावराः स्मृताः ॥
४. शिशुमारेण सहिता ध्रुवेण च महात्मना ।
पुलस्त्यः पुलहः सोमो भृगुरङ्गिरसा सह ॥
६. हाहा-हूहू च विज्ञेयौ विष्णोश्च पदमुत्तमम् ।
मध्यान्तस्थावराणां तु नियतावित्ति बुद्धिमान् ॥ १० ॥
११. १. कूटस्थानानि सर्वाणि दिक्ष्वेतान्युपधारयेत् ।
प्रभान्वितानि श्वेतानि स्निग्धानि विमलानि च ।
२. अर्चिष्मन्ति प्रसन्नानि तानि कुर्युः प्रजाहितम् ।
निःप्रभाणि विवर्णानि निरर्चींष्यमलानि च ॥
३. ह्रस्वान्यस्नेहयुक्तानि न भावाय भवन्ति हि ।
यत्किंचित्स्थावरं लोके तत्प्रसन्नेषु वर्धते ॥
४. कूटस्थेष्वप्रसन्नेषु स्थावरं परिहीयते ।
आदित्यश्चैव शुक्रश्च लोहिताङ्गस्तथैव च ॥

५२.११.५.राहुः सोमः शनैश्चरो बृहस्पति बुधौ तथा ।
ऐन्द्र आग्नेयो याम्यश्चनैर्ऋतो वारुणस्तथा ॥ ११ ॥
१२. १. वायव्यश्चैव सौम्यश्च ब्रह्मश्चैवाष्टमो ग्रहः ।
नवमश्चैव विज्ञेयो धूमकेतुर्महाग्रहः ॥
२. युगग्रहा न चान्येते तत्राष्टौ दिग्ग्रहाः स्मृताः ।
सनक्षत्रेषु मार्गेषु दृश्यन्ते तु युगग्रहाः ॥
३. विभ्रान्तमण्डलाः शेया दृश्यन्ते खचरा ग्रहाः ।
मृत्योर्निश्वासजाश्चान्ये ज्ञेयाः षोडश केतवः ॥
४. कूष्माण्डवह्निसंछन्नास्त्रिणवा दक्षिणे पथि ।
एकादशैव विज्ञेया द्वादशादित्य संभवाः ॥
५. सूर्यवर्चनिरीक्षास्ते तेजोधातुमया ग्रहाः ।
दक्ष यज्ञे तु रुद्रस्य क्रोधादन्ये तु निःसृताः ॥ १२ ॥
१३. १. भीमरूपा दशैकश्च ज्वालाङ्कुशधरा ग्रहाः ।
सप्तपैतामहास्त्वन्ये तिर्यग्गा जर्जरग्रहाः ॥
२. शिखाः सृजन्तो विततास्तन्तुशुक्लपटोपमाः ।
श्वेतकेतव इत्यन्ये व्याख्याता दश पञ्च च ॥
३. उद्दालकऋषिपुत्रास्ते नीचैर्विभ्रान्तमण्डलाः ।
ते स्युः श्वेतशिखाः सर्वे सौम्याः कान्तास्तनुप्रभाः ॥
४. अष्टादशेन्दुना सार्धं मथ्यमाने पुरामृते ।
केतवः कुन्दपुष्पाभाः क्षीरोदनभसिः स्मृताः ॥
५. विरश्मयश्च त्रिशिखा महाकाया निरर्चिषः ।
रौप्यकुम्भनिभाः सौम्या ग्रहाः स्युः शीततेजसः ॥ १३ ॥
१४. १. ब्रह्मकोपमयस्त्वेको विश्वात्मा सर्वतो ग्रहः ।
चतुर्युगान्ते लोकानामुदयस्तस्य विद्यते ॥
२. नक्षत्र पथमुत्सृज्य नभोऽंशाः पार्श्वचारिणः ।
पूर्वतोऽभ्युदिता वा स्युर्नीचैरुत्तरतस्तथा ॥

५२.१४.३.भूम्यामभ्युदिता वास्युहस्वस्नेहपरिप्लुताः ।
सर्व एव तु विज्ञेया ग्रहा मन्दफलोदयाः ॥
४. सर्वेषां पैतृकं कर्म प्रजाभाग्योद्भवं महत् ।
सर्वे ते सर्वतो हन्युरशुभं यद्वदन्ति च ॥
५. तत्कर्मजन्ममाहात्म्यं शीलाभिजनमेव च ।
तद्रूपांस्तद्गुणांश्चापि तन्मयांस्तत्परिग्रहान् ॥ १४ ॥
१५. १. सर्व एव रोगप्रदा मृत्युशस्त्राग्नितस्करैः ।
पशुसस्योपघातैश्च हन्युरन्यैश्च कारणैः ॥
२. धूपनात्स्पर्शनात्स्थानादुदयास्तमसंभवात् ।
हन्युः पञ्चविधं सर्वे केतवो नात्र संशयः ॥
३. मृदुध्रुवोग्रक्षिप्रेषु साधारणचरेषु च ।
दारुणेषु च रूक्षेषु विद्यात्तत्सदृशं फलम् ॥
४. यथादिष्टं यथावर्णं यथावर्गपरिग्रहम् ।
सर्व एवोदिता हन्युः सर्व एव महाग्रहाः ॥
५. मृत्योः कालस्य सूर्यस्य ब्रह्मणस्त्र्यम्बकस्य च ।
भौमस्य राहोरग्नेश्च प्रजाता ये सुदारुणाः ॥ १५ ॥
१६. १. प्रजापतेश्च धर्मस्य सोमस्य वरुणस्य च ।
पीताद्याश्च दिशां पुत्रा विज्ञेया मृदुदारुणाः ॥
२. कश्यपस्य च मरीचेरुद्दालकऋषेस्तथा ।
पुत्रा मन्दफला ज्ञेयास्तेषाममृतसंभवाः ॥
३. शुक्रादीनां च ये पुत्रा ग्रहाणां परिकीर्तिताः ।
तेषां वीर्याणि जानीयात् पितृभ्यः साधिकानि तु ॥
४. नारदात्रेयगर्गाणां गुरोरुशनसस्तथा ।
ग्रहाणां संग्रहो ह्येवं एष कार्त्स्न्येन कीर्तितः ॥
५. अनेकशतसाहस्र अनेकशतलक्षणः ।
देवलब्धवराकाशे प्राह सर्वान्पृथक्पृथक् ॥

५२.१६.६.एतदुत्थे तु सर्वस्मिन्भयेऽथसमुपस्थिते ।
महाशान्तिं प्रकुर्वीत राजा राष्ट्रस्य रक्षणे ॥
७. तत्प्रयाति शमं सर्वं प्रजानां तु सुखं भवेत् ।
राजानो मुदितास्तत्र पालयन्ति वसुंधराम् ॥ १६ ॥

इति ग्रहसंग्रहः समाप्तः ॥ ५२ ॥

द्विपञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५३. राहुचारः

१. १. परिचय ।
१. २–२. २. राहु के आगमन की सूचना देने वाले शकुन ।
२. ३–३. ३. दिन में जिस समय ग्रहण लगता है उसके अनुसार उसका महत्त्व ।
३. ४–५. २. ग्रहण के विशेष रूपों का, अथवा सूर्य और चन्द्रमा के क्रमिक ग्रहणों का महत्त्व ।
४. ३–५. ३. ग्रहण के रंगों का महत्त्व ।
५. ४. जिस नक्षत्र में ग्रहण लगता है उसका राजा के लिये महत्त्व ।
६. १–२. ग्रहण के रूप विशेष का महत्त्व ।
६. ३. शकुनों के प्रकट होने पर भी राहु का न प्रकट होना ।
६. ४–५. ग्रहण के समय व्रत, मन्त्रोच्चार और होम का विधान ।
६. ६–७. ग्रहण की आवधिक आवृत्ति ।

राहुचारः

५३.१.१. ॐ उपेत्य यश्चन्द्रमसं रविं वा
गृह्णाति सूनोरसुरस्य पुत्रः ।
निबोधतैस्तस्य शुभाशुभानि
ग्रहस्य मृत्योः प्रतिचेष्टितानि ॥

२. यदा तु राहुः शशिनो रवेर्वा
ग्रहे ग्रहीतुकामो भवति प्रसह्य ।
तदा करोत्यद्भुतदर्शनानि
यैर्ज्ञायते राहुरुपैष्यतीति ॥

३. उद्वेपते तदा चन्द्रो यदा राहुः प्रदृश्यते ।
पाण्डुर्वा जायते क्लीबः शशो वास्य विवर्धते ॥

४. रेखान्तरापुराराणि कल्मषाणि दिवाकरे ।
वदन्ति च भृशं श्वानो वान्ति वाताश्च भीषणाः ॥

५३.१.५. संध्ययोरुभयोश्चोल्का गवां प्रक्षीयते पयः ।
क्षीरिणां चैव वृक्षाणां तदहर्नश्यते पयः ॥ १ ॥
२. १. अप्सु स्निग्धानि दृश्यन्ते काकाबध्नन्ति मण्डलम् ।
ऊर्ध्वं वदति गोमायुर्यदा राहुः प्रदृश्यते ॥
१. चन्द्रग्रहनिमित्तानि शुक्लपक्षाष्टमीपरम् ।
आ पौर्णमास्या दृश्येरन्सूर्यस्य च तथोभयोः ॥
३. उदितो गृह्यमाणस्तु हन्ति वेदविदो जनान् ।
बालांश्च जटिलान्हन्ति ये च काषायवाससः ॥
४. यौवनस्थांश्च पूर्वाह्ने हन्ति यज्ञविदो जनान् ।
औदकानि च सर्वाणि नागेन्द्राश्चात्र दुःखिताः ॥
५. अथ मध्यपथं प्राप्तः शूद्रान्हन्ति च तस्करान् ।
परिवृत्तो नृपं हन्ति चन्द्रश्चरणचारणान् ॥ २ ॥
३.१. प्रलम्बः प्रमदान्हन्ति क्षत्रं राष्ट्रं च सर्वशः ।
त्रैगर्ताश्चात्र पीड्यन्ते ये च दण्डभृतो जनाः ॥
२. उपरक्तो यदोदेति यदा वा प्रतितिष्ठति ।
आयोगक्षेममादिश्येत्त्रिषु लोकेषु दारुणम् ॥
३. शारदं त्रीणि वर्षाणि सस्यं जातं न पच्यते ।
नैदाघेनात्र जीवन्ति प्रजा मूलफलेन वा ॥
४. सर्वं संग्रसते ज्योतिश्चिरमन्तर्दधाति वा ।
हन्ति स्फीतानि राष्ट्राणि प्रधानं च महीपतिम् ॥
५. यदि तु राहुरुभौ शशिभास्करौ
ग्रसति पक्षमनन्तरमन्ततः ।
पुरुषशोणितकर्दमवाहिनी
भवति भूर्न च वर्षति माधवः ॥ ३ ॥
४. १. गृहीत्वा भास्करं पूर्वं गृह्णाति शशिनं यदि ।
तं तु सोमोत्तरं नाशस्तत्रर्ध्यन्ते हि देवताः ॥

५३.४.२. वयसां मरणं छिद्रे प्रकीर्णे रक्षसां वधः ।
नागानां तु महानागे छिद्रे देवो न वर्षति ॥
३. श्वेतो वर्णो ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां तु लोहितः ।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणां कृष्ण उच्यते ॥
४. एतेषां येन वर्णेन राहुश्चरति भास्करे ।
या जातिस्तस्य वर्णस्य तां स पीडयते ग्रहः ॥
५. श्यामो भवति वाताय द्रौक्षो भवति वृष्टये ।
हरिद्रः सर्वधान्यानां कोपं सृजति दारुणम् ॥ ४ ॥

५.१. ताम्रो भवति शस्त्राय रूक्षो भवति मृत्यवे ।
बह्वाकारस्तु भूतानां घोरं जनयते ज्वरम् ॥
२. धूमवर्णोऽग्निवर्णो वा ग्रामेषु नगरेषु वा ।
अग्न्युत्पातान्गृहस्थानां करोतीह महाग्रहः ॥
३. नीललोहितपर्यन्तो राहुश्चरति भास्करे ।
अमात्यो हन्ति राजानं राजा वामात्यमात्मनः ॥
४. यस्य राज्ञश्च नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यति ।
राज्यभ्रंशं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥ ५ ॥

६.१. स्निग्धवर्णो यदार्चिष्मान्पर्वस्थः स्नेहवान्ग्रहः ।
क्षिप्रं वाप्युदितं ब्रूहि सर्वभूतभयाय वै ॥
२. प्रदक्षिणे तु सोमस्य अपसव्ये तु विग्रहः ।
रश्मिभेदे भयं घोरमुल्लेखे मन्त्रिणां वधः ।
३. दर्शयित्वा तु रूपाणि यदा राहुर्न दृश्यते ।
शस्त्रदुर्भिक्षसंपातैर्भयं घोरं विनिर्दिशेत् ॥
४. गृहीतास्तमितयोस्तु न भुञ्जीरन्द्विजातयः ।
आपुनर्दर्शनात्ताभ्यां जपहोमौ विवर्तयेत् ॥
५. चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात्स्नात्वा तु मुक्तयोः ।
अमुक्तयोरस्तंगयोरद्यात्स्नात्वा परेऽहनि ॥

५३.६.६. ततः षट्सु ततः षट्सुऽध्यर्धेषु वा पुनः ।
अर्धं वर्षेषु मासेषु आदित्यस्य ततो ग्रहः ॥
७. ततः षट्सु ततः षट्सु त्रिषु वर्षेषु वा पुनः ।
एतावदेव राहोस्तु चारमाहुर्मनीषिणः ।
चारमाहुर्मनीषिण इति ॥ ६ ॥

इति राहुचारः समाप्तः ॥ ५३ ॥

इति त्रिपञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ ५३ ॥

५४. केतुचारः

१. १–२. परिचय : भार्गव ने इसका महर्षियों को उपदेश दिया था।

१. ३–५. 'केतवः' के वर्णों का महत्त्व।

२. १. इनके विभिन्न अंगों का महत्त्व।

२. २. इनके आकारों का महत्त्व।

२. ३–७. इनके द्वारा उपलक्षित संकटों के निराकरण के उपाय।

केतुचारः

५४.१.१. ॐ भार्गवस्तु पुरोवाच महर्षीन्भगवानृषिः।
केतुसंचारं शृणुत उत्थानं चैव यादृशम्॥

२. निमित्तानि च वक्ष्यामि तस्योक्तानि हि यानि तु।
तानि सर्वाणि जानीयादुत्पातज्ञानकोविदः॥

३. विप्राञ्छ्वेताकृतिर्हन्ति क्षत्रियान्हन्ति लोहितः।
वैश्यांस्तु पीतको हन्ति शूद्रान्हन्ति तथासितः॥

४. इतरान्पीडयेत्केतुरन्यवर्णो यदा भवेत्।
षण्मासाभ्यन्तरे राज्ञो मरणं च तदादिशेत्॥

५. श्वेतः शस्त्राकुलं कुर्याल्लोहितस्त्वग्नितो भयम्।
क्षुद्भयं पीतकः कुर्यात् कृष्णो रोगमथोल्बणम्॥ १ ॥

२. १. यस्मिन्देशे शिरस्तस्य स देशः पीड्यते भृशम्।
मध्ये तु मध्यमा पीडा यतो पुच्छं ततो जयः॥

२. शक्त्याकारोऽतिनाशाय दुःखाय मुसलाकृतिः।
दीर्घः सूक्ष्मः सुखायैव ह्रस्वः स्थूलो विनाशकृत्॥

३. उत्थानं चैव केतूनां विनाशायैव हि स्मृतम्।
तस्मादाथर्वणैर्मन्त्रैः शमनं कारयेद्बुधः॥

४. माहेन्द्रीममृतां रौद्रीं वैश्वदेवीमथापि वा।
उत्पातेषु महाशान्तिं कारयेद्बहुदक्षिणाम्॥

५४.२.५. आराधिताः शमं यान्ति तदुत्पाता न संशयः ।
होमैर्जप्यैश्च विविधैर्दानैश्च बहुरूपकैः ॥
६. तस्य यत्र शिरो देशे तत उत्थाय वा व्रजेत् ।
धनं वा सर्वमुत्सृज्य मृत्योर्मुच्येता वा न वा ॥
७. दत्त्वा वा पृथिवीं सर्वां राजा शान्तिं नियच्छति ॥
राजा शान्तिं नियच्छतीति ॥ २ ॥

इति केतुचारः समाप्तः ॥ ५४ ॥

चतुर्थं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ ५४ ॥

शिवमस्तु ॥

५५. ऋतुकेतुलक्षणम्

१. १. परिचय।

१. २–४. 'ऋतुकेतवः' की संख्या और पैतृकता।

१.५–६. ३. 'श्रावण-प्रौष्ठपदौ' से आरम्भ करते हुये छः ऋतुओं के लिये इनका निर्धारण; इनका फल।

६. ४. इस ज्ञान का लाभ।

ऋतुकेतुलक्षणम्

५५.१.१. ॐ ऋतुकेतून्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।
यावन्तो यस्य पुत्राः स्युः कुर्युर्यचोदितादिवि ॥
२. सर्वे ते धरणीजाता मासा ये देवनिर्मिताः।
आदित्यरश्मिभिर्बद्धाः सौरे तिष्ठन्ति मण्डले ॥
३. दश वै वारुणास्तत्र सूर्यपुत्रास्तु विंशतिः।
चतुर्विंशतिराग्नेया यमपुत्रा नव स्मृताः ॥
४. अष्टादश च कौबेरा वायुपुत्रास्तु विंशतिः।
एषा संख्या तु केतूनां शतम एकोत्तरं स्मृतम् ॥
५. श्रावणप्रौष्ठपदयोर्वारुणांस्तु विनिर्दिशेत्।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ॥
६. आराधिताः शमं यान्ति तदुत्पाता न संशयः।
होमैर्जापैश्च विविधैर्दानैश्च बहुरूपकैः ॥
७. आवाहयेत्ततो मेघान्पूर्णां कुर्याद्वसुंधराम्।
उन्मत्ताः सरितो यान्ति जलवेगसमाहिताः ॥
८. धान्यं समर्घतां याति इतयो न भवन्ति हि।
उदये वारुणानां तु एतद्भवति लक्षणम् ॥ १ ॥
२. १. अश्वयुजि कार्त्तिके च सूर्यपुत्रान्विनिर्दिशेत्।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ॥

५५.२.२. ततो दहति दीप्तांशुः सर्वान्नानि दिवाकरः ।
म्रीयन्ते च तथा गावः श्वापदाश्च विशेषतः ॥
३. विषं च प्रबलं तत्र सर्वदंष्ट्रिषु दारुणम् ।
उदये सूर्यपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम् ॥ २ ॥
३. १. मार्गशीर्षे च पौषे च अग्निपुत्रान्विनिर्दिशेत् ।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ।
२. अग्निर्दहति राष्ट्राणि हरितानि वनानि च ।
विद्रवन्ति ततो देशाः समन्ताद्भयपीडिताः ॥
३. कस्मिंश्चिज्जायते क्षेमं कस्मिंश्चिज्जायते भयम् ।
उदये ह्यग्निपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम् ॥ ३ ॥
४. १. माघफाल्गुनयोर्मध्ये यमपुत्रान्विनिर्दिशेत् ।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ॥
२. शीघ्रं भवति दुर्भिक्षं हाहाभूतं अचेतनम् ।
छर्दिज्वरातिसाराश्च ग्लानिश्चैवाक्षिवेदना ॥
३. उदये यमपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम् ॥ ४ ॥
५. १. चैत्रवैशाखयोर्मध्ये कौबेरांस्तु विनिर्दिशेत् ।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ॥
२. उच्छ्रितैर्ध्वजवेदीभिरुच्छ्रितैर्ध्वजतोरणैः ।
हविर्धूमाकुला तत्र दृश्यते वसुधा तदा ॥
३. त्रिविष्टपं समापन्नस्तदा शक्रो महीपतिः ।
एवं प्रज्ञास्तु मन्यन्ते कुबेरे ग्रहमागते ॥
४. उदये तु कुबेराणामेतद्भवति लक्षणम् ॥ ५ ॥
६. १. ज्यैष्ठे चैव तथाषाढे वायुपुत्रान्विनिर्दिशेत् ।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः शृणु यादृशैः ॥
२. वायन्ति च महावाता महायुद्धं महाभयम् ।
भज्यन्ते च महावृक्षास्तोरणाट्टालकानि च ॥

५५.६.३. गृहाणि रमणीयानि क्षयं यान्ति जलानि च ।
उदये वायुपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम् ॥

४. ऋतुगतमुदयनमेषां
महौजसां वारुणादिकेतूनाम् ।
जानाति यः फलं च
प्रोक्तृष्टाः संपदस्तस्य ॥
संपदस्तस्येति [इति] ॥ ६ ॥

इत्यृतुकेतुलक्षणं समाप्तम् ॥ ५५ ॥

पञ्चमं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५६. कूर्मविभागः

इस परिशिष्ट में पृथ्वी की एक ऐसे कूर्म के रूप में कल्पना की गई है जिसका सर पूर्व की ओर है। इस कूर्म को नौ भागों में विभक्त किया गया है और प्रत्येक भाग को तीन-तीन नक्षत्रों के त्रिकों के आधीन बताया गया है। प्रत्येक भाग के अन्तर्गत आने वाले देशों की विस्तृत गणना की गई है। अत्यधिक व्यक्तिवाचक नामों के कारण सम्पूर्ण पाठ अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है। प्रतीत होता है कि इसकी आर्या छन्द में रचना की गई थी किन्तु अब इसे उस रूप में प्रस्तुत करना असम्भव है।

कूर्मविभागः

५६.१.१. ॐ कृत्तिकारोहिणीसौम्यं मध्यं कूर्मस्य निर्दिशेत् ॥
शेषान् ऋक्षविभागे तु त्रिकं प्रति विनिर्दिशेत् ॥

२. साकेत मिथिले मेकलालयावहिछत्रनागपुरं काशिपारियात्रकुरुपाञ्चालाः ॥ अथ कोसलकौशाम्बीतीरं पाटलिपुत्रं कलिङ्गपुरपृथिवीमण्डलमध्येऽभिहतेऽभिहन्यात् ॥

३. अङ्गवङ्गकलिङ्गमागधमहेन्द्रगवसमम्बष्ठाः॥ भागाः पूर्वसमुद्राः शिरस्यभिहतेऽभिहन्यात् ॥

४. खशभद्रा समतट समवर्धमानकवैदेहागान्धाराः ॥ कोसलतोसलवेणातटसज्जपुरा माद्रेयतामलिप्ता दक्षिणपूर्वे हतेऽभिहन्यात् ॥

५. आवन्त्यका विदर्भा मत्स्या चकोरभीमगंरथा यवनवलयकान्तीसिंहललङ्कापुरी चैव ॥ द्रविडा बर्बरतीरा दक्षिणपार्श्वे हतेऽभिहन्यात् ॥

६. सह्यगिरिवैजयन्ती कुङ्कुणनासिक्यकर्मणोयामिमहिनर्मदभृगुकच्छा दक्षिणपश्चाद्धतेऽभिहन्यात् ॥

७. सौराष्ट्रसिन्धुसौवीरमालवा रामराष्ट्रकान्चीतान् ॥ आनर्तगच्छयनतान्पुच्छेऽभिहतेऽभिहन्यात् ॥

५६.१.८. सारस्वतांस्त्रिगर्तान्मत्स्यान्नान्धारबाल्हिकान् ॥ मथुरापुरंग-
देशानुत्तरभागे हतेऽभिहन्यात् ॥
९. ब्रह्मावर्तं शतद्रुहिमवन्तं पर्वतं च मैनाकं काश्मीरं चैव तथा-
उत्तरपार्श्वे हतेऽभिहन्यात् ॥
१०. नेपालकामरूपं च विदेहौदुम्बरं तथा ॥ तथावन्त्यः कैकयश्च
उत्तरपूर्वे हतेऽभिहन्यात् ॥ १ ॥

इति कूर्मविभागः समाप्तः ॥ ५६ ॥

षष्ठं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५७. मण्डलानि

यहाँ सात-सात नक्षत्रों के चार वर्गों को चार मण्डलों के साथ संयुक्त किया गया है। फलस्वरूप अग्नि, वायु, वरुण और महेन्द्र संज्ञक देवों के इन मण्डलों में भूकम्प, शकुनों तथा अन्य उत्पातों आदि का उन्हीं नक्षत्रों के अनुसार वर्णन किया गया है जिनके अन्तर्गत इन मण्डलों को रक्खा गया है। प्रस्तुत परिशिष्ट में प्रत्येक दशाओं में की जाने वाली भविष्यवाणियों की व्याख्या की गई है।

१. १–८. अग्निमण्डल।
२. १–८. वायुमण्डल।
३. १–६. वरुण मण्डल।
४. १–५. महेन्द्र मण्डल।
४. ६–७. शकुनों के प्रभावों की अवधि और उनके सम्भाव्य आरम्भ का समय।

मण्डलानि

५७.१.१. विशाखे कृत्तिकाः पुष्यः पूर्वौ प्रोष्ठपदौ तथा।
भरण्यश्च मघाश्चैव फल्गुन्यौ प्रथमे तथा॥
२. यद्यत्र चलते भूमिर्निर्घातोल्कास्त एव वा।
अशरीराश्च नर्दन्ते कम्पन्ते दैवतानि च॥
३. आदित्यो वात्र गृह्येत सोमो वाप्युपरज्यते।
आग्नेयं तद्विजानीयाद्दुर्भिक्षं चात्र निर्दिशेत्॥
४. अल्प क्षीरास्तथा गावो अग्नेर्व्याधिश्च जायते।
पुराणि देशा ग्रामाश्च पीड्यन्ते ह्यग्निना तदा॥
५. पीड्यन्ते चाग्निकर्माणो अग्निवेशाश्च ये नराः।
पित्तज्वरस्तथा श्वासः प्रजाः पीडयते तदा॥
६. अक्षिरोगास्तथा घोराः पुरुषाणां विशेषतः।
आपगाश्चात्र शुष्यन्ति न च सस्यवती मही॥
७. तप्यते च तदा भूमिर्न च देवोऽभिवर्षति।
नीललोहितपर्यक्ता अफलाः पादपास्तथा॥

५७.१.८. दुर्भिक्षं मरको व्याधिः परचक्रभयं तथा ।
एतै रूपैस्तु विज्ञेयमाग्नेयं चलदर्शनम् ॥ १ ॥
२. १. हस्तोऽश्विन्यौ तथा चित्रा ऋक्षमर्यमदैवतम् ॥
ब्राह्मं मृगशिरः स्वातिर्वायव्यं मण्डलं स्मृतम् ॥
२. यद्यत्र चलते भूमिर्निर्घातोल्कास्त एव वा ।
अशरीराश्च नर्दन्ते कम्पन्ते दैवतानि च ॥
३. आदित्यो वात्र गृह्यते सोमो वाप्युपरज्यते ।
वायव्यं तद्विजानीयादक्षेमं चात्र निर्दिशेत् ॥
४. पांसुवर्षं तदा घोरं क्षीरे सर्पिर्न विद्यते ।
प्रासादतोरणादीनि प्रपतन्ति महीतले ॥
५. मद्रका यवनाश्चैव शकाः काम्बोजबाल्हिकाः ।
गान्धाराश्च विनश्यन्ति एतैः सार्धं तथा किल ॥
६. गजा वाजिन उष्ट्राश्च वृका नकुलचेटकाः ।
पीड्यन्ते व्याधिना सर्वे ये च शस्त्रोपजीविनः ॥
७. पुरे श्रेष्ठा विनश्यन्ति गणेषु गुणसंमिताः ।
गृहाणि रमणीयानि विशीर्यन्ते च सर्वशः ॥
८. आयासश्चोल्बणस्तत्र शस्त्रभ्रामः समन्ततः ।
एतै रूपैस्तु विज्ञेयं वायव्यं चलदर्शनम् ॥ २ ॥
३. १. आर्द्रा श्लेषास्तथा मूलं पूर्वाषाढास्तथैव च ।
वारुणं रेवती चैव सूर्यदैवत्यमेव च ॥
२. यद्यत्र चलते भूमिर्निर्घातोल्कास्त एव वा ।
अशीराश्च नर्दन्ते कम्पन्ते दैवतानि च ॥
३. आदित्यो वात्र गृह्येत सोमो वाप्युपरज्यते ।
वारुणं तद्विजानीयात्सुभिक्षं चात्र निर्दिशेत् ॥
४. बहुक्षीरास्तथा गावो नागाश्च फलिनस्तथा ।
शान्तारयः प्रजाः सर्वा गोमिनो जङ्गलं पयः ॥

५७.३.५. जलोपजीविनः सर्वे प्राप्नुवन्त्यर्द्धिमुत्तमाम् ।
खेचराश्चात्र दृश्यन्ते स्निग्धवर्णाः समन्ततः ॥
६. न्यस्तशस्त्राश्च राजानो ब्रह्मक्षत्रं च वर्धते ।
एतै रूपैस्तु विज्ञेयं वारुणं चलदर्शनम् ॥ ३ ॥
४. १. ज्येष्ठानुराधा श्रवणः श्रविष्ठाश्च पुनर्वसू ।
प्राजापत्यमाषाढाश्च माहेन्द्रं मण्डलं स्मृतम् ॥
२. यद्यत्र चलते भूमिर्निर्घातोल्कास्त एव वा ।
अशरीराश्च नदन्ते कम्पन्ते दैवतानि च ॥
३. आदित्यो वात्र गृह्येत सोमो वाप्युपरज्यते ।
माहेन्द्रतद्विजानीयात्सुक्षेमं चानिर्दिशेत् ॥
४. गावः समग्रवत्साश्च स्त्रियः पुत्रसमन्विताः ।
कीटा व्याला म्रियन्ते च ये चान्ये स्वेदजन्तवः ॥
५. वेदाध्ययनयज्ञेषु ब्राह्मणा निरताः सदा ।
विट् क्षत्रियाः स्वकर्माणः शूद्राः सुश्रूषकारकाः ॥
६. विंशतिशतं त्वाग्नेयं वायव्यं नवतिं चलेत् ।
अशीतिं चलते त्वैन्द्रं वारुणं सप्ततिं चलेत् ॥
५७.४.७. आग्नेयो भूमिकम्पो यः स द्विमासाद्विपच्यते ।
वारुणस्तु फलं सद्यो वायव्यस्तु त्रिमासिकः ॥
महेन्द्रस्य फलं विद्यान्मासमर्धं तथैव च ॥ ४ ॥

इति मण्डलानि समाप्तानि ॥ ५७ ॥

सप्तमं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५८. दिग्दाहलक्षणम्

१. १. परिचय ।

१. २–३. दिग्दाह उत्पन्न करनेवाले देवता; इसकी परिभाषा ।

१. ४–१२. इसकी व्याख्या—मुख्यतः इसके वर्ण के अनुसार ।

१. १३. इसके द्वारा सम्भाव्य किसी भी विपत्ति का 'महाशान्ति' द्वारा प्रतिकार हो सकता है ।

दिग्दाहलक्षणम्

५८.१.१. ॐ अत ऊर्ध्वं च दिग्दाहान्कीर्त्यमानान्निबोधत ।
यथा दिशः प्रदह्यन्ते तासां दाहफलं च यत् ॥

२. इन्द्रोऽग्निर्मरुतश्चैव प्रदहन्ति दिशो दश ।
शुभाशुभाय लोकानां कृतान्तेनाभिचोदिताः ॥

३. यदास्तमित आदित्ये वह्नेर्ज्वाला प्रदृश्यते ।
दिशं दाहं तु तद्विद्याद्भार्गवस्य वचो यथा ॥

४. नानारागसमुत्थानां नानाविधफलोदयाः ।
पांसुनेव च संछन्ना दिग्दाहायोगमाश्रिताः ॥

५. दिशः सर्वाः प्रदह्यन्ते अक्षेमाय फलाय च ।
अवदाहादृते दाहं यदि स्निग्धाः प्रदर्शनाः ॥

६. तमोधूमरजस्का ये दीप्तद्विजमृगावृताः ।
प्रदीप्तलक्षणाः सत्याः सर्व एवाहितावहाः ॥

७. तथा कनककिञ्जल्कतडित्कल्पाः शिवाश्च ये ।
रूक्षाः कृष्णाथ माञ्जिष्ठा बन्धुजीवकवच्च ये ॥

८. श्वेता रक्ताश्च पीताश्च दाहाः कृष्णाश्च वर्णतः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रविनाशाय प्रकीर्तिताः ॥

५८.१.९. रक्ताः शस्त्रभयं कुर्युः पीता व्याधिप्रकोपनाः ।
अग्निवर्णास्तथा कुर्युरग्निशस्त्रभयं महत् ॥
१०. सपीतपरुषश्यामा ये च वारुणसंनिभाः ।
सर्व एव क्षुधारोग मृत्युशस्त्राग्निकोपनाः ॥
११. ऋतौ तु वर्षं तीव्रं स्यात्सैन्यविद्रवमेव च ।
भृशमुद्द्योतनी संध्या कुरुते वा ग्रहागमम् ॥
१२. दिक्षु दग्धासु पीड्यन्ते यथादिग्देशभक्तयः ।
शकुनज्ञाननिर्दिष्टा ये च तत्राधिकारकाः ॥
१३. यथोक्ता तु महाशान्तिर्यथोक्तविधिना कृता ।
सर्वं दिग्दाहजं घोरं शमयेत्सा सदक्षिणा ॥
शमयेत्सा सदक्षिणेति ॥ १ ॥

इति दिग्दाहलक्षणं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

अष्टमं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

५८ख. उल्कालक्षणम्

१. १–२. परिचय ।

१. ३–७ पुण्यात्मा मृत व्यक्ति आकाश में तारों के समान दीप्तिमान होते हैं और जब उनका पुण्य समाप्त हो जाता है तब वे पृथिवी पर गिर पड़ते हैं । इस प्रकार उनका गिरना जहाँ-जहाँ दिखाई पड़ता है वहाँ-वहाँ वह विभिन्न प्रकार के लक्षणों का सूचक होता है ।

१.८-२.३. इस प्रकार के शकुनात्मक लक्षणों का तारा, धिष्ण्या, उल्का, विद्युत और अशनि के रूप में वर्गीकरण; अन्तिम तीन नामों की परिभाषा ।

२.४-३.१. उल्काओं के विभिन्न प्रकार ।

३. २–८. उनके प्रभाव ।

३.९–११. धिष्ण्या और तारा की परिभाषायें; यह उपदेश शौनक ने दिया था । शेष अंश में भी इसी विषय का विवेचन किया गया है । यद्यपि इसका स्रोत दूसरा अपेक्षाकृत कम व्यवस्थित है ।

४.१–१६. जिन वस्तुओं पर उल्कायें गिरती हैं उनके अनुसार तथा उल्काओं की गति, रूप, उनके साथ सम्बद्ध दृश्य और ध्वनियाँ, उनके वर्ण आदि के अनुसार उल्काओं का प्रभाव । उल्का को न देखने पर भी उसका प्रभाव अवश्य होता है ।

४.१६-१९. अशनि, विद्युत, तारा और धिष्ण्या का वर्णन ।

४. २०. इस प्रकार की स्थितियों में 'महाशान्ति' की प्रभावकता ।

उल्कालक्षणम्

५८ख.१.१. ॐ उल्कादयो हि निर्दिष्टा निर्घातास्तु पुरात्र ये ।
तेषामिदानीं वक्ष्यामि विशेषांस्तु पृथक्-पृथक् ॥

२. अङ्गानामान्तरिक्षाणां यदङ्गमभिपूजितम् ।
तदुल्कालक्षणं श्रीमदङ्गं कार्त्स्न्येन वक्ष्यते ॥

३. अप्रधृष्याणि यानि स्युः शरीराणीन्द्रियैर्दृढैः ।
क्षमावन्ति विशुद्धानि सत्यव्रतरतानि च ॥

४. तान्येतानि प्रकाशन्ते भाभिर्वितिमिरं नभः ।
समन्ताज्ज्वलयन्तीह यस्मादसुकरं नभः ॥

५८ख.१.५. तानि भावक्षयाद्भूयः प्रच्युतानि नभस्तलात् ।
क्षितौ सलक्षणान्येव निपतन्तीह भार्गव ॥
६. तेषां निपततां तत्र यत्रयत्रोपलक्ष्यते ।
तत्रतत्रैव विविधं प्रजानां जायते भयम् ॥
७. रूपवर्णप्रभास्नेहप्रमाणाकृतिसंगमैः ।
तेषां बलाबलं ज्ञात्वा गुणदोषः प्रवक्ष्यते ॥
८. तारा घिष्ण्यास्तथोल्काश्च विद्युतोऽशनयस्तथा ।
विकल्पाः पञ्चधा चैषां परस्परबलोत्तराः ॥
९. तत्र शब्देन महता विस्वरेण विकर्षिणा ।
महाचक्रमिवागच्छदायताक्षा नभस्तलात् ॥
१०. मनुष्यमृगहस्त्यश्ववृक्षाश्मपथवेश्मसु ।
पतन्त्यशनयो दीप्ताः स्फोटयन्त्यो धरातलम् ॥ १ ॥
२. १. सहसैवोपपन्नेषु भृशं तदनुयायिना ।
सत्त्वविभ्रंशिनात्यर्थं शब्देनोद्वेगकारिणा ॥
२. ज्वालाभारविसर्पिण्यः प्रकृत्या दुःखदर्शनाः ।
विद्युतो निपतन्त्याशु जीवेषु वनराशिषु ॥
३. तीक्ष्णशूल विशालाग्रा पतन्ती चापि वर्धते ।
प्रकृत्या पौरुषी तूल्का तस्या भेदान्निबोधत ॥
४. कृशा नारीव दीप्ता स्याच्छिखा साङ्गारवर्षिणी ।
उद्द्योतयन्ती गगनं काञ्चनेनैव वर्मणा ॥
५. पीतेन पाण्डुना वापि धूमधूम्रारुणेन वा ।
विशीर्यता महाभ्रेण महता चानुषङ्गिणा ॥
६. वंशगुल्मनिभाश्चापि काश्चिदिन्द्रध्वजोपमाः ।
काश्चिदिन्द्रायुधप्रख्याः काश्चिन्मण्डलसंस्थिताः ॥
७. छत्त्रवच्चापि दृश्यन्ते चक्रवन्निपतन्ति च ।
दण्डवच्चापि तिष्ठन्ति प्रधावन्ति च सर्पवत् ॥

५८ख. २.८. प्रकीर्णेन कलापेन खे गच्छन्तीव बर्हिणः ।
अभ्युच्छ्रितेन पुच्छेन यातिकाचिद्धरातलम् ॥
९. तेजांसि विकीरन्त्यन्याः प्रधावन्ति च गोलवत् ॥ २ ॥
३. १. प्रनृत्तप्रेतमार्जारवराहानुगतास्तथा ।
सस्वना निःस्वनाश्चापि पतन्ति धरणीतले ॥
२. एतासां फलमुल्कानां प्रवक्ष्यामि पृथक्-पृथक् ।
तन्तुनेव हि सम्बद्धा उह्यमानेव वायुना ॥
३. पतन्ती दृश्यते काचित्काचिद्भ्रमति चाम्बरे ।
उल्कासंघैः परिवृता काचिद्याति धरातलम् ॥
४. सामान्यं तु फलं तासां तत्समासेन वक्ष्यते ।
वराहप्रेतशार्दूलसिंहमार्जारवारणैः ॥
५. तुल्या भयावहा उल्का निकृष्टाहिनिभा च या ॥
शूलपट्टिशशक्त्यर्ष्टिमुद्गरासिपरश्वधैः ॥
६. वृष्ट्याकारेण तुल्याश्च वृक्षाभाश्च विगर्हिताः ।
पद्मशङ्खेन्दुवज्राहिमत्स्यध्वज निभाः शुभाः ॥
७. श्रीवृक्षस्वस्तिकावार्तहंसद्विरदवर्चसः ।
ज्वलिताङ्गारसंकाशा जिह्मगा अथ शीघ्रगाः ॥
८. विना पुच्छावकाशेन ह्रस्वेनातिकृशेन वा ।
दशान्तराणि घनुषः पुच्छं चापि प्रदृश्यते ॥
९. उल्काविकारो बोद्धव्यो धिष्ण्य इत्यभिसंज्ञितः ।
यस्तु शुक्लेन वर्णेन वपुषा पेलवेन वा ॥
१०. पद्मतन्तुनिकाशेन धूमराजीनिभेन वा ।
उल्काविकारः सोप्युक्तस्तारका नामनामतः ॥
११. एवं पञ्चविधा ह्येताः शौनकेन प्रकीर्तिताः ।
स्वर्गच्युतानां पततां लक्षणं पुण्यकर्मणाम् ॥ ३ ॥

५८ख. ४.१. एतासामिन्द्रशिरसि पतनं नृपतेर्भयम् ।
देवतार्चासु पतने राजराष्ट्रभयं भवेत् ॥
२. पुरद्वारे पुरक्षोभ इन्द्रकीले जनक्षयः ।
ब्रह्मायतनघातेषु ब्राह्मणानामुपद्रवः ॥
३. चैत्यवृक्षाभिघातेषुः सत्कृत्यानां महद्भयम् ।
द्वारेचायुःक्षयं विद्याद्गृहेतु स्वामिनो भयम् ॥
४. गोष्ठेषु गोमिनां विद्यात्कर्षकाणां खलेषु च ।
गृहेषु राज्ञां जानीयाद्भेषु तद्भक्तिनां भयम् ॥
५. आशाग्रहोपघातेषु तद्देश्यानां तपस्विनाम् ।
अघोमुखी नृपं हन्याद्ब्राह्मणानूर्ध्वगामिनी ॥
६. तिर्यगा राजपत्नीं च श्रेष्ठिनः प्रतिलोमनी ।
वंशगुल्मनिभा राष्ट्रं नृपमिन्द्रध्वजोपमा ॥
७. गजमिन्द्रायुधप्रख्या पुरं मण्डलसंस्थिता ।
मन्त्रिणश्चक्रसंस्थाना छत्राकारा पुरोधसम् ॥
८. मयूरपुच्छानुगता कुर्यादुल्का जलक्षयम् ।
विलीयमाना नभसि पिबत्युल्का पयोधरान् ॥
९. स्फुलिङ्गान्विसृजन्त्यो याः प्रधावन्ति समन्ततः ।
गोलवच्च प्रधावन्ति तासु राष्ट्रभयं भवेत् ॥
१०. उल्कासंघैः परिवृता याः पतन्ति नभस्तलात् ।
अनुसारिण्य उल्कास्ता राजराष्ट्रभयावहाः ॥
११. प्रेतानुगत मार्गाश्च वराहानुगताश्च याः ।
क्रव्याग्निव्यालरूपाश्च ता जनक्षयकारिकाः ॥
१२. क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टा गीतवादित्रनिस्वनाः ।
उल्कापातेषु बोद्धव्या राजराष्ट्रभयावहाः ॥
१३. सस्वना दारुणाः संध्यावायोश्च प्रतिलोमगाः ।
नभो मध्यं च या यान्ति याश्च कुर्युर्गतागतम् ॥

५८ख.४.१४.हिनस्ति शुक्ला शिरसा मध्येन क्षतजप्रभा ।
पार्श्वाभ्यां पीतका हन्ति कृष्णोल्का पुच्छयोगिनी ॥
१५. शुक्ला देवनृपान्हन्यात्क्षत्रियान्क्षतज प्रभा ॥
पीता वैश्योपघाताय शूद्रान्हन्यात्सितेतरा ॥
१६. पतन्त्यो नोपलक्ष्यन्ते कर्म तासां प्रकाशते ।
क्षितावशनयो यत्र तत्र नास्ति भयागमः ॥
१७ः सतारा निपतन्त्यन्या मारुतप्रतिलोमगाः ।
भवन्ति विद्युतो नेष्टा इष्टाश्च स्युरतोऽन्यथा ॥
१८. तारा धिष्ण्याश्च बोद्धव्याश्चिरान्मृदुफलोदयाः ।
तासामपि च भूयिष्ठं पतनं दोषकारकम् ॥
१९. यतोयतो विकाराः स्युर्निपतन्त्यतिमात्रशः ।
ततस्ततो नृपो यायाद्दैवो मार्गः स उच्यते ॥
२०. निमित्तेषु महाशान्तिमुल्कायां च विशेषतः ।
कृत्वा सिद्धिमवाप्नोति उल्कादोषाच्च मुच्यते ॥
उल्कादोषाच्च मुच्यत इति ॥ ४ ॥

इत्युल्कालक्षणं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

अष्टमं पञ्चाशत्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥ छ ॥

५९. विद्युल्लक्षणम्

यहाँ केवल वर्षाऋतु के आरम्भ में आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में ही दिखाई पड़ने वाले विद्युत के लक्षणों का विवेचन किया गया है। इसके भी दो स्रोत हैं और १२ वें श्लोक में इनका विभाजन स्पष्ट है।

१. १. परिचय।

१. २-३. विद्युत दिखाई पड़ने का समय और महत्त्व।

१. ४-८. जिस दिशा में विद्युत दिखाई पड़े, और यदि वायु भी उसी दिशा की हो तो लक्षणों का उस दिशा के आधार पर ही विचार किया जाना चाहिये।

१. ८-९. वायु के विपरीत या अनुकूल होने के आधार पर विद्युत के लक्षण।

१. ९-११. दो दिशाओं में साथ-साथ दिखाई पड़ने पर विद्युत के लक्षण।

१. ११-१२ सभी दिशाओं में दिखाई पड़ने पर विद्युत के लक्षण।

१. १२-१८. जिस दिशा में मेघ प्रकट हों उनके अनुसार लक्षण विचार।

१. १९. सारांश।

१. २०. फलानुमान अनुकूल हो या नहीं, महाशान्ति अवश्य करना चाहिये।

विद्युल्लक्षणम्

५९.१.१. अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि विद्युल्लक्षणमुत्तमम्।
वर्णरूपविकारांश्च देशभागाञ्छुभाशुभान्॥

२. चतुर्थीं पञ्चमीं चैव प्रतीक्षेत सदा शुचिः।
आषाढ़शुद्धे नियतं विद्युद्दर्शनमद्भुतम्॥

३. अतिवृष्टिमनावृष्टिं भावाभावौ तथैव च।
सर्वसस्येषु निष्पत्तिर्विद्युतो दर्शने नरः॥

४. ऐन्द्र्यां चेत्स्यन्दते विद्युदैन्द्रस्थश्चापि मारुतः।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं निरीतिं च विनिर्दिशेत्॥

५. आग्नेय्यां चेदुभौ स्यातां भयं शस्त्राग्निवृष्टितः।
याम्यायां विषमारिश्च व्याधिमृत्युभयं तथा॥

५९.१.६. कनीयसी तु नैर्ऋत्यां तथा बह्वीतिका समा ।
मध्यमा सस्यसंपत्तिर्वारुण्यां व्याधिसंकुला ॥
७. पतंगदंशमशका वायव्यां मध्यसंपदः ।
अतिवारिभयं विद्यात्सौम्यायां भूरिसंपदः ॥
८. निरीतिः सस्यसंपत्तु प्रधानैश्यां मनोरमा ।
प्रतिलोमेषु वातेषु ईतिबाहुल्यमादिशेत् ॥
९. अनुलोमेषु वातेषु निरीतिं तु सामादिशेत् ।
शुभायां स्यन्दमानायामनिष्टा स्यन्दते यदि ॥
१०. संपद्यते महासस्यान्महांश्चेत्स्यादवग्रहः ।
अशुभा स्यन्दते पूर्वं यदि पश्चाच्च शोभना ॥
११. सुवृष्टिमेव तत्राहुर्न च सस्यं समृध्यति ।
यदा तु सर्वा, स्यन्दन्ते विषमां वृष्टिमादिशेत् ॥
१२. बहुलायां विद्युति तु बहुवारिभयं भवेत् ।
स विद्युतः सस्तनितो दर्शयन्ति यदा शुभाम् ॥
१३. पूर्वोत्तरां दिशं मेघाः सुवृष्टिं तां विजानते ।
पूर्वतः पूर्ववर्षेषु दृश्यन्ते यदि तोयदाः ॥
१४. प्रदक्षिणावर्तशुभाः सुवृष्टिमितिनिर्दिशेत् ।
आग्नेयेष्वतिवृष्टिः स्यात्सस्यं चापि विपद्यते ॥
१५. विषमा वृष्टिर्याम्येषु व्याधिं मृत्युं च निर्दिशेत् ।
बह्वीतिका नैर्ऋतेषु समूलफलदायिनी ॥
१६. वारुणेषु पयोदेषु मध्यमं सस्यमादिशेत् ।
वायव्यां प्रथमं वर्षं यत्र वर्षति वासवः ॥
१७. तत्रातिवृष्टिर्भवति स्वल्पबीजानि वापयेत् ।
वर्णस्नेहोपपन्नास्तु पूर्ववृष्ट्यां पयोधराः ॥
१८. सौम्यां यत्र प्रवर्षेयुस्तत्र सर्वगुणाः समाः ॥

५९.१.१९. इत्येतत्पूर्ववर्षेषु लक्षणं विद्युतां स्फुटम् ।
वर्षारावगतं सर्वं यथावत्परिकीर्तितं ॥
२०. शुभेष्वपि महाशान्तिरविघाताय वोच्यते ।
अशुभेषु समर्घाय तस्यात्सर्वेषु शान्तिकमिति ॥

इति विद्युल्लक्षणं समाप्तम् ॥ ५९ ॥

६०. निर्घातलक्षणम्

१. १-४. प्रकट होने की दिशाओं के अनुसार निर्घातों के लक्षण। यह द्रष्टव्य है कि यहाँ दिशाओं की गणना का क्रम दाहिने से बायें है क्योंकि निर्घातों के घूमने की यही दिशा होती है।

१. ५. निर्घातों के प्रभाव का विस्तार।

१. ६. महाशान्ति के 'रौद्री' और 'अभया' रूपों को सम्पन्न करने का उल्लेख है।

निर्घातलक्षणम्

६०.१.१. अष्टौ भवन्ति निर्घातास्तेषामिन्द्रः प्रशस्यते।
पूर्वेण वृष्टिं सस्यं च राजवृद्धिं च निर्दिशेत् ॥

२. पूर्वोत्तरे सुभिक्षं तु भूमिलाभस्तथोत्तरे।
अपरोत्तरे चौरभयं वाजिनां चाप्युपद्रवः ॥

३. पश्चिमायां भयं राज्ञो जलजातिश्च पीड्यते।
नैर्ऋते सस्यगोस्त्रीणां गणानां च महद्भयम् ॥

४. दक्षिणे राजपीडा स्यादायुश्चात्र विनिर्दिशेत्।
आनर्तस्य भयं विद्याद्यदि स्यात्पूर्वदक्षिणः ॥

५. स योजनपरः शब्दो निर्घातस्य विशाम्यति।
सर्वत्र च भयं विद्यात्तत्र यत्र विशाम्यति ॥

६. भये रौद्रीं प्रकुर्वीत अभयां वाभयप्रदाम्।
तया शाम्यन्ति चोत्पाताः सुखं चात्यन्तिकं भवेत् ॥

इति निर्घातलक्षणं समाप्तम् ॥ ६० ॥

६१. परिवेषलक्षणम्

परिशिष्ट का नाम अन्त में ही नहीं प्रथम श्लोक में भी दिया गया है। फिर भी, वास्तव में इस परिशिष्ट का 'परिवेष' से कोई सम्बन्ध नहीं है। परिवेष का विवेचन ६३ वीं परिशिष्ट में आगे मिलेगा। यहाँ वस्तुतः गोधूली के समय दिखाई पड़नेवाले मेघों के लक्षण का वर्णन है और इस कारण इसे अधिक उपयुक्ततः 'संध्यालक्षणम्' कहना अच्छा होगा। इसके भी दो स्रोत हैं और दूसरा स्रोत १२वें श्लोक से आरम्भ होता है।

१. १-२. परिचय।

१. ३-४. घटना के वर्ण के अनुसार विभिन्न जातियों के लिये शुभाशुभ फल।

१. ५-६. वृष्टि और अनावृष्टि के लक्षण।

१. ७-११. अन्य शुभाशुभ लक्षण तथा मेघों का संघर्ष।

१. १२-१८. वृष्टि और अनावृष्टि के लक्षण।

१. १९-२४. मेघों के चार प्रकार के संघर्ष।

१. २५-२८. अपराभ्रविकार, संध्या, स्तनित, परिघ, प्रत्यादित्य, निर्घात, विद्युत्, परिवेष, दिग्दाह और उल्का के प्रभावों का विस्तार। मूलतः ये श्लोक ज्योतिष विषयक किसी विवेचन के अन्तिम अंश रहे प्रतीत होते हैं।

परिवेषलक्षणम्[1]

६१.१.१. ॐ अथातः परिवेषाणां लक्षणं चैव वक्ष्यते।
वृद्धगर्गो यथा पूर्वमुवाच मम सुव्रत॥
२. स्वायंभुवनियोगेन विकारं कुरुतेऽमलः।
३. श्वेत श्यामो हरिः कृष्ण इति वर्णा व्यवस्थिताः।
प्रोक्ता मेघेषु चत्वारो व्यक्ताः स्निग्धाः सुपूजिताः॥
४. स्निग्धेषु परिवेषेसु चतुर्ष्वेतेषु नारद।
संध्यायामत्र वर्णेषु वृष्टिं तेष्वभिनिर्दिशेत्॥

---

१. चौथे श्लोक को किसी भी प्रकार सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। इसमें गोधूलि के समय परिवेषों के प्रकट होने का केवल आकस्मिक उल्लेख ही प्रतीत होता है और यही परिशिष्ट के गलत नामकरण का भी कारण है। दूसरी ओर, एक गलत शीर्षक के कारण इस श्लोक में 'परिवेषेषु' का एक भ्रष्ट पाठ होना भी सर्वथा सम्भव प्रतीत होता है। २७वें श्लोक के अतिरिक्त इस परिशिष्ट में 'परिवेषों' का और कहीं उल्लेख नहीं है।

६१.१.५. काचनीलाञ्जनारिष्टाशनिसर्पनिभेषु च ।
रौप्यद्रवसमाभेषु मेघस्त्रिष्वपि वर्षति ॥
६. निमग्ना तु यदा संध्या भवत्येतत्सुवृष्टये ।
एभ्यश्च विपरीता ये तेऽवृष्टिभयदा घनाः ॥
७. वराहैर्मकरैरुष्ट्रैर्वृकैः कङ्कैस्तथा खरैः ।
शशाकृतयः कुर्युः संध्यायां जलदा भयम् ॥
८. हेम पावकवर्णाश्च विपुलं च जनक्षयम् ।
शब्दं श्वखरगोमायुगृध्रवायससंस्थिताः ॥
९. पूर्वापरासु संध्यासु संग्रामं प्राहुरुन्मुखाः ।
अश्वस्था वारणस्थाश्च येषु योधा नरा इव ॥
१०. मेघेषु संप्रदृश्यन्ते ये पाशाङ्कुशसंनिभाः ।
तथा सवारणाश्चैव विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥
११. क्रव्याद्भिर्भक्ष्यमाणाश्च गृध्रगोमायुवायसैः ।
उद्युध्यन्ते यदा युक्ता राज्ञः संशयकारकाः ॥
१२. मयूराट्टालपद्मेन्दुकाशनीलनिभानि तु ।
संध्यास्वभ्राणि दृश्यन्ते तीव्रं वर्षमुपस्थितम् ॥
१३. सविद्युत्सधनुष्कश्च सघोषः शिखिसंनिभः ।
संध्यायां सिंहवत्त्वेषो विद्यादुदकवाहकम् ॥
१४. नीललोहितपर्यन्तं कृष्णग्रीवं सविद्युतम् ।
विवर्णं परिघं दृष्ट्वा विद्यादुदकवाहकम् ॥
१५. त्रिवर्णे परिघे वापि त्रिवर्णैर्वा बलाहकैः ।
उदयास्तमयमियाद्यदि सूर्यः कदाचन ॥
१६. पृथिव्यां राजवंश्यानां महद्भयमुपस्थितम् ॥
लोकक्षयकरं विद्याद्यदि देवो न वर्षति ॥
१७. मत्स्यरूपी सादृश्येन यद्युत्तिष्ठेत भास्करः ।
स्फुटरश्मिस्तदादित्यः सनिर्दहति मेदिनीम् ॥

६१.१.१८.एतद्दृष्ट्वा महद्रूपमादित्ये समुपस्थिते ।
विस्पष्टं ज्योतिर्विस्पष्टं सद्योवर्षस्य लक्षणम् ॥
१९. ग्रहसंछादनं चापि गर्जनं प्रतिगर्जनम् ।
परस्परेण कुर्वन्ति मेघा वेगसमीरिताः ॥
२०. तस्मिंश्चतुर्विधे युद्धे मेघानां व्योमचारिणाम् ।
उत्पद्यन्ते त्रयो भावास्तन्मे निगदतः शृणु ॥
२१. गर्जमानेषु मेघेषु वारणः प्रतिगर्जति ।
तां दिशं योजयेत्सेनां गर्जनं यत्र मीयते ॥
२२. विद्युतोऽभ्रविकारेषु शक्रायुधनिभायुधाः ।
स्फोटिताशनिघण्टाश्च यां दिशं मेघवारणाः ॥
२३. संघट्टेषु समुद्भूताः परस्परजिघांसवः ।
तां दिशं योजयेत्सेनां राजा जयति तां दिशम् ॥
२४. ग्रहणाच्छादने चैव गर्जने प्रतिगर्जने ।
एवमेव विधिर्ज्ञेयः सर्वश्चैव विनिश्चयः ॥
२५. परिमाणं न शक्यं तत्समीरितुमशेषतः ।
अपराभ्रविकाराणां रत्नानामिव सागरे ॥
२६. संध्या योजनभाक्प्रोक्तास्तनितं तु द्वियोजनम् ।
परिघः पञ्चयोजन्यः प्रत्यादित्यस्त्रियोजनः ॥
२७. निर्घातः षट्तथा विद्युत्परिवेषो द्विषड्यतः ।
दाहं योजनकं चापि उल्का त्वमितभागिनी ॥
२८. दशसंस्था समाप्तानि शायाङ्गानि प्रमाणतः ।
अङ्गानित्वान्तरिक्षाणि विज्ञेयानि समासतः ॥
विज्ञेयानि समासतः ॥ १ ॥

इति परिवेषलक्षणं समाप्तम् ॥ ६१ ॥

६२. भूमिकम्पलक्षणम्

१. १-२. परिचय : इस परिशिष्ट के उपदेशक गर्ग हैं। इसमें भूमिकम्प को चार देवों से सम्बद्ध माना गया है।

१. ३-५. भूकम्प के सात दिन के भीतर यदि लक्षण प्रकट हों तो उसे अग्नि द्वारा उत्पन्न मानना चाहिये।

१. ६-७. शौनक द्वारा उपदेशित कृत्य।

१. ७-९. इस प्रकार के भूकम्प के प्रभाव।

२. १-७. वायु से उत्पन्न भूकम्पों का वर्णन।

३. १-५. आप: से उत्पन्न भूकम्पों का वर्णन।

४. १-५. इन्द्र से उत्पन्न भूकम्पों का वर्णन।

४. ५-७. निष्कर्ष : प्रत्येक के लिये आवश्यक महाशान्ति के स्वरूप।

भूमिकम्पलक्षणम्

६२.१.१. ॐ चत्वारो भूमिकम्पास्तु गर्गः प्रोवाच बुद्धिमान्।
अग्निर्वायुस्तथापश्च चतुर्थस्त्विन्द्र उच्यते ॥

२. तेषां रूपं विकारांश्च व्याख्यास्यामोऽनुपूर्वशः।
यज्ज्ञात्वा बुद्धिमान्धीरो निर्दिशेद्विविधं फलम् ॥

३. प्रकम्पितायां भूमौ चेत्सप्ताहाभ्यन्तरेणा तु।
भवेयुरत्र संग्रामा राज्ञां मृत्युभयप्रदाः ॥

४. राज्ञां विरोधो भवति मरणानि भवन्ति च।
ताम्रः सूर्यश्च चन्द्रश्च पीताश्च मृगपक्षिणः ॥

५. दिशः सर्वा भवेयुश्च सूर्योदयसमप्रभाः।
यदेतल्लक्षणोपेतं विद्यादग्निप्रकम्पितम् ॥

६. तस्मिन्भवति निर्देशः शौनकस्य वचो यथा।
हिरण्यं च सुवर्णं च यच्चान्यद्विद्यते गृहे ॥

७. सर्वमेतत्परित्यज्य कर्तव्यो धान्यसंग्रहः।
राष्ट्राणि संदहेदग्निर्ग्रामांश्च नगराणि च ॥

६२.१.८. संग्रामाश्चात्र वर्तन्ते मांसशोणित कर्दमाः ।
राजानश्च विरुध्यन्ते देवश्चात्र न वर्षति ॥

९. एवमेतत्प्रकम्पानां गर्हितमग्निकम्पितम् ॥ १ ॥

२. १. प्रकंपितायां भूमौ चेदिति ॥

२. अतिप्रचण्डो बहुलो वायुर्भवति दारुणः ।
शर्कराकर्षणश्चापि दिक्षु चैव विदिक्षु च ॥

३. तदेतल्लक्षणोपेतं विद्याद्वायुप्रकम्पितम् ।
शस्त्रैरावरणं कुर्यात्प्राकारं परिखां तथा ॥

४. न तदा प्रवसेद्ग्रामं ज्ञात्वात्मानं तु गोपयेत् ।
संग्रामाश्चात्र वर्धन्ते मांसशोणितकर्दमाः ॥

५. विरुध्यन्ते च राजानो मरणानि भवन्ति हि ।
राजपुत्रसहस्राणां भूमिः पिबति शोणितम् ॥

६. मासं विंशति रात्रं वा देवस्तत्र न वर्षति ।
द्वाभ्यां गताभ्यां मासाभ्यां परं स्याद्बहुलं जलम् ॥

७. दष्टं दूषयते चात्र क्षतबद्धानि चाधिकम् ।
एषामेव तु कम्पानां गर्हितं वायुकम्पितम् ॥ २ ॥

३. १. प्रकम्पितायां भूमौ ॥

२. वर्षन्तस्तु समायान्ति महामेघाः समन्ततः ।
नक्राश्च शिशुमाराश्च कूर्मा मकरसंस्थिताः ॥

३. अभ्राकृतिषु दृश्यन्ते ग्रसन्तश्चन्द्रभास्करौ ।
तदेतल्लक्षणोपेतं विद्यादम्बु प्रकम्पितम् ॥

४. पर्वतेषु वपेद्बीजमूषरे जाङ्गले तथा ।
तत्रोप्तं नन्दते बीजमन्यत्र भुवि नश्यति ॥

५. उदजानि तु पुष्पाणि मूलानि च फलानि च ।
गच्छन्ति तत्र वृद्धिं च सत्त्वान्युदकजानि च ॥

६२.३.६. क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सुवृष्टिं चात्र निर्दिशेत् ॥ ३ ॥

४. १. प्रकम्पितायां भूमौ ॥

२. गम्भीरं गर्जमानस्तु मेघ आयाति पार्थिवः ।
स्निग्धो ह्यञ्जनसंकाशः सुमहत्पर्वतोपमः ॥

३. वित्रासयन्दिशः सर्वा द्रुतं चापि प्रवर्षति ।
इन्द्रायुधं भवेच्चात्र विद्युत्स्तनितमेव च ॥

४. सुवृष्टिं क्षेममारोग्यं सुभिक्षं परमा मुदः ।
यज्ञोद्भवैस्तु मोदन्ते आनन्दैर्मोदिताः प्रजाः ॥

५. एतेषां भूमिकम्पानां प्रशस्तं हीन्द्रकम्पनम् ।
जानीयाल्लक्षणैरेतैः सर्वमेव शुभाशुभम् ॥

६. एतेषु त्रिषु कम्पेषु अथर्वा शास्त्र कोविदः ।
माहेन्द्रीममृतां वापि कुर्याच्छान्ति सदक्षिणाम् ॥

७. इन्द्रकम्पे तु विधिवदैन्द्रैर्मन्त्रैर्विधानवित् ।
तत्फलस्य प्रधानार्थं जुहुयाच्च जपेत्तथा ॥

जुहुयाच्च जपेत्तथेति ॥ ४ ॥

इति भूमिकम्पलक्षणं समाप्तम् ॥ ६२ ॥

६३. नक्षत्रग्रहोत्पातलक्षणम्

परिशिष्ट के अन्त में जो शब्द आया है केवल उसी आधार पर उपरोक्त शीर्षक दे दिया गया है। इसका अधिक उपयुक्त शीर्षक 'परिवेषलक्षणम्' होगा और यदि ६१वीं परिशिष्ट का गलती से यही शीर्षक न दे दिया गया होता तो यहाँ निःसन्देह इसे ही रक्खा गया होता।

१. १. परिचय।

१. २–४. अपने देवों के अनुरूप परिवेषों के वर्ण।

१. ५–७. परिवेष का आरम्भ और उसकी परिभाषा।

१. ८–१०. परिवेषों के लक्षणों की सूची।

२. १–४. चौर्य, युद्ध, अग्नि और मृत्यु के द्योतक परिवेष।

२. ५–७. वायु परिवेष।

२. ७–८. यदि किसी परिवेष के तीन दिन के भीतर ही वर्षा और तेज हवा प्रकट हो तो उस परिवेष का प्रभाव कम हो जाता है। अन्यथा निम्नलिखित नियमों के अनुसार फल होते हैं।

२. ८–३. १. यदि परिवेष में कोई उल्का प्रवेश कर लेती है या उसके चारों ओर तीन या अधिक मण्डल प्रकट होते हैं।

३. १–८. परिवेष में सम्मिलित ग्रह अथवा ग्रहों की संख्या के अनुसार नियम।

३. ८–४. १. पक्ष की जिस तिथि को परिवेष प्रकट होता है उसके अनुसार नियम।

४. १–५. अगले से एक बाद वाले खंड के श्लोक।

४. ५.–९. परिवेष के वर्ण का फल।

४. १०–५. २. युद्ध के लिये शुभाशुभ फल।

५. ३–४. इन श्लोकों का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं है।

५. ५–६. महाशान्ति के रौद्री, वैश्वदेवी और अभया प्रकार।

नक्षत्रग्रहोत्पातलक्षणम्

६३.१.१. ॐ अतः परं प्रवक्ष्यामि नक्षत्रेषु ग्रहेषु च।
परिवेषान्बहुविधान्नानाविधफलोदयान् ॥

२. ऐन्द्रवारुणकौबेरान्रक्तपाण्डुरमेचकान्।
पाण्डून्बभ्रूंश्च पीतांश्चानिलानलयमात्मनः ॥

६३.१.३. प्राजापत्यांश्च रौद्रांश्च नैर्ऋत्यांश्चापि भार्गव ।
हरिशबलकापोतान्परिवेषानुवाच ह ॥
४. नवैते परिवेषाणां वर्णा दैवतयोनयः ।
बहुत्वमेते गच्छन्ति अन्योन्यगुणसंश्रयात् ॥
५. गृहीत्वाभ्ररजः सूक्ष्मं वर्णयोः संनिपत्य च ।
पितामह नियोगेन मारुतो मण्डलीकृतः ॥
६. शुभाशुभार्थं लोकानां ज्योतींष्यवरुणद्धि सः ।
तस्य रूपं गुणं ज्ञात्वा गुणदोषः प्रचक्ष्यते ॥
७. नक्षत्रतारकाणां च परतो विषयस्य च ।
निविष्टो भाव आगन्तुं परिवेष इति स्मृतः ॥
८. घृततीक्ष्णार्ककिरणे प्रसन्ना मृदुमण्डले ।
प्रस्निग्धे चैकवर्णे च मांसले व्यक्तलक्षणे ।
९. लोहिताक्षौ क्षुरक्रान्ते सरमौ पीतमण्डले ।
आ प्रदोषाद्विमध्याह्नाद् आ नक्षत्रान्तगामिनि ॥
१०. सहाभ्रभारस्तनिते परिवेषे प्रकाशिनि ।
अनृतावपि जानीयान्महद्भयमुपस्थितम् ॥ १ ॥
२. १. कृष्णनीहारतिमिरे प्रकृत्याक्रान्तमण्डले ।
विकारैर्नाभसैः कीर्णे स्फुलिङ्गोपचितेऽशुभे ॥
२. विषमे विगतस्नेहे विध्वस्तकलुषाभ्रके ।
त्रिषु संधिषु भूयिष्ठं दर्शनं चोपगच्छति ॥
३. द्वित्रिनक्षत्रगे वापि नक्षत्रार्धगतेऽपि वा ।
प्रदीप्तैर्वा रसद्भिश्च वीक्ष्यमाणे मृगद्विजैः ॥
४. परिवेषे विजानीयान्नृपाद्यानामुपस्थितम् ।
सप्तरात्राद्भयं घोरं चौरशस्त्राग्निमृत्युभिः ॥
५. धूमकर्बुरमाञ्जिष्ठरक्तपीतासिताकृतिः ।
भवत्येकतरे पार्श्वे रूपेणाविलमण्डलः ॥

६३.२.६. तनुना चात्र जालेन समन्तात्परिवेष्टितः ।
मुहुर्मुहुश्च विलयं संस्थानं चापि गच्छति ॥
७. सोऽपि वाय्वात्मको ज्ञेयो मृदुमन्दर्दिवाकरः ।
परिवेषोऽल्पफलदो वातवृष्टिः प्रबृंहते ॥
८. अथ चेद्वातवृष्टिस्तु त्रिरात्रान्नोपजायते ।
जलज्वलनचौराणां प्रादुर्भावः प्रजायते ॥
९. परिवेषगतोल्कास्याद्द्विमण्डल परिग्रहे ।
द्वाभ्यां सेनापतिभयं युवराजभयं त्रिभिः ॥ २ ॥
३. १. मण्डलैः पुररोधः स्यात्त्रिभिर्भ्यधिकैर्ध्रुवम् ।
त्रीणियत्रावरुध्यन्ते नक्षत्रग्रहचन्द्रमाः ॥
२. त्र्यहाद्वर्षं समाचष्टे स मासाद्विग्रहं वदेत् ।
सेनापति कुमाराणां सेनायाश्चापि विद्रवः ॥
३. लोहिताङ्ग परिवेषे शस्त्राग्न्युत्पात एव च ।
स्थावराः कर्षकाश्चापि क्षुद्रधान्यं च पीड्यते ॥
४. वातवृष्टिं च जनयेत्परिविष्टः शनैश्चरः ।
राज्यमेव हि गर्भाश्च राहुः पीडयते ध्रुवम् ॥
५. व्याधींश्चैव प्रजनयेत्परिविष्टश्च चन्द्रमाः ।
क्षुच्छ्वासाग्निभयं घोरं राजतो मृत्युतस्तथा ॥
६. परिविष्टोऽम्बरे केतुः शिखिनश्च हिनस्ति सः ।
द्वयोः संग्राममाचष्टे ग्रहयोः परिविष्टयोः ॥
७. क्षुद्भयं त्रिषु विज्ञेयं वर्षनिग्रह एव च ।
चतुर्भिर्म्रियते राजा सामात्यः सपुरोहितः ॥
८. युगान्त इव जानीयात्परिविष्टेषु पञ्चसु ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान्हन्यात्प्रतिपदादिषु ॥
९. ग्रामान्पुरं च कोशं च पञ्चम्यादिष्वतस्त्रिषु ।
अष्टम्यां युवराजानं चमूपालान्हिनस्ति सः ॥

६३.३.१०.नवम्यां च दशम्यां च एकादश्यां च पार्थिवान् ।
त्रयोदश्यां बलक्षोभो द्वादश्यां रुध्यते पुरम् ॥ ३ ॥

४. १. राजपत्नीं चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां नृपस्य च ।
पुरोहितामात्यनृपा हन्युरन्योन्यमेव तु ॥

२. पुररोधं विजानीयात्परिविष्टे बृहस्पतौ ।
मन्त्रिणो लेखकाश्चापि रुध्यन्ते स्थावराणि च ॥

३. वृष्टिं चापि विजानीयात्परिविष्टे बुधे ग्रहे ।
यायिनः क्षत्रियाश्चापि राजपक्षश्च पीड्यते ॥

४. धान्यार्घं च प्रियं कुर्यात्परिविष्टो भृगोः सुतः ।
ताराग्रहपरिवेषा नक्षत्राणां च केवलम् ॥

५. महाग्रहोदयं कुर्यान्मरणं वा महीपतेः ।
रक्ते पीतेऽसिते ताम्रे कृष्णे च हरितेऽरुणे ॥

६. क्षुच्छस्त्रव्याधिवर्षाग्निमृत्युसस्यानिलानयोः ।
वर्णानां च भयं ज्ञेयं यथा वर्णपरिग्रहः ॥

७. कापोतः शबलश्चापि तिर्यग्योनि भयावहौ ।
मयूरगलशङ्खेन्दुमुक्तागोक्षीरपाण्डुराः ॥

८. मधुकघृतमण्डाभा दूर्वाश्यामाश्च वृष्टये ।
विमुक्तारिष्टकाकारास्तैलामलकसन्निभाः ॥

९. स्निग्धामलजलप्रख्या दर्पणाभाश्च पूजिताः ।
बभ्रवः परुषा रुक्षा हरिद्रारुणसंनिभाः ॥
विच्छिन्ना लोहिता ह्रस्वा विवर्णाश्च शुभावहाः ।

१०. यायिनां स्थावराणां च तथैवाक्रन्दसारिणाम् ॥
परिवेषान्विजानीयाद्बाह्याभ्यन्तरमध्यतः ॥ ४ ॥

५. १. संरक्तश्यामकलुषो येषां भागो हतप्रभः ।
तेषां पराजयं विद्यात्स्निग्धे श्वेते च वै जयः ॥

६३.५.२. येनयेनाभ्रवर्णेन यो यो भागोऽनुरज्यते ।
तत्तत्तेषां फलं विद्यात्तद्भूत्यादिषु कीर्तितम् ॥
३. छिद्राण्येतान्यतश्चाहुर्महान्ति विमलानि च ।
तैर्द्वारैः पार्थिवो यायात्पन्थानस्ते विकण्टकाः ॥
४. कालाम्बुदपरिस्रावैर्ग्रहोदयनिमित्तकम् ।
इत्यर्थं जन्म सर्वेषां शेषमुत्पातलक्षणम् ॥
५. रौद्री सदक्षिणा शान्तिरुत्पातेषु प्रकीर्तिता ।
समुच्चये तु विज्ञेया वैश्वदेव्यभया तथा ॥
६. अथर्वोत्पातहृदयं ज्ञात्वा स्वयमनातुरः ।
प्रयुञ्जीत महाशान्तिं सर्वकल्मषनाशिनीम् ॥
सर्वकल्मषनाशिनीमिति ॥ ५ ॥

इति नक्षत्रग्रहोत्पातलक्षणं समाप्तम् ॥ ६३ ॥

६४. उत्पातलक्षणम्

१. १. परिचयः यह उपदेश अङ्गिरा और उशना के अनुसार है।
१. २–३. उत्पात की परिभाषा और उसका वर्गीकरण।
१. ४–२. ७. भूकम्प और चक्रवात।
२. ८–३. १. गन्धर्व नगर।
३. २–४. ८. राजा और राष्ट्र के विनाश की सूचना देने वाले अपशकुन।
४. ९–५. ५. दुर्भिक्ष-सूचक लक्षण।
५. ६–६. १. युद्ध-सूचक लक्षण।
६. २–७. ७, गर्ग के अनुसार राजा और राष्ट्र के विनाश की सूचना देने वाले लक्षण।
८. ८–८. २. घटित होने वाले ग्राम या नगर के लिये महान विपत्ति के सूचक शकुन।
८. ३–४. विभिन्न जातियों के विनाश के सूचक शकुन।
८. ५–७. वृक्ष लक्षण।
८. ८. सर्प और मेढक लक्षण।
८. ९–१०. १. ऐसे शकुन जो कुछ ऋतुओं में ही अनुकूल होते हैं। ये श्लोक बृहत्संहिता ४५.८३ और बाद में भी आते हैं जहाँ ऋषिपुत्र को इनका प्रणेता, कहा गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि सूची का आरम्भ 'शिशिर' से होता है।
१०. २–३. विक्षिप्तों, बालकों और स्त्रियों के लक्षण।
१०. ४–६. शकुनों द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले प्रभाव।
१०. ७–१०. शकुनों के प्रगट होने पर राजा को महाशान्ति का रौद्री प्रकार सम्पन्न कराना चाहिये।

उत्पातलक्षणम्

६४.१.१. ॐ यान्प्रोवाचाङ्गिराः पूर्वं यांश्च वेदोशनाः कविः।
तानहं संप्रवक्ष्यामि उत्पातांस्त्रिविधानपि॥
२. प्रकृतेरन्यथा भावो यत्रयत्रोपजायते।
तत्र तत्र विजानीयात्सर्वमुत्पातलक्षणम्॥
३. पार्थिवं चान्तरिक्षं च दिव्यं चोत्पातलक्षणम्।
नक्षत्रोपद्रवेषूक्तं यथाविधि तथैव तत्॥

६४.१.४. तेषूत्पातगणेष्वाहू रसातलसमुद्भवान् ।
निर्घातान्भूमिकम्पांश्च कीर्त्यमानान्निबोधत ॥
५. वारुणाग्नेयवायव्याः कम्पयन्ति वसुंधराम् ।
शुभाशुभार्थं लोकानां रात्रावहनि चक्रवत् ॥
६. तेषां वक्ष्यामि कम्पानां लक्षणानि फलानि च ।
यथोवाचोशनाः ख्यातान्नारदायस्म पृच्छते ॥
७. सप्ताहाभ्यन्तरे कम्पे भवेद्वज्रधरात्मके ।
सस्वनैराप्तपर्यन्तं स्वस्तिकाभ्रघनैर्नभः ॥
८. सैन्द्रचापायुधा कम्पाद्विद्युद्रणगवाक्षकैः ।
पाशोर्मिनगराकारैर्नगनागनिभैर्घनैः ॥
९. नभसोऽन्तं च सेविन्यो विद्युतः स्वार्क संनिभाः ।
प्रान्ते सुसंवृताश्चापि शीतशीतांश्च मारुताः ॥
१०. धाराङ्कुरपरिस्रावैर्नीलोत्पलदलप्रभैः ।
स्वनद्भिश्छाद्यते व्योम कम्पयेद्वरुणः स्वयम् ॥ १ ॥
२. १. तारापातैर्दिशां दाहैरुल्का पातैश्च सस्वनैः ।
हाहाकृतमिवाभाति प्रदीपितपथं नभः ॥
२. सप्ताहाभ्यन्तरे वापि क्षितौ वह्निः प्रकुप्यते ।
स आग्नेयो भवेत्कम्पो राजराष्ट्रभयावहः ॥
३. निःप्रकाशमिवाकाशे भास्करो नातिभास्करः ।
दिशस्तु न प्रकाशन्ते दुःखा ऋता इव योषितः ॥
४. सघोषा मारुता रूक्षा वान्ति शर्करकर्षिणः ।
सप्ताहाभ्यन्तरे कम्पे मारुतेऽति भयावहे ॥
५. सुभिक्षक्षेमदौ कम्पौ विज्ञेयावैन्द्र वारुणौ ।
वायव्याग्नेयजौ कम्पौ राजराष्ट्रभयावहौ ॥
६. यस्यांयस्यां दिशि धरा विरौति विकृतस्वरा ।
तस्यांतस्यां दिशि भयं सार्धं स्यादधिकारिभिः ॥

६४. २. ७. निर्घाता भूमिकम्पाश्च ससमासमुदाहृताः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि शेषमुत्पातलक्षणम् ॥
८. प्राग्याभ्यापरसौम्यानां गन्धर्वनगरं तथा ।
रक्तपीतासितैश्चैव वर्णैर्भिक्षु प्रदृश्यते ॥
९. राज्ञः सेनापतेश्चापि युवराजपुरोधसाम् ।
व्यासनं मरणं वापि विज्ञेयमनुपूर्वशः ॥
१०. वर्णानां च भयं ज्ञेयं यथावर्ण परिग्रहात् ।
विदिक्षु च विवर्णासु पीडा ज्ञेया विवर्णिनाम् ॥ २ ॥

३. १. सततं दृश्यमाने च राजराष्ट्रभयावहम् ।
आज्ञाधिकारिणां च पीडा ज्ञेया यथाविधि ॥
२. विरुद्धयोनिगमन मन्यसत्त्वप्रसूतयः ।
हस्तपादाक्षिशिरसामधिकानां प्रदर्शनम् ॥
३. अभ्यङ्गता च संयोगे गतिहीनं च चेष्टितम् ।
विरुद्धानां च सत्त्वानामन्योन्यप्रतिसंगमम् ॥
४. चलत्वमचलानां च चलानामचलक्रिया ।
भाषितं चाप्यभाषाणां अशब्दानां च भाषणम् ॥
५. अनग्नौ दर्शनं चाग्नेः शीतोष्णस्य विपर्ययः ।
लोहादीनां प्लवश्चाप्सु नोदके चाम्भसां स्रवः ॥
६. अकालपुष्पप्रसवः सस्याः पञ्चचतुर्गुणाः ।
संयोगो लाङ्गलानां च प्रभानां चेष्टितानि च ॥
७. विचित्रैर्दैवतासद्भिर्वृक्षप्रस्रवणानि च ।
दिशो धूमान्धकाराश्च दीप्ताश्च मृगपक्षिणः ॥
८. रजस्तमाश्रितं व्योम कलुषौ चन्द्रभास्करौ ।
वस्त्रमांसाम्भसां दीप्तिरागप्रज्वलितानि च ॥
९. अकस्माद्गोपुराट्टाल शैलप्रासादवेश्मनाम् ।
दरणं ज्वलनं वापि कम्पो धूम प्रवर्तनम् ॥

६४.३.१०.अभीक्ष्णा मारुताश्चण्डा वान्ति शर्करकर्षिणः ।
संहता मण्डलानां च नीललोहितपीतकाः ॥ ३ ॥

४. १. ध्वजस्तम्भेन्द्रकीलानां शुष्कचैत्यादिभिः सह ।
छिन्ने भिन्ने द्रुमाणां च स्कन्धशाखाङ्कुरोद्भवः ।

२. गीतानां च मृदङ्गानां वादित्राणां च निस्वनाः ।
भवेयुराकाशपथे सगन्धर्वपुरोगमाः ॥

३. छायादर्शनमद्रव्ये विरात्रे विरुतानि च ।
दिवारात्रिचराणां च विपरीत प्रचारता ॥

४. निरभ्रवृष्टयश्चैव निरभ्रस्वनितानि च ।
सस्वनानामधूमानामुल्कानां पतनं दिवा ॥

५. इन्दोरर्कस्य वा चापि पांस्वश्मादिषु दर्शनम् ।
अभीक्ष्णपरिवेषाश्च कलुषारविसोमयोः ॥

६. मयूरकोकिलादीनां मदावाप्तिरनार्तवा ।
वनानां च नगानां च देवतानां च निर्गमाः ॥

७. आरण्यानां च सत्त्वानां पुरग्रामनिवेशनम् ।
अभूतानां प्रवृत्तिश्च प्रवृत्तानां च नाशनम् ॥

८. एतदुत्पातजं राज्ञो यस्य देशेऽभ्युदीर्यते ।
तस्य देशो विनश्येत क्षीयते च सपार्थिवः ॥

९. त्यजन्ति वापि यं देशे पाषण्डा द्विजदेवताः ।
विद्वेषं वापि गच्छन्ति सोऽपि देशो विनश्यति ॥

१०. नर्तनं च कुशूलानां धान्यराशेश्च कम्पनम् ।
उलूखलानां संसर्पो मुसलानां प्रवेशनम् ॥ ४ ॥

५. १. चेष्टितं राजदर्वीणां मृद्भाण्डानां तथैव च ।
दहनं चैव शीतानां शब्दाद्युत्तराणि च ॥

२. पुरीषभक्षणं चैव दीनानां मृग पक्षिणाम् ।
ग्राम्याणां दीनवपुषां प्राधान्यस्तनितानि च ॥

६४.५.३. वालुकाङ्गारधान्यानां भक्षणं वापि वृष्टयः ।
पुरद्वारे च बकवद्वायसानां च चेष्टितम् ॥
४. बिडालमत्स्यमज्ञानां जन्तूनां क्षुद्रसंज्ञिनाम् ।
अन्योन्य भक्षणानि स्युरेकसंस्थाश्च रात्रयः ॥
५. मांससस्यान्नविद्वेषः क्रियाव्युपरमस्तथा ।
यस्मिन्देशे प्रदृश्यन्ते तस्मिन्क्षुद्भयमादिशेत् ॥
६. शस्त्रज्वलनसंसर्पः स्थूणीसरणपूरणम् ।
छत्रवस्त्रध्वजानां च वल्मीकेषु ऽदर्शनम् ॥
७. अर्केऽभ्रपरिघादीनां परिवेषोऽर्क चन्द्रयोः ।
लाक्षालोहितवर्णत्वं सर्वेषां च विचारणम् ॥
८. त्वङ्मांसरुधिरास्थीनां मेदोमज्जास्थिवृष्टयः ।
निरभ्रवृष्टयश्चास्य रजतक्षतसप्रभम् ॥
९. प्रघातकम्पनिर्घाता विद्युता चाभ्रपातनम् ।
भवेच्च देवतादीनां शिरोऽधिष्ठान वर्जनम् ॥
१०. स्त्रीणां नृणां च प्रसवं तृणादीनां च मानुषम् ।
अमानुषाणां सत्त्वानां भाषितानि मनुष्यवत् ॥ ५ ॥
६. १. वसाशोणितगन्धत्वं गजदैवतवाजिनाम् ।
यस्मिन्देशे भवेत्तस्मिञ्छस्त्रकोपभयं महत् ॥
२. शोणिताश्रुपरिश्रावः प्रहासोद्वीक्षणक्रिया ।
नृत्यवादित्रगीतानि साक्रोशाभाषितानि च ॥
३. प्रकम्पनं देवतानां तथैव ज्वलनानि च ।
अपां शोषविकाराश्च चेष्टितं च मनुष्यवत् ॥
४. दरणं रसनं राज्ञो वैकृत्योद्वर्तनानि च ।
क्षितेः कम्पप्रहासाश्च रोदनोत्क्रोशनानि च ॥
५. पीठिकाव्यञ्जनं छत्रं शस्त्रकीलकमण्डलौः ।
नीलाङ्गलोहिततलावुदयेऽर्कनिशाकरौ ॥

६४.६.६. चन्द्रार्कोल्काग्रभेदाश्च भास्करेन्दुद्वयं तथा ।
प्रतिस्रोतवहा नद्य इषवः प्रतिलोमगाः ॥
७. दन्तभङ्गाः सकूर्माश्च नरवारणवाजिनाम् ।
छत्रभङ्गः प्रधानस्य इन्द्रचापोद्गमो निशि ॥
८. मांसतैलविपाकाश्च चैत्यतैलपरिश्रवाः ।
शक्रध्वजपताकानां भङ्गक्रव्यादसेवनम् ॥
९. बिडालोलूकयोर्युद्धं नृपप्रासादसंनिधौ ।
पांसुना चावृतं व्योम रजसा तमसापि वा ॥
१०. लोहिताग्निप्रभाकाशं दीप्ता द्विजमृगास्तथा ।
वातावर्तास्तु संध्यासु प्रस्फुरन्तोऽपसव्यगाः ॥ ६ ॥
७.१. मण्डलानि समाजाश्च सर्वतो मृगपक्षिणाम् ।
क्रव्यादैरारसद्भिश्च व्याकुलाः सर्वतो दिशः ॥
२. त्रिरात्रादपरं वृष्टिः प्रनष्टेन्दुदिवाकरौ ।
अनृत ।चापि दृश्येत घोरस्तनित दीर्घता ॥
३. वज्रादयो राहुपुत्रा वृक्षाः शकुनयस्तथा ।
मण्डलाभ्यन्तरस्थाश्च भवन्ति रविसोमयोः ॥
४. आकाशे वा प्रदृश्यन्ते प्रकम्पन्ति च पर्वताः ।
विष्येते रविसोमौ च आभीक्ष्णं तारकास्तथा ॥
५. नर्दनं च बिडालानां क्षीरवृक्षनिषेषणम् ।
खरैर्दीप्तैरुलूकैश्च रसद्भिः सह विग्रहः ॥
६. सिंहासनानि छत्राणि भृङ्गाराः शयनास्तथा ।
कम्पन्त्यकस्माद्भज्यन्ते संसर्पन्त्यारसन्ति च ॥
७. राज्ञां भयकरं सर्वमेतदुत्पातलक्षणम् ।
देशस्य च विजानीयाद्गर्गस्य वचनं यथा ॥
८. संध्यादण्डपरिवेषा रजोऽर्कपरिघादयः ।
मण्डलानां समूहाश्च दिक्षु पीतारुणप्रभाः ॥

६४.७.९. क्रव्यादा वानराद्वारि विस्फूर्जन्त्यारसन्ति च ।
तुण्डैश्च वायसा भूमिं कुट्टयन्तो रमन्ति च ॥
१०. म्लायते माल्यमत्यर्थं गन्धाः कुणपगन्धिनः ।
वस्त्रेषु भक्षभोज्येषु भवत्युत्पातलक्षणम् ॥ ७ ॥
८. १. क्षौद्रं घृतं च दधि च प्रस्रवेत्प्रथिता द्रुमाः ।
सारमेयाः श्मशानेषु रुदन्ति विरुवन्ति च ॥
२. एतदौत्पातिकं ग्रामे यस्मिंश्च दृश्यते पुरे ।
तस्मिन्ग्रामे पुरे वापि विद्यादतिभयं महत् ॥
३. अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधे कुसुमोद्भवः ।
श्वेतलोहितपीतानि कृष्णानीन्द्रायुधानि च ॥
४. एवं वर्णगुणानां च पतनं देववेश्मनाम् ।
ब्रह्म क्षत्रियविट्शूद्रविनाशो राजसंवृताम् ॥
५. रूक्षस्रावा चितिर्वृक्षे तद्भयं सुमहद्भवेत् ।
घृतक्षीरफलास्रावे घृतक्षीराम्भसां क्षयः ॥
६. सुरास्रावे मिथोभेदे रुधिरे राष्ट्रविद्रवः ।
रुधिरे गोविषाणाच्च स्रुते गोब्राह्मणक्षयः ॥
७. फले फलं यदा पश्येत्पुष्पे पुष्पं समावृतम् ।
गर्भाः स्रवन्ति नारीणां युद्धं राजवधोऽपि वा ॥
८. फणाभृतो महत्सर्पान्मण्डूका अथ वृश्चिकाः ।
मण्डूका ग्रसते यत्र तत्र राजावहन्यते ॥
९. हिमपातानिलोत्पाता विकृताद्भुत दर्शनम् ।
कृष्णाञ्जनाभ्रमाकाशं तारोल्कापातपिङ्गलम् ॥
१०. चित्रा गर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु ।
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ ८ ॥
९. १. वज्राशनिमहीकम्पाः संध्यानिर्घातनिस्वनाः ।
परिवेषरजोधूमा रक्तार्कास्तमनोदयाः ॥

६४.९.२. द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेह मधुपुष्पफलोद्गमाः ।
गोपक्षि शब्दवृद्धिश्च शिवानि मधुमाधवे ।
३. तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।
अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥
४. रक्तपीतारुणां संध्यां नभः संक्षुभितार्णवम् ।
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥
५. शक्रायुधपरिवेष विद्युच्छुष्कविरोहणम् ।
अकस्माद्वर्णवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ॥
६. सरोनद्युदपानानां वृद्धिर्वोत्तरणप्लवाः ।
तरणं चार्द्रवेगानां वर्षासु न भयावहम् ॥
७. दिव्यस्त्रीगीतगन्धर्वविमानाद्भुतनिस्वनाः ।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शं च दिवाम्बरे ॥
८. गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु ।
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिर्न पापाः शरदि स्मृताः ॥
९. शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ।
रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥
१०. दीप्तधूमरजोध्वस्ता दिङ्नागा वनपर्वताः ।
उच्चैस्तोयदसोमार्का हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥ ९ ॥
१०. १. ऋतुस्वभावा एते हि दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः ।
ऋतावन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्तेऽशुभदारुणाः ॥
२. उन्मत्तानां च या गाथा बालानां चेष्टितं च यत् ।
स्त्रियश्च यत्प्रभाषन्ते तत्र नास्ति व्यतिक्रमः ॥
३. पूर्वं वदति देवेषु पश्चाद्गच्छतिमानुषे ।
नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥
४. उत्पाताः सर्व एवैते कदाचिद्राजमृत्यवे ।
ज्ञेया देशविनाशाय राहोरागमनाय वा ॥

६४.१०.५.कालाम्बुदपरिस्रावाग्रहाणामुदयाय वा ।
स्वचक्रपरचक्रेभ्यो भये वा समुपस्थिते ॥
६. राष्ट्रे सेनापतौ पुत्रे पुरे वाथ पुरोधसि ।
अमात्ये वाहने दारे नृपतौ वा फलन्ति च ॥
७. एतान्समुत्थिताञ्ज्ञात्वा राजा सबलवाहनः ।
प्रणिपत्य गुरुं ब्रूयाद्भगवन्शमयस्व मे ॥
८. भयं उत्पातजं सर्वं ब्रूहि किं करवाणि ते ।
इत्युक्तः श्रद्दधानेन राज्ञा स्वहितमिच्छता ॥
९. निमित्तानि समालोक्य कृत्वा पावनमादितः ।
महाशान्तिं प्रयुञ्जीत सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥
१०. सर्वरोगप्रशमनीमुत्पातफलनाशिनीम् ।
रौद्रीं कुर्यान्महाशान्तिं श्रद्धया बहुदक्षिणाम् ॥
श्रद्धया बहुदक्षिणामिति ॥ १० ॥

इत्युत्पातलक्षणं समाप्तम् ॥ ६४ ॥

६५. सद्योवृष्टिलक्षणम्

१. १–२. १३. सूर्य, पर्वतों और नक्षत्रों के स्वरूप और प्रगट होने के आधार पर सद्योवृष्टि के लक्षणों का वर्णन किया गया है। वायु की दिशा, मेघों के वर्ण और आकार; अन्तरिक्षीय लक्षणों, जैसे गोधूली के समय आकाश का स्वरूप, सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर मण्डल, गर्जन, विद्युत् और इन्द्रधनुष, आदि के आधार पर सद्योवृष्टि का अनुमान। वृष्टि के सम्बन्ध में जिस परिस्थिति में ज्योतिषी से पूछा जाय, उस समय का नक्षत्र, स्थान, पूछनेवाले का हाथ या वस्त्र भीगा है या नहीं, ज्योतिषी क्या शब्द सुनता या क्या लक्षण देखता है, आदि के आधार पर वृष्टि की सम्भावना। परिशिष्ट की यह सामग्री किस ऐसे स्रोत से ली गई प्रतीत होती है जो, अंशत: ही सही, आर्या छन्द में रचित थी; किन्तु पाठ की जो वर्तमान स्थिति है उसको देखते हुए यह कह सकना असम्भव है कि इसके स्वरूप को लिखनेवालों ने भ्रष्ट कर दिया है या इसके मूल लेखक ने स्वयं ही इसे गद्य रूप प्रदान कर दिया था। इसमें ग्यारह श्लोक ऐसे हैं, जो सम्भवत: किसी भिन्न स्रोत से लिये गये प्रतीत होते हैं।

३. १–८. इसका स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से अथर्व-वत् है और इसमें कहा गया है कि शकुनों के विपरीत स्थितियाँ दुर्भिक्ष की सूचक है; और इस प्रकार की स्थितियों के निराकरण का उपाय भी बताया गया है। इसी में महाशान्ति के ऐन्द्री और वारुणी स्वरूपों को भी सम्मिलित करते हुये, सूखी ऋतु में भी वर्षा उत्पन्न कराने की एक अभिचारीय क्रिया का वर्णन है।

सद्योवृष्टिलक्षणम्

६५.१.१. ॐ अथातो लक्षणोपाङ्गे सद्योवृष्टिलक्षणं व्याख्यास्यामः ॥

२. स्निग्धविमलतलदर्शनेऽर्चिष्मत्यतितेजसि स्थूलरश्मौ हरि-
ज्वलनसंनिभे सवितरि सद्यो वर्षति पर्जन्यो विशुद्धासु च
दिक्षु काकाण्डवर्णेषु गिरिष्वतिरजस्कन्धेषु ह्रदमग्नेषु विमल-
विपुलस्निग्धप्रसन्नहृष्टप्रदर्शनेषु नीचैरिव ज्योतिर्गणेष्वनुकूलेषु
शिवे शीते नीचे मारुते भवति चात्र श्लोकः ॥

३. पूर्वोऽभ्रजननो वायुरितरोऽभ्रविनाशनः ।
उदग्जनयते वृष्टिं वर्षत्येव च दक्षिणः ॥

६५.१.४. अभ्रेषु तिमिरमकरनगनागनक्रग्राहशिशुमारशङ्खद्रुमकूर्मोर्मि-झषमहिषवराहदिग्द्विरदनवकुमुदखण्डाकृतिनलकलशकुड्मला-पीडतोरणावर्तस्वस्तिकवर्धमानरवौह्वरजतमद्राणिपताकाशिव-तात्यास्थानविविधजलचरपक्षिविरुतचतुष्पदाकारेषु नक्तनीलो-त्पलकमलपलाशकोमलेषु ।

५. मुक्तास्फटिकरजतवैडुर्या-
ञ्जनभ्रमरसर्पसंनिकाशेषु ।
क्षौद्रक्षीरपलाश-
धूमदूर्वारजतकनकविद्रुमप्रभेषु ॥

६. द्विगुणत्रिगुणदर्शनेषु मूलवत्सु त्रिशिखरेषु महावर्तेषु तरल-रथनेमिघोषेषु उदधिजलनिर्घोषसंह्रादेषु क्षुब्धदुन्दुभिनिनादेषु किञ्जल्कारविन्दसंनिभेषु वा कुमुदमयूरगलकालकेषु चाभ्र-जालावनादेषु छिन्नाभ्रेषु वा छिन्नमूलेषु कालेषु काञ्चनमनः-शिलोपमेषु सुवर्णपूर्णेषु जलेष्वस्मिन्न चाभ्यन्तरतो देशशोभि-तेषु दक्षिणमारुतेरितपरितते ग्रहान्तर्गतस्तनितगम्भीरनिस्वनेषु अर्धान्तरेषु सद्योवर्षमादिशेत् ॥ अत्र श्लोकौ ॥

७. उदयास्तमये मेघा गर्भभूता दिवाकरे ।
प्रदीप्ता इव चित्रासु विषमासु खकोटिषु ॥

८. पञ्च मारुतपर्यङ्का मणयः काञ्चना इव ।
यत्रयत्रोपलक्ष्यन्ते तत्र तत्र प्रवर्षति ॥

९. घननिचयं विरोहणे वाधिरोहणास्तगमने वा सवितुर्दंष्ट्रा च वर्षदुदधिजीवराद्ररिष्टकवैदूर्योत्पलकमलपलाशधूमशेवालबभ्र-जबकसंनिकाशस्निग्धघोषगम्भीरगभस्तिविद्धनिभैः प्रवृद्धैः समारुतान्वश्विभिः प्रवृद्धस्कन्धशाखान्वितपावनितलरुहान्स-द्योवर्षमादिशेत् ॥ अत्र श्लोकौ ॥

६५.१.१०. अन्तराजितदीप्ताग्निकाञ्चनामलसंनिभैः ।
अभ्रैश्चोत्पलवैदूर्यप्रभावाञ्जनसंनिभैः ॥

११. नीलरश्मिप्ररोहन्तः शाखावन्त इव द्रुमाः ।
यत्र यत्र प्रदृश्यन्ते ध्रुवं तत्र प्रवर्षति ॥ १ ॥

२.१. संध्या च ज्वलनरवीन्दीवरकरण्डतपनीयार्कोदयहरितालनीलोत्पलघृतमधुवन्धुजीवकजपापुष्पकिंशुकराशिसंनिकाशा तथा द्रुतकनकविद्रुमस्फटिकवैडूर्यवर्णे उद्द्योतयन्ति दिशः शान्तमृगशकुनिविशेषाः ॥

२. किंतना स्निग्धा घना गभस्तिमालिनि संप्रति संध्यां दृष्ट्वा नीचैर्निर्मलस्निग्धपरिधि परिवेषाभ्रवृक्षप्रतिसूर्यका लोहिताक्षपक्षिप्ता सार्धे पञ्चकावलिप्तैश्च
महिषवृषवराहादि-
द्विरदजलगणैरिवाचरितविषया
अत्र श्लोकः ॥

३. संध्यैश्च परिवेषैश्च प्रतिघैः प्रतिसूर्यकैः ।
जलजैश्चावृतानिन्द्यैः सद्यः संध्या प्रवर्षति ॥

४. यथालक्षणं शस्त्रकांस्यताम्रायसानां क्लेदवतां खद्योतानि ॥ तत्र स्वेदन्ति कामाहुर्धुनिनाश्च उत्तट प्राकारगोपुरगृहागाधिरोहणपांसुस्नानमण्डजानां

५. प्रचरणे तडागकूपान्सेतुबन्धाक्रीताश्च शिशूनां दृष्ट्वा प्रसंख्यायाश्च चित्राविशाखास्वातिबहुलाषाढाहिर्बुध्न्ययाम्यस्य संग्रहसंपातेषु महद्वर्षसंवृते च त्र्यहादूर्ध्वं चात्र श्लोकौ ॥

६. आक्रीडाश्चैव मत्स्यानां गवां दृष्ट्वागमो गृहम् ।
प्राचुर्यदंशमशकैर्धिष्ण्यानां चाथ मोक्षणे ॥

७. जलाजलजसंतानानेकत्र बिलवासिनाम् ।
पिपीलिकाण्डसंक्रान्तिरथोष्णं चाम्बुवृष्टये ॥

६५.२.८. सत्कृत्य च दैवज्ञं
पल्वलकूपतडागनदीतीरे ॥
साद्दालगृहेषु देशेष्वार्द्रवासार्द्रपाणिः पृच्छेत् ॥ साद्योवर्षमा-
दिशेत् ॥
९. दिश्यैशान्यां वा मधुरस्वररिष्टव्याहरणं जलगोत्रसाभूतं तल्लि-
ङ्गानामन्तरालं बालानां श्रुत्वा दृष्ट्वा वर्षतीति ब्रूयात् ॥
१०. रात्रिस्तनितो दिवा विद्युद्भिर्वाद्यमांक्षेत्रे वर्णः स्निग्धौ द्विगु-
णेन्द्रचाप दर्शने व्योम्नि निरभ्रे पशुविरावाभ्रदण्डाभस्वल्पा-
श्चाभ्रराजिप्रादुर्भावैः सद्योवृष्टिरत्र श्लोकाः ॥
११. प्रतिसूर्यको भवेद्यस्तु रवेरुत्तरतो यदा ।
तोयं निवारयेन्नित्यं दक्षिणे सलिलाह्वयम् ॥
१२. त्रिधा निमित्तसंपन्ना वृष्टिर्भवति पार्थिवी ।
निमित्ते तावदेकस्मिन्पञ्चयोजनिकं भवेत् ॥
१३. येषुयेषु निमित्तेषु नक्षत्रेषु च वर्त्मनि ।
प्रशस्तमिति तेष्वेव प्रादुर्भूतेषु वर्षति ॥ २ ॥
३. १. विपर्ययनिमित्तानि प्रतिबन्धकराणि तु ।
तेषु शान्ति प्रकुर्वीत अथर्वा शमनाय वै ॥
२. समुत्पतन्तु सूक्तेन प्र नभस्वेति चापरे ।
वैतस्यः समिधोऽन्ये तु शमीमय्योऽपरे विदुः ॥
३. समिधां वैतसीनां तु अग्नावर्केन्धनाहुते ।
अहोरात्रिकहोमः स्यात्पर्जन्यो बहुवर्षदः ॥
४. समुत्पतन्तु सूक्तेन मरुतो यजते पाकयज्ञविधानेन यथा
वरुणं वृष्टिकामः ॥ प्र नभस्वेत्यर्चौ द्वे मरुतो यजते वृष्टिकामो
यथा वरुणं जुहोति ॥
५. आदध्यात्समिधः प्लाक्षीः सक्षीरा घृतसंयुताः ।
ततस्तच्छममायाति कृत्स्नमुत्पातलक्षणम् ॥

६५.३.६. ऐन्द्रीं वा वारुणीं वापि महाशान्ति विधानतः ।
वर्षादौ तु प्रयुञ्जीत अवृष्टेस्तु विनाशनीम् ॥
७. वृष्टेर्यानि निमित्तानि तान्यप्रतिहतानि तु ।
भवन्ति वृष्टिदायीनि सस्यवृद्धिकराणि तु ॥
८. वैतसानां तु पत्राणां लक्षं क्षीरसमायुतम् ।
व्रतान्ते भार्गवो जुह्वदवर्षास्वपि वर्षयेदिति ॥ ३ ॥

इति सद्योवृष्टिलक्षणं समाप्तम् ॥ ६५ ॥

६६. गोशान्तिः

१. १–४. परिचय : ऋषियों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अथर्वा द्वारा विहित कर्म का उपदेश दिया।

१. ५–२. ४, इस कर्म की तैयारी।

२. ५–३. २. वास्तविक कर्म।

३. ३–४. इस कर्म का फल।

गोशान्तिः

६६.१.१. ॐ भगवन्देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत।
गवां सर्वेषु रोगेषु प्रतिज्ञातेषु वै प्रभो॥

२. कथं शान्तिं द्विजः कुर्यात्केन मन्त्रेण प्रोक्षणम्।
होममन्त्राश्च के प्रोक्ताः कस्मिंस्तन्त्रे प्रयोजयेत्॥

३. उवाच परिपृष्टः सन्ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे गोशान्तिं महदुत्तमाम्॥

४. अथर्वविहितां सम्यक्सर्वरोगविनाशनीम्।
यां श्रुत्वा सर्वरोगास्तु विद्रवन्ति सहस्रशः॥

५. गोष्ठमध्ये गृहे वापि गोवाटे गोकुलान्तिके।
आचार्यस्तु शुचिर्भूत्वा कारयेन्मण्डलं शुभम्॥ १॥

२. १. स्नातश्चाहतवासाश्च अहोरात्रोषितः शुचिः।
चतुरश्रं चतुर्द्वारमालिखेत्तत्र मण्डलम्॥

२. तस्यमध्ये तु देवेशं गोमयेन निधापयेत्।
ततः क्षीरं घृतं चैव गुग्गुलुं चन्दनागुरुम्॥

२. पुष्पाणि च सुगन्धीनि तथा वै सर्षपांस्तिलान्।
लाजाश्च समिधश्चैव समाहृत्य विचक्षणः॥

४. प्राणांस्तु तर्पयेत्तत्र दधिक्षीरघृतादिभिः।
ततः शान्तिं प्रयुञ्जीत नमस्कृत्वा स्वयंभुवम्॥

६६.२.५. आज्यभागान्ताज्यतन्त्रमभ्यातानानि चैव हि ।
६. नमो ज्ञाय सुरेशाय नमस्ते विश्वतोमुख ॥
नमः कालाय तीक्ष्णाय जटिलाय सर्वभूतहिताय च ॥
इति प्रोक्षणं कुर्यात् ॥ २ ॥
३. १. ततः सर्षपतिललाजा ऊर्ध्वाः समिधश्च दधिमधुघृताक्ता जुहुयात् ॥
२. यजामि ॥ कालाय स्वाहा ॥ पिङ्गलाय तीक्ष्णाय जटिलाय बभ्रवे ॐ भूर् ॐ भुव ॐ स्वर् ॐ भूर्भुवः स्वः, जयविजयाय जयाधिपतये कपर्दिने करालाय त्रिकटाय कटिरमाटरायाङ्गिरसबार्हस्पत्यैककपिलमण्डलमुण्डजटिलकपालेश्वराधिपतये कपर्दिने स्वाहेति ॥
३. एष क्रमस्तु गोशान्तेः संसृष्ट ऋषिभिः पुरा ।
प्रोक्ता स्वयंभुवा चैषा गोशान्तिस्तु हिताय वै ॥
४. यो विप्रः पठतीमां हि गोकुले चापि नित्यशः ।
गावस्तस्य प्रवर्धन्ते महतीं चाश्नुते श्रियम् ॥
महतीं चाश्नुते श्रियमिति ॥ ३ ॥

इति गोशान्तिः समाप्ता ॥ ६६ ॥

६७. अद्भुतशान्तिः

अद्भुतशान्तिः

६७.१.१. ॐ पुरुषः पुत्रदारं वा धनधान्यमथापि वा ।
निमित्तैर्यैर्विनश्येत शान्तिं तत्र निबोधत ॥
२. इन्द्रायुधं भवेद्रात्रौ दृश्यते यस्य कस्यचित् ।
दर्वी करे वा भिद्येत मणिः कुम्भस्तथैव च ॥
३. छत्रं शय्यासनं चैव अन्यद्वापि स्वयं क्वचित् ।
स्त्री हन्याच्च स्त्रियं वापि गौरवघ्रेदुलूखलम् ॥
४. श्वा विवेद्ग्रामनड्वाहं कलिः संपद्यते कुले ।
गजवाजिनो म्रियन्ते विवादो राजकीयकः ॥
५. कुटुम्बमशुभं सर्वमैन्द्राण्येतानि निर्दिशेत् ।
शाम्यन्ति येन सर्वाणि निर्वपेत्पयसं चरुम् ॥
६. समावप्य घृतं तत्र आहुतिं जुहुयादियाम् ।
इन्द्रमिद्देवतातये स्थालीपाकस्य होमयेत् ॥

६७.१.७. इन्द्रः शचीपतिः शक्रो वज्रपाणिः सुरेश्वरः ।
सर्वाद्भुतानां शमनो महाव्याहृतयस्तथा ॥
८. हुत्वा स्विष्टकृतं चैव चरुतन्त्रं समापयेत् ।
विमुक्तोत्पातदोषस्तु जीवेत्तु शरदः शतम् ॥ १ ॥
२. १. उद्दीपिका गृहे यस्य वल्मीका मधुजालकम् ।
अब्जानां मणिके शब्दे तैलं स्थीयत एव वा ॥
२. अशुभा विकृतिर्दघ्नां दुग्धानां वा यदा भवेत् ।
अकस्माच्च प्ररोहेयुर्बीजानि क्रमयस्तथा ॥
३. कार्यो वरुणयागस्तु वारुणीविधिपूर्वकः ।
उदुत्तमं प्रधानं स्यात्पश्चाज्याहुतयस्तथा ॥
४. वरुणः पाशपाणिश्च यादसां पतिरेव च ।
शेषं तु पूर्ववच्चैव चरुतन्त्रं समापयेत् ॥
५. विमुक्तोत्पातदोषस्तु जीवेत्तु शरदः शतम् ॥ २ ॥
३. १. गृहे यस्य पतेद्गृध्र उलूको वा कथंचन ।
कपोतः प्रविशेच्चैव जीवा वारण्यसंभवाः ॥
२. धुर्यौ च पततो युक्तौ गोस्त्रीजन्म च वैकृतम् ।
जायन्ते यमलान्येव घोरः स्वप्नश्च दृश्यते ॥
३. अभिद्रवन्ति रक्षांसि यत्र चैव कुमारकान् ।
उन्निद्रकोऽतिनिद्रो वा अत्यल्पमतिभोजनम् ॥
४. आलस्यं चैवमेतेषां देवता यम उच्यते ।
नाके सुवर्ण इत्येतत्स्थालीपाकस्य होमयेत् ॥
५. यमः प्रेतपतिश्चैव दण्डपाणिस्तथेश्वरः ।
शमनः सर्वाद्भुतानाम्········ ॥ ३ ॥
४. १. अनाग्निरुत्थितो यस्य धूमो वापिगृहे क्वचित् ।
आमं वा ज्वलते मांसं भवेयुर्विस्फुलिङ्गकाः ॥

६७.४.२. छत्रध्वजपताकाश्च ज्वलन्तेतोरणानि च ।
आसनं चैव शय्या च वस्त्राणिकुसुमानि च ॥
३. हस्त्यश्वानां च पुच्छानि वर्षत्यङ्गारवर्षणम् ।
अकाले च दिशां दाहमोषधीनां च पाचनम् ॥
४. हस्तिन्यश्चैव मद्यन्ते अग्निरूपं तदद्भुतम् ।
अग्निं दूतं वृणीमहे स्थालीपाकस्य होमयेत् ॥
५. अग्निर्हिरण्यपतिश्च अर्चिष्पाणिस्तथेश्वरः ।
शमनः सर्वाद्भुतानाम् .... ॥ ४ ॥
५. १. सुवर्णं रजतं वज्रं वैडूर्यं मौक्तिकानि च ।
प्रवालवस्त्रनाशश्च भिक्षाणां च विपर्ययः ॥
२. आरम्भाश्च विपद्यन्ते न सिद्धिः कर्मणामपि ।
चरुर्वैश्रवणस्तत्र अभित्यं देवमृक्स्मृता ॥
३. वैश्रवणो यक्षपतिरर्थपाणिस्तथेश्वरः ।
शमनः सर्वाद्भुतानाम् .... ॥ ५ ॥
६. १. अथ यस्य स्वनक्षत्रे उल्का निर्घात एव वा ।
राहुर्ग्रसति चन्द्रार्कौ कबन्धं दर्पणे भवेत् ॥
२. पतेत्स्वयं वा मुसलं देवता वा कथं चन ।
उन्मीलते चैव यदा तथा चापि निमीलते ॥
३. प्रछिद्यते च यदि वा तथा वापि प्रकम्पते ।
प्रयातो वापि दृश्येत प्रतिस्रोतो नदी वहेत् ॥
४. विमले नैवार्कछाया प्रतीपा वापि दृश्यते ।
परिवेषस्त्वनभ्रेषु दृश्यते चन्द्र सूर्ययोः ॥
५. कोशात्खड्गा निर्गिरन्ते तूणाच्चैव तु सायकाः ।
अनाहतानि वाद्यन्ते नदन्ते शब्दमातुरम् ॥
६. चरुणा वैष्णवेनैषां यागः कर्तव्य एव तु ।
इदं विष्णुः प्रधानं स्यात्पश्चाज्या हुतयस्तथा ॥

६७.६.७. सर्वभूतपतिर्विष्णुश्चक्रपाणिस्तथेश्वरः ।
शमनः सर्वाद्भुतानाम् ········· ॥ ६ ॥

७. १. अतिवातो यत्र भवेद्रूपं वा यत्र वैकृतम् ।
खरकरभमहिषा वराहा व्याघ्रसिंहकाः ॥

२. गृध्राश्च तथा गोमायुः कृकलासा वदन्ति च ।
मांस पेशं च रुधिरं पांसुवृष्टिस्तथैव च ॥

३. वायुरूपमिदं सर्वमद्भुतं परिकीर्तितम् ।
वात आ वातु भेषजं वायवा यहि दर्शतेति स्थालीपाकस्य होमयेत्॥

४. वायुर्महान्नभपतिर्वज्रपाणिस्तथेश्वरः ।
शमनः सर्वाद्भुतानां महाव्याहृतयस्तथा ॥

५. हुत्वा स्विष्टकृतं चैव चरुतन्त्रं समापयेत् ।
विमुक्तोत्पात दोषस्तु जीवेत्तु शरदः शतम् ॥ ७ ॥

८. १. अथ चेदन्यशाखासु कर्ताभवति वेदवित् ।
जप्त्वा स ऋग्यजुःसाम्नां शतमात्रं समाहितः ॥

२. गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा यजमानः समाहितः ।
वाचयेत्तमुपाध्यायं वस्त्रेण कनकेन वा ॥

३. दृष्टं चैवाद्भुत यस्मिंस्तच्चापि प्रतिपादयेत् ।
एतास्तु दक्षिणाः सर्वाः शक्तियुक्तो न हापयेत् ॥

४. यजमानस्तत्सुतो वा यः स्वयं कर्तुमर्हति ।
ब्राह्मणाय विशेषेण दद्यात्तां दक्षिणां शुभाम् ॥

५. जप्त्वाथर्वशिरश्चैव ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयेत् ।
शक्त्याथ भोजनं चैव कुर्याद्विप्रेषु पूजनम् ॥

६. एतदेवं समाख्यातमद्भुतानां विशोधनम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥

७. मरणं न भवेत्तस्य न दुःखं न दरिद्रता ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणिधर्मे चास्य मतिर्भवेत् ॥

६७.८.८. एतत्पुण्यं पवित्रं च देवतायागपूजनम् ।
सर्वशान्तिकरं चैव प्रतिपुरुषं निबोधत ॥
प्रतिपुरुषं निबोधतेति ॥ ८ ॥
इत्यद्भुतशान्तिः समाप्ता ॥ ६७ ॥

६८. स्वप्नाध्यायः

१. १–३. परिचय। दो स्रोतों का उल्लेख; शुक्रचार की परिशिष्ट को पद्मयोनि द्वारा और स्वप्नाध्याय को (जिसका शकुन विश्लेषण के विशेषज्ञों ने शौनक को उपदेश दिया था) क्रोष्टुकि द्वारा रचित बताया गया है।

१. १–८. मनुष्यों के स्वभाव का ग्रह किस प्रकार निर्धारण करते है।

१. ९–१२. पित्तप्रकृति के मनुष्यों की दैहिक विशिष्टतायें ;

१. १३–१९. इस प्रकृति से उत्पन्न स्वप्न।

१. २०–२९. कफ प्रकृति के मनुष्यों की दैहिक विशिष्टतायें ;

१. ३९–३७. इस प्रकृति से उत्पन्न स्वप्न।

१. ३७–४४. वात प्रकृति के मनुय्यों की दौहिक विशिष्टतायें ;

१. ४४–४८. इस प्रकृति से उत्पन्न स्वप्न।

१. ४८–४९. मिश्रित प्रकृति।

१. ५०–५०. सामान्य नियम। यह स्थल कुछ अस्पष्ट है; किन्तु इसमें निम्नलिखित बातों का शिक्षण निहित प्रतीत होता है : ऐसे स्वप्न जो किसी प्रकार की मानव प्रकृति से उत्पन्न नहीं होते; और ऐसे स्वप्न भी जो किसी इन्द्रिय को उत्तेजित करने वाले पदार्थ से उत्पन्न नहीं होते वे दिव्य कारणों से उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिज स्वप्नों के महत्त्व के सम्बन्ध में मतभेद; जिन स्वप्नों को स्मरण न किया जा सके उनका महत्व नहीं पर होता; क्रमिक स्वप्नों का विश्लेषण; स्वप्नों का प्रभाव उनकी अनुभूति के समय पर आधारित होता है।

२. १–५६. किसी स्वप्न विशेषका महत्त्व।

२. ५७. क्रमिक स्वप्नों में से अन्तिम ही महत्वपूर्ण होता है।

२. ५८–५९. रात्रि के जिस प्रहर में स्वप्न आते हैं उसके अनुसार ही स्वप्नों के प्रभाव का निर्धारण होता है।

२. ६०–३. ४. अशुभ स्वप्नों के प्रभावों के निवारण के कृत्य।

३. ५–३. ६. युद्ध अभियान पर जाने के पूव स्वप्नों के आधार पर फलानुमान।

५. १–१४. स्वप्नविशेषों का महत्व। शैली और विषयवस्तु दोनां की दृष्टि से यह खण्ड उपरोक्त २. १–५६. से सम्बद्ध है।

५. १४–३१. इस परिशिष्ट से सम्बद्ध नहीं है। यह महोत्पातों के बयालिस प्रकारों की विवेचना करनेवाले एक खण्ड का सारांश है। बयालिस उत्पात : पाँच उल्कायें; नौ परिवेष; आठ दिग्दाह; आठ प्रकार के विद्युत; चार प्रकार के भूकम्प; आठ प्रकार के चक्रवात। इन तथा अन्य उत्पातों की दशा में अथर्वन् पुरोहित तथा उसके अनेक सहायकों द्वारा महाशान्ति सम्पन्न कराने का निर्देश है। दक्षिणा का उल्लेख।

स्वप्नाध्यायः

६८.१.१. ॐ अथातः संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं पद्मयोनिता ।
उपाङ्गं शुक्रचारस्य शुभाशुभनिवेदकम् ॥
२. स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि क्रोष्टुकेर्वचनं यथा ।
शशंसिरे पुरायं हि शौनकाय महात्मने ॥
३. निमित्तज्ञानकुशलाः सर्वं तस्य तु पृच्छतः ।
ग्रहा भार्गवभौमार्काः पैत्तिका दीप्तितेजसः ॥
४. कफप्रकृतयो मध्या बृहस्पतिबुधेन्दवः ।
वातप्रकृतयः क्रूरा राहुकेतुशनैश्चराः ॥
५. तेषां तथा फलं विद्यात्संनिपाते यथाक्रमम् ।
ऐते नवग्रहा ज्ञेया वातपित्तकफात्मकाः ॥
६. एषां प्रकृतितुल्यानां निषिक्तानां तु तेषु वै ।
संयोगेषु च जातानां तुल्यप्राकृतिता भवेत् ।
७. अर्केन्दुप्रभवा देहमुपतिष्ठन्ति देहिनः ।
तस्मान्निश्चयमानेषु वातपित्तकफेषु यः ॥
८. एषामन्यतमो देहो योऽतिरिक्तः प्रकाशते ।
प्रचक्षते सा प्रकृतिः प्रकृतिज्ञानकोविदाः ॥
९. तत्र ये मानिस्वाङ्गानि ऋजवः कलहप्रियाः ।
उष्णाः कपिलरोमाणः स्वेदना अनवेक्षणाः ॥
१०. बह्वाशिदुर्भगाश्चैव मृद्वङ्गाः शिशिरप्रियाः ।
लालनाः शिथिलाङ्गाश्च प्रियाश्च लवणास्तथा ॥
११. तनुत्वङ्नखरोमाणस्त्वाचार्यास्तीक्ष्ण एव च ।
वलीपलितभूयिष्ठास्तथा खलतिनो नराः ॥
१२. ग्लायते शुष्यते चैषामाशु माल्यानुलेपनम् ।
दाहात्मिकाः शशाङ्केऽपि पित्तप्रकृतयस्तु ते ॥

६८.१.१३.स्वप्ने चैव प्रपश्यन्ति दिशः कनकपिङ्गलाः ।
मण्डलानि समूहांश्च दिक्षु पीतारुणप्रभान् ॥
१४. भृङ्गारिमदिरान्देशाञ्छुष्कां मलजलां महीम् ।
शुष्कगुल्मद्रुमलता दह्यमानं महद्वनम् ॥
१५. विशुष्कानि च वस्त्राणि रुधिराङ्गांस्तथैव च ।
दहनादींश्च देवांश्च रक्तमिन्दुं सुगन्धिकान् ॥
१६. पलाशानि च पुष्पाणि कर्णिकारवनानि च ।
दिग्दाहविद्युदुल्काश्च दीप्यमानं च पावकम् ॥
१७. भूयिष्ठं भूषिताश्चापि पिबन्ति सुबाहूदकम् ।
सरित्सरवनान्तेषु कूपप्रस्रवणेषु च ॥
१८. उष्णार्ताः शीतकामास्तु निमज्जन्ति पिबन्ति च ।
कलहं चैव कुर्वन्ति दुःखान्यनुभवन्ति च ॥
१९. स्त्रीभिश्चैव त्रिमान्यन्ते क्षयन्ते क्लामयन्ति च ।
इत्येवं पैत्तिका ज्ञेयाः प्रकृतिस्वप्नलक्षणे ॥
२०. प्रकृतिस्वप्नभावैश्च श्लेष्मिकाण्यपि मे शृणु ।
स्निग्धकेशनखश्मश्रुतत्वग्रोमभाषिणः ॥
२१. महोदरभुजोरस्कदीर्घकेशनखद्विजाः ।
वैदूर्योपलबद्धे तु संनिभैर्नियमैः शुभैः ॥
२२. स्थिरोपचितसर्वाङ्गा भवन्ति सुखभागिनः ।
शिरोदरकटिस्कन्धपक्षयोर्विमलेक्षणाः ॥
२३. प्रियाः प्रियंवदाः शूराः कृतज्ञा दृढभक्तयः ।
चिराद्गृह्णन्ति सुचिरं गृहीतं धारयन्ति च ॥
२४. न क्रुध्यन्ति चिरात्क्रुद्धाः संभवन्त्तन्यकोपमाः ।
पूजाभिर्विपुलां भूमिमावहन्ति कुलस्य च ॥
२५. ख्यापयन्ति च सर्वत्र गुणैश्च विपुलैर्यशः ।
मांसोष्णतातिमधुरपयोहाराथ सुप्रजाः ॥

६८.१.२६.न चिराच्छुष्यते चैषां तोयमाल्यानुलेपनम् ।
निमीलितास्यनयना निःशब्दानिः प्रकम्पिनः ॥
२७. स्वपन्त्येकेन पार्श्वेन चिरं सुखनिबोधनाः ।
नातिदुःखेन जीवन्ति नोत्पद्यन्ते सुखेन तु ॥
२८. श्यामाः श्यामावदाताश्च श्रीमन्तोऽदृढरोगिणः ।
अल्पाशिदीर्घकामास्तु भवन्त्यर्थसहिष्णवः ॥
२९. क्षुत्पिपासासहाश्चापि कफप्रकृतयो नराः ।
स्वप्नेषु चैव पश्यन्ति रम्यं चन्दकाननम् ॥
३०. विकुड्मलपलाशानि पौण्डरीकवनानि च ।
शुभाश्च शिशिरप्राया नद्यः शुभजलावहाः ॥
३१. तुषारेणावृताश्चापि हिमौघपटलानि च ।
मुक्तामणिसुवाभृङ्गा मृणालफलकानि च ॥
३२. वराहखङ्गमहिषा मृगाश्च रथकुञ्जराः ।
स्पष्टतारं तु हंसाश्च व्यपोढन्ति नभस्तलम् ॥
३३. कुन्दगोक्षीरगौराभिरिन्दोः कीर्णगभस्तिषु ।
प्रोत्फुल्लकुमुदाकारा व्योम्नि सुधाम्बुसप्रभैः ॥
३४. राजहंसप्रतीकाशं शशाङ्कं चामलद्युतिम् ।
शुभ्राणि च विमानानि फलानि मधुराणि च ।
३५. कृतपुष्पोपहाराणि महान्ति भवनानि च ।
ब्राह्मणान्यज्ञवादांश्च दधिक्षीरामृतानि च ॥
३६. स्त्रियश्च परमोदात्ताः सुवेषाः स्वभ्यलंकृताः ।
मधुरश्वेतपीतानि प्रायशश्चिरमेव तु ॥
३७. स्वप्नेषु चैवं पश्यन्ति कफप्रकृतयो नराः ।
प्रकृतिस्वप्नभावेषु वातिकान्यपि लक्षयेत् ॥
३८. चलाश्च चलविक्रान्ताः क्षिप्रंक्षिप्रं प्रलापिनः ।
सुप्ताः प्रलापिनस्त्वन्ये कषायकटुकप्रियाः ॥

६८.१.३९. त्वग्रोमनखदन्तोष्ठपाणिपादतलादिषु ।
रुक्षस्फुटितदुर्दर्शा दुर्बला दुःखभागिनः ॥
४०. कठिनोपचिताङ्गाश्च भ्रान्तचित्ताप्लुतेक्षणाः ।
लापिनो मृदवः क्रूरा विद्यादस्थिरबुद्धयः ॥
४१. नृत्यगीतकथाशीला जम्भिनो दुःखभागिनः ।
ह्रस्वलोमाः सुवपुषो दुर्बला धमनास्तथा ॥
४२. क्षामा भिन्नाः सदोषाश्च सततं वानवस्थिताः ।
हस्तनखत्वगोष्ठानां पादानां च विकारिणः ॥
४३. अकस्मात्कोपनाश्चापि रोदना धमनास्तथा ॥
परप्रकृतिशीलाश्च वल्गनास्फोटनप्रियाः ॥
४४. दुर्बलाः शिशिराश्चापि वातप्रकृतयो नराः ।
स्वप्नेषु चैव पश्यन्ति वाताभ्रविमला दिशः ॥
४५. मारुतवेग तुङ्गानि भुवनानि वनानि च ।
श्यामताराग्रहगणं विध्वस्तार्केन्दुमण्डलम् ॥
४७. धाराचरद्भिर्विश्वाभैः संकुलं गगनं घनैः ।
भ्रमन्तः पक्षिसंघाश्च मृगाश्चोद्भ्रान्तयूथपाः ॥
४७. अन्याश्चापि शम्बराश्च गिरिगह्वरकाननाः ।
भ्रमन्ति घ्नन्ति धावन्ति ऊर्ध्वेभ्यः प्रपतन्ति च ॥
४८. स्वप्नेष्वेतानि पश्यन्ति वातप्रकृतयो नराः ।
मिश्रस्वप्नस्वभावेषु संनिपातात्मकान्विदुः ॥
४९. एतास्तिरः प्रकृतयः संसृष्टाश्च विशेषतः ।
देवगन्धर्वयक्षाश्च पर्वतानि च सर्वशः ॥
५०. सम्यक्करणविज्ञानं तथा स्वप्नाद्भवेत्फलम् ।
शुभं वाप्यशुभं वापि निर्देष्टव्यमशेषतः ॥
५१. येनयेनेन्द्रियार्थेन विद्धः स्वपिति मानवः ।
तस्यतस्येन्द्रियार्थस्य सुप्तः कर्माणि पश्यति ॥

६८.१.५२. प्रकृत्याकृतसंकल्पसंभवा देवतास्वपि ।
स्वप्नमालां तु यः पश्येद्यां तु दृष्ट्वा न तु स्मरेत् ॥
५३. नैते फलं प्रयच्छन्ति गर्गस्य वचनं यथा ।
प्रकृत्यानूकजानाहुरेके शुभफलोदयान् ॥
५४. सारस्वतं यथानूकं संघातसंश्रयं शृणु ।
दृष्ट्वा भोगमसुप्रव्यं ततः प्राप्य शुभं फलम् ॥
५५. स्वप्नप्रकृतिभावं तु ज्ञात्वा तत्त्वं समादिशेत् ॥ १ ॥
२. १. गृह्णीत समुद्रेन्द्विन्द्रवायवग्न्यर्कनदीं क्षितिम् ।
समुद्रं वहिनीं द्वीपं लङ्घयेद्वा वसुंधराम् ॥
२. वाहिनीं चतुरङ्गां च जीवच्छत्रपताकिनीम् ।
दोर्भ्यां च प्रतिगृह्णीयात्तथाकेतुवसुंधराम् ॥
३. एकपुष्करिणीपर्णे सौवर्णे भाजनेऽपि वा ।
सर्पिषा पायसं भुङ्क्ते गां दुहन्यश्च बुध्यति ॥
४. परिवेषः स्वयं चन्द्रे योऽनवस्त्र वसुंधराम् ।
पर्वताग्रं समारुह्य क्षितिं यश्चावलोकयेत् ॥
५. आकण्ठं मज्जते यो हि मानवः शोणितार्णवे ।
रथेन सिंहयुक्तेन पर्वतं चाधिरोहति ॥
६. महीं वा कम्पयेद्यस्तु चालयेद्वा पुनर्गिरीन् ।
श्वेतमश्वमथारुह्य पाण्डुरं वापि यो गजम् ॥
७. भुङ्क्ते पुष्करिणीपर्णे पायसं वापि सर्पिषा ।
अङ्गवृद्धिं शिरोवृद्धिं प्राप्नुयाद्यस्तु मानवः ॥
८. ब्राह्मणो वापि राजा वा स्वप्ने यदभिषेचयेत् ।
राजा तु पार्थिवो ज्ञेयः क्रोष्टुकेर्वचनं यथा ॥
९. शिरो वा छिद्यते यस्य विमानं शोणितं तथा ।
सेनापत्यं महच्चायुरर्थलाभं तथैव च ॥

६८.२.१०. विभूषणं च विद्यां च कर्णछेदमवाप्नुयात् ।
हस्तछेदे लभेत्पुत्रं बाहुछेदे धनागमम् ॥
११. उरः सहस्रलाभः स्यात्पादछेदे तथैव च ।
उरःप्रजननछेदे अत्यन्तं सुखमेधते ॥
१२. छत्रादर्शफलोष्णीषशुक्लमाल्यागमे तथा ।
मत्स्यमांसदधिक्षीररुधिरागम एव च ॥
१३. शक्त्यङ्कुशपताकानां छत्रासि धनुषां तथा ।
विमलानां जलानां च पूर्वोक्तं तु निदर्शनम् ॥
१४. सूकरखरवाह्यानां वधश्चैकपशोरपि ।
नरयुक्तस्य यानस्य निक्षिप्तस्य गत्रस्य च ॥
१५. दर्शनं चाप्यदृष्टानामगम्यागमनं तथा ।
क्षीरिणां फलवृक्षाणां दर्शनारोहणानि च ॥
१६. विषदर्शनसंस्पर्शौ धान्येनोत्सङ्गपूरणम् ।
दस्युभिर्हन्यमानस्य रुदतः प्रतिबोधनम् ॥
१७. द्विजेभ्यो दधिमांसस्य लाभः पिशितभक्षणे ।
अभक्ष्यभक्षणे चापि श्वेतमाल्यानुलेपनम् ॥
१८. घातनं श्वापदानां च पाणौ च रुधिरागमः ।
अर्थलाभाय बोद्धव्यः सुहृन्मित्रसमागमः ॥
१९. लभते नात्र संदेहो भार्गवस्य वचो यथा ।
शुक्लाः सुमनसः कन्या दधि गोब्राह्मणं वृषम् ॥
२०. दैवतानि नृपाध्यक्षाः पाण्डुराणि गृहाणि च ।
सुहृदः सफला वृक्षा नक्षत्राण्यमलं जलम् ॥
२१. इष्टकल्याणशब्दाश्च शुक्लाम्बरधराः स्त्रियः ।
नभोविमलनक्षत्रं पावकं विषमार्चिषम् ॥
२२. दृष्ट्वा यस्तत्क्षणं बुध्येत्तस्य कल्याणमादिशेत् ।
वृक्षान्गुल्मांश्च वल्लीश्च स्वगृहेपुष्पिता नरः ॥

६८.२.२३. शुक्लवासाः स्त्रियश्चापि यः पश्येच्छ्रीस्तु तं भजेत् ॥
विषशोणितदिग्धाङ्गः प्रीतिमाप्नोति मानवः ॥
२४. दीप्ताङ्गो लभते भूमिं वर्धमानाङ्ग एव च ।
परिवार्याभिरुदितो बान्धवैः करुणं नरः ॥
२५. शोकार्तो लभते तुष्टिं मृतश्चायुरवाप्नुयात् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो दह्यमानः प्रलीयते ॥
२६. यः स्वप्ने संभयेदुग्रं पारक्यं सोऽर्थमाप्नुयात् ।
नागदन्तकमुद्रां च वीणां मालाञ्जनं तथा ॥
२७. काञ्चनं पश्यते यस्तु स्त्रीं लभते नरः ।
उड्डीयमानान्विहगान्तथा पुष्करिणीगतान् ॥
२८. मत्तं करेणुमारुह्य परस्त्रीं लभते नरः ।
कुमारीं लभते नारीमायसैर्निगडैर्नरः ॥
२९. बद्ध्वा नवां तु यो मालामुत्पलानां विबुध्यते ।
कवाटके च संयुक्ते तथैवोत्पलहस्तके ॥
३०. भृङ्गारो दर्पणो वापि लब्ध्वा पुत्रागमं वदेत् ।
तडागारामकूपानां पुरारञ्जनयोरपि ॥
३१. पूर्णकुंभस्य चादेश्यं वर्षमुत्तरणाद्ध्रुवम् ।
चिपिटः कालको नग्नः श्रवणो मेहते यदि ॥
३२. विदिक्थः स्रवते चोर्मिः स्वप्ने वर्षं समादिशेत् ।
सूकरीं महिषीं वापि हस्तिनीं शकुनीं तथा ॥
३३. स्वप्ने यदा प्रसूयेत सुभिक्षं निर्दिशेत्तदा ।
शयनासनयानानि गृहग्रामपुराणि च ॥
३४. येषां स्वप्ने प्रलीयन्ते तेषां वृद्धिमथादिशेत् ।
गोवृषं पुरुषं वृक्षं हस्तिनं पर्वतं गृहम् ॥
३५. नरस्यारोहणाद्वृद्धिः पाण्डुराणि विशेषतः ।
दैवतानि द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनो ग्रहाः ॥

६८.२.३६.यद्वदन्तिः नरं स्वप्ने तत्तथैव विनिर्दिशेत् ।
सरित्सरसमुद्राणां तरणे शोकतारणम् ॥
३७. नरस्य शोणितं पीत्वा प्रकृताँल्लभते नरः ।
चन्द्रेन्द्रध्वजसूर्याणां पतने नृपतेर्भयम् ॥
३८. महार्णवमहेन्द्राणां क्षोभे क्षोभं विनिर्दिशेत् ।
केशश्मश्रुनखानां च पतने शोकसंभव ॥
३९. कृमिणत्वं भवेद्धन्यं क्रोष्टुकेर्वचनं यथा ।
क्रव्यादैर्दंष्ट्रिभिश्चापि विनाशो भूतविग्रहे ॥
४० शस्त्रमुष्टिप्रहारेषु विजानीयाज्ज्वरागमम् ।
यद्यदुज्ज्वलवद्द्रव्यं तत्तत्सुखकरं भवेत् ॥
४१. यद्यद्विरुध्यते वापि स्वप्ने तत्तस्य निर्दिशेत् ।
नोपानेन प्रजातानां दर्शने स्थानमादिशेत् ।
४२. उपानहबलछत्त्रदर्शने च ग्रहे तथा ।
हसद्भिर्वा परिवृतो नृत्यद्भिः स्वजनैरपि ॥
४३. संयुक्तं सूकरखरैरुष्ट्रैः कृष्णचतुष्पदैः ।
रथमारुह्य यो यायादक्षतस्तु युगंधरः ॥
४४. प्रकीर्णकेशो ह्रियते दक्षिणेनापरेण वा ।
दक्षिणेनागता कन्या कालिकाकुलवासिनी ॥
४५. नीयते पुरुषैर्यश्च पाशहस्तैर्विशेषतः ।
निरस्तानां विषमाणां प्रेतेनाकुशलं भवेत् ॥
४६. पिण्याकस्य तिलानां च कर्षासु लवणस्य च ।
रूढश्मश्रुनखानां च दुश्चेलानां च वाससाम् ॥
४७. विरागवाससां वापि विकृतानां तथैव च ।
सरीसृपाणां व्यालानां शत्रूणां चापि दर्शनम् ॥
४८. कृष्णानां वापि सर्वेषां राजद्विजवृषादृते ॥
दर्शनं गमनं वापि शोकमायासवेदनम् ॥

६८.२.४९. पद्मैर्वा जलभाण्डैर्वा क्रीडितायासदर्शनम् ।
पद्मानि वाहरेत्स्वप्ने हस्तछेदमवाप्नुयात् ॥
५०. प्रसन्ने तु ध्रुवं शोकोरज्जुछेदे म्रियेत सः ।
रूढस्य स्रोतसा शोको मृत्युः स्रोतसि नश्यतः ॥
५१. दन्ता बाहुं तथा शीर्षो छिन्नांश द्रव्यदर्शनम् ।
भ्रातरम्पितरं वापि पुत्रं वा नाशयन्ति ते ॥
५२. द्वारे वा सार्गले वापि शय्यां शाखां तथैव च ।
स्वप्ने यस्य प्रनश्यन्ति भार्या तस्य विनश्यति ॥
५३. कृकलासो वृको वापि पुरुषो वापि पिङ्गलः ।
शय्यां यस्याधिरोहन्ति भार्या तस्यापि दुष्यति ॥
५४. स्वप्ने यो मारयेत्सर्पं श्वेतपीतकलोहितम् ।
कृष्णस्य वा शिरश् छिन्द्यात्पुत्रस्तस्य विनश्यति ॥
५५. राजपुत्रश्च चोरश्च राजभृत्यश्च यो भवेत् ।
तस्य स्वप्नाः फलं दद्युरेतेषु यदुदाहृतम् ॥
५६. येषां लाभे भवेद्वृद्धिस्तेसां नाशे गुणो भवेत् ।
येषां लाभे भवेद्धानिस्तेषां लाभे गुणो भवेत् ॥
५७. शुभं दृष्ट्वा तु यः स्वप्ने पुनः पश्यत्यपूजितम् ।
शुभं वाप्यशुभं वापि यत्पश्चात्तत्फलं लभेत् ॥
५८. स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ।
द्वितीयेऽष्टसु मासेषु तृतीये तु तदर्धभाक् ॥
५९. मासिको गोविसर्गे तु सद्यः पाकः प्रभातिके ।
कालः पञ्चस्ववस्थासु शर्वर्याः कीर्तितः पृथक् ॥
६०. विप्रेभ्यः शक्तितो दानं शान्तिः स्वस्त्ययनादयः ।
विनाशयन्ति दुःस्वप्नं प्रातश्चाश्वत्थसेवनम् ॥
६१. अश्वत्थसेवा तिलपात्रदानं
गोस्पर्शनं ब्राह्मणतर्पणं च ।

शान्तिक्रिया स्वस्त्ययनक्रिया च
दुःस्वप्नमेतानि विनाशयन्ति ॥

६८.२.६२.वसनकनकदानदेवपूजा
गुरुगोष्ठनिषेवितानि कुर्युः ।
द्विजवृषभगवाश्वपार्थिवानाम्
दर्शनमितिहासमङ्गलाः स्युः ॥ २ ॥

३. १. इमान्दृष्ट्वा शुभान्स्वप्नान्प्रातरुत्थाय सत्वरः ।
नदीसंगमतोयेन मुखं संमार्ज्य तत्त्वतः ॥
२. हिरण्यवर्णाभिरुदकं शंतातीयमयोभुवा ॥
अभिमन्त्र्य प्रयत्नेन मुखं संमार्ज्य तत्त्वतः ॥
३. यो न जीवः परोऽपेहि विद्म ते स्वप्न वेदनम् ।
रोचना सर्षपा मृदा समित्सकुसुमं दधि ॥
४. गामजं कनकं सत्त्वं कुमारीं ब्राह्मणं शुभम् ।
अभिवन्द्य नृपो यायात्सुहृदांश्च मनोहरान् ॥
५. यदा तु यात्रां नृपतिः कर्तुमिच्छेद्विधानवित् ।
अथ स्वस्त्ययनैः सौम्यैः सौम्यैस्तमभिमन्त्रयेत् ॥
६. ततः शुक्लाम्बरधरो वाग्यतः संयतेन्द्रियः ।
तां निशां संविशेद्राजा भूमौ चैवभिमन्त्रयेत् ॥
७. अन्यथैव हि न स्वप्नदर्शनार्थनिदर्शनम् ।
एवमुक्त्वा नरपतिः प्रयतात्मा ततः स्वपेत् ॥
८. प्रशस्तस्वप्नतां दृष्ट्वा ततो यायान्नराधिपः ।
स्वप्नेषु चाप्रशस्तेषु ततः शान्ति समारभेत् ॥
९. माहेन्द्रीममृतां रौद्रीं कुर्याद्वाप्यपराजिताम् ।
कौबेरीं वा प्रयुञ्जीत आदित्यां वा सदक्षिणाम् ॥
१०. रजनिकरदिवाकरौ कराभ्यां
स्पृशति यदा ग्रसतेऽथ वा नरेन्द्रः ।

लवणजलनिधिं नदीं च दोर्भ्यां
तरति ह्रदापदकर्दमं तमो वा ॥
६८.३.११.नरतुरगमहीरुहान्नगान्वा
भवनचरान्न विरोहयेद्गजान्वा ।
ज्वलनमरणकालवृद्धयोगान्
यदि नृप आत्मगतांश्च पश्यतीह ॥
१२. यदि च नृपतिरात्मनोऽभ्रचारै-
र्भ्रमति महीं स परिक्षिपेत् ।
यदि च स चिरमभ्रगात्रमात्रो
भ्रमति नृपो ग्रसतेऽथ मेदिनीं वा ॥
१३. यदि च जयति दंष्ट्रिणो नरान्वा
यदि च भवेत्सितमाल्यदानधारी ।
यदि च रुदिति चैवमादि दृष्ट्वा
परविषयं हृषितस्ततस्तु यायात् ॥ ३ ॥
४. १. स कलुषसलिलावपांसुमग्नो
मधुघृततैलवसा प्रदिग्धगात्रः ।
मलिनवसनजीर्णरिक्तवासा
यदि सुमनोभिरलंकृतः स्वयं वा ॥
२. स्वपिति जयति खादति प्रहृष्टो
विलपति नर्तति गायनप्रहासैः ।
भवति च मुदितो लभेत कन्यां
यदि नृपतिर्नयशो भवेज्जयार्थी ॥
३. मयखरसूकरवानराधिरूढो
हृतमुकुटाङ्गदवस्त्रचिह्ननग्नः ।
विनिहत तुरगद्विपो नरेन्द्रो
यदि पतितध्वजवांस्ततो न यायात् ॥

६८.४.४. नरपतिरपराजितः परैर्यो
यदि च परैः परिहस्यते मदद्भिः ।
यदि च भवति दुर्दृशोग्ररूपो
अथ न स ईदृशकः परान्प्रयायात् ॥
५. स्वप्नान्दृष्ट्वा शुभान्राजा जयद्भिरभिमन्त्रितः ।
युक्तः स शकुनैर्भूप उत्पातगणवर्जितः ॥
६. सहायवान्सुसंनद्धो निमित्तज्ञैः समन्वितः ।
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे प्रयायाद्वसुधाधिपः ॥ ४ ॥
५.१. तैलाभ्यक्तश्च कृसरां भुङ्क्ते तैलपरिप्लुताम् ।
मातरं प्रविशेद्यश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥
२. प्रासादात्पर्वताग्राद्वा पतेद्यश्चापि मानवः ।
मग्नः कर्दमकूपेषु जले यश्चापि नश्यति ॥
३. द्रुममुन्मूलयेद्यस्तु पश्येद्राज्ञोपसेवकम् ।
कुमारीवदने यश्च वानरीं वाधिगच्छति ॥
४. रक्तकण्ठगते वापि यस्य कण्ठे विसर्जति ।
विवर्णो वापि पाशैर्यो बध्यते म्रियते तु सः ॥
५. कांस्यं वा कांस्यपात्रीं वा यस्य तेजोऽधिरोहति ।
अचिरेणैव कालेन सोऽसिना वध्यते नरः ॥
६. यूपाग्रमधिरुह्याथ नावाग्रमधिरोहति ।
अचिरेणैव कालेन शूलाग्रं सोऽधिरोहति ॥
७. मुण्डः काषायवासो वा श्वेतरक्तपटोऽपि वा ।
स्वप्ने यस्याधिरोहन्ति व्याधिस्तस्याधिरोहति ॥
८. श्वा वा अजगरो गोधा तरक्षुः शल्यकोऽपि वा ।
कृकलासोरुरुर्व्याघ्रो द्वीपी यस्याधिरोहति ॥
९. अहिश्च रौद्रजटिलः श्वेतरक्तपटोऽपि वा ।
स्वप्ने यमुपतिष्ठन्ति व्याधिस्तमुपतिष्ठति ॥

६८.५.१०.महीभस्मप्रदिग्धाङ्गो निरावरण एव च ।
समस्यानां सजातानामुत्सवानां च दर्शनम् ॥
११. दुर्गमध्वानगमनमनूपानां च सेवनम् ।
अभ्यङ्गश्चैव गात्राणां तिलगोमयकर्दमैः ॥
१२. सुवर्णमणिमुक्तानि भूषणं रजतानि च ।
दर्शनं वाप्यथैतेषां व्याधीनां संप्रवेशनम् ॥
१३. गायनं नर्तनं हास्यं विवाहकरणं तथा ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च व्यसनस्य च दर्शनम् ॥
१४. पुराणघृतदिग्धाङ्गो नरो मरणमाप्नुयात् ।
एवमुक्ता महोत्पाता विविधाः पूर्वचोदिताः ॥
१५. उल्काभेदास्तथा पञ्च परिवेषा नव स्मृताः ।
दिग्दाहोऽष्टविधः प्रोक्तो विद्युदष्टविधा तथा ॥
१६. चत्वारो भूमिकंपाश्च निर्घातोऽष्टविधस्तथा ।
विंशती द्वे च विज्ञेया भेदा ह्युल्कादिषु स्मृताः ॥
१७. महोत्पाताश्च बहवः शान्तियोगेषु कीर्तिताः ।
तेषु सर्वेषु विधिवच्छान्तिकामो नराधिपः ॥
१८. अथर्वाणं च वृणुयात्सर्वशास्त्रविदं नृपः ।
स वृतो भयभीतेन शमनार्थं महात्मना ॥
१९. प्रजानामभयं सम्यग्दापयेत्पृथिवीपतिः ।
अनन्तरं गवां पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥
२०. देवतायतने सद्यो दोहान्भूमौ प्रकारयेत् ।
सततं चानुलिप्यस्तु पुष्पैर्धूपैर्यथोदितैः ॥
२१. प्रदीपैर्विविधैः शुभ्रैः सर्वदिक्षु प्रकल्पितैः ।
तथा बल्युपहारैश्च पायसापूपसंयुतैः ॥
२२. हृद्यैर्बहुविधैर्भक्षैः सर्वदिक्षुप्रकल्पितैः ।
तस्मिन्नेवान्तरे शान्ते गोष्ठे वा जलसंनिधौ ॥

६८.५.२३. निर्गत्य नगराद्वापि शुचौ देशे समाहितः ।
वृणुयाच्छान्तितत्त्वज्ञानुत्पातविहिताञ्छुभान् ॥
२४. षोडशाष्टौ वृतास्ते च पुरश्चरणशोधिताः ।
अङ्गानि कुर्युरन्ये च शतसंख्या द्विजोत्तमाः ॥
२५. उदयास्ते सुखासीना जयं कुर्युरतन्द्रिताः ।
ते सदस्या इति प्रोक्ता वाचने यज्ञकर्मणि ॥
२६. तेषां वरिष्ठः शान्तिज्ञ उपद्रष्टा मनोहरः ।
सर्वकर्मसु वेत्ता य आनयेत्सोऽप्यथादरात् ॥
२७. भूमिं संशोध्य विधिवत्कृत्वा तत्र च मण्डपम् ।
विधिवत्कल्पयेद्वेदिं यज्ञपात्राणि च स्वयम् ॥
२८. एवं यथोक्तविधिना अग्निमन्थन पूर्वकाम् ।
महाशान्तिं प्रयुञ्जीत सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥
२९. अन्नैर्वस्त्रैश्च विविधैः संयुक्तां बहुदक्षिणाम् ।
कारयित्वा महाशान्तिं वरं गां च निवेदयेत् ॥
३०. गृहमाभरणं छत्रमनड्वाजिनं तथा ।
कुञ्जरं वा तथा दत्त्वा घण्टाभरणभूषितम् ॥
३१. महत्सुखमवाप्नोतिकार्यसिद्धिं च विन्दति ।
कार्यसिद्धिं च विन्दति ॥ ५ ॥

इति स्वप्नाध्यायः समाप्तः ॥ ६८ ॥

६९. अथर्वहृदयम्

परिशिष्ट के परिचयात्मक स्थल से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें एक सर्वश्रेष्ठ 'काम्यं कर्म' का उल्लेख है। सम्भवतः इस कर्म के नाम के आधार पर इसका शीर्षक निर्धारित किया गया है। फिर भी; परिशिष्ट के विषयवस्तु से ऐसा कुछ प्रगट नहीं होता। इसके विपरीत, इसमें कुछ अनिष्टों की विभिन्न सूचियाँ तथा उनके प्रतिकार के उपाय मिलते हैं। ये भी, अनेक दशाओं में बहुत स्पष्ट नहीं हैं और कुछ दशाओं में महाशान्ति का ही सुपरिचित निर्देशन है। ऐसी दशा में यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस परिशिष्ट के प्रथम पाठ को किसी बहुत भ्रष्ट पाण्डुलिपि से ही नकल किया गया था जिसके कारण प्रमुख कर्म के विवरण बहुत अधिक अंशों में छूट गये। यह निष्कर्ष इस तथ्य से भी पुष्ट होता है कि अनेक दशाओं में (तुकी० १. ४–५; २. ३–४; ५. ३) पाठ का क्रम इस प्रकार टूट जाता है कि उससे कुछ न कुछ छूट गये होने का निश्चित संकेत मिलता है।

१. १–५. परिचय; इसका भृगु ने उपदेश दिया था।

२. १–२. शिशुओं में साधारण अपरूपता; इन अनिष्टों के प्रतिकार का उपाय।

२. ३–३. २. अधिक विकृताङ्गता के साथ जन्म लेनेवाले शिशु; उनके इन लक्षणों के प्रतिकार का उपाय।

३. ३–५. ऐसे शिशुओं या पशुओं का जन्म जिनके कुछ अंग अन्य जाति के जीवों के समान होते हैं; फलों और पुष्पों में भी इसी प्रकार की विकृतियाँ। इनके निवारण का उपाय।

४. १–३. विभिन्न अनिष्ट और उनके निवारण।

४. ४–५. ४. कुछ ऐसे अनिष्टों की सूची जिन्हें प्राकृतिक घटनाक्रम में व्यतिक्रम का परिणाम कहा जा सकता है। इनका निवारण।

५. ५–३. ४. ऐसे अनिष्ट लक्षण जिनके बाद महाशान्ति कराना चाहिये।

६. ५–८. ७. अनिष्टनिवारकों के रूप में अथर्वन् पुरोहितों की प्रशस्ति।

९. १–४. इस परिशिष्ट की प्रशस्ति।

अथर्वहृदयम्

६९.१.१.ॐ उपसंगम्य मुनयः सर्वज्ञं शान्तमानसम्।
अपृच्छन्गतमात्सर्यं भृगुं ब्रह्मविदं वरम्॥
२. कामा हि बहवो लोके संस्थिता भिन्नसाधनाः।
एकमेव परं तेषां सम्यक्त्वं ब्रूह्यसंशयम्॥

६९.१.३. समासेन प्रवक्ष्यामि येन सर्वं प्रपद्यते ।
अतिप्रश्नोऽयमुद्दीर्णस्तथापि कथयाम्यहम् ॥
४. सर्वार्थसाधनार्थाय श्रुतिराङ्गिरसी हिता ।
स्वतेजसा प्रज्वलन्ती हृदयं तदथर्वणाम् ॥
५. प्रभावं तस्य वक्ष्यामि उपरिष्टाद्यथाविधि ।
दुःसाध्यानि निमित्तानि तानि वेद्मि हि कानि चित् ॥ १ ॥
२. १. अकाले यस्य जायन्ते दन्ताः केशैर्विवर्जितः ।
प्रभूतलम्बकेशो वा तथा हीनाधिकाङ्गुलिः ॥
२. द्विदन्तश्चापि जायेत तस्य कर्म स्वशाखिकम् ।
स्वशाखायां तु यत्प्रोक्तं कुर्याद्वाथर्वणं विधिम् ॥
३. द्विमूर्धा वा त्रिनेत्रो वा तथैकाक्षिर्द्विनासिकः ।
हीनहस्तोऽपरो ह्यर्थे न त्वथर्वशिराः स च ॥
४. कृतोपचारः पञ्च सप्त शुद्धात्मा साध्यसत्कृतः ।
स शान्युदकमाचम्य शान्तवृक्षसमीपतः ॥
५. शान्तवृक्षसमिद्भिस्तु तिलैस्त्रिमधुरैस्तथा ।
होमं कुर्यादथर्वा तु तेन नन्दति सत्कुलम् ॥ २ ॥
३. १. न लभेद्यद्यथर्वाणं कुर्याद्दशगुणं स्वयम् ।
महाव्याहृति होमं च सावित्रं जपमेव च ॥
२. विकृताङ्गोऽधिकाङ्गो वा जातो हीनाङ्ग एव वा ।
कुलस्याद्भुतमत्यर्थं तदथर्वा शमं नयेत् ॥
३. कप्युष्ट्रेभगवादीनां जायन्तेऽङ्गमुखैः समाः ।
यस्मिन्राष्ट्रे नृपस्तत्र षण्मासाद्धि विनश्यति ॥
४. कप्यादयो वा जायन्ते अन्यस्य तुल्यगात्रकाः ।
वृक्षेऽन्यवृक्षजं पुष्पं जायते फलमेव वा ।
५. द्विजोत्तममथर्वाणं तत्रेच्छेच्छान्तिमात्मनः ।
कारयेत महाशान्तिं राष्ट्रस्य च पुरस्य च ॥ ३ ॥

६९.४.१. उपस्थिते राज्यनाशे महारौरव एव वा ।
दुर्भिक्षे मरके वापि अनावृष्टिभयेऽपि वा ॥
२. सर्वं राष्ट्रे विनश्येत सस्यं शलभमूषकैः ।
अकस्मान्निर्जला वा स्यादशोषा वा महासरित् ॥
३. तथान्येष्वप्यनुक्तेषु घोरेषूपस्थितेषु च ।
कुर्युः शान्तिमथर्वाणो द्विजा ह्येतेषु भेषजम् ॥
४. लभते राज्ययोग्योऽपि न राज्यं राजनन्दनः ।
पठन्न लभते विद्यां द्विजः शृण्वन्नपि श्रुतम् ॥
५. आधित्सुरपि नाधानं कुर्यादावासमेव च ।
कन्या परिणिनीषुर्वा काम्येष्विष्टपतिं न च ॥ ४ ॥
५. १. वन्ध्या वा मृतवत्सा या दुर्भगा स्त्रीप्रसू च या ।
सकृत्प्रसूता या नारी गर्भं गृह्णाति नैव च ॥
२. सूति कालेऽप्यतिक्रान्ते गर्भे स्फुरणवत्यपि ।
न सूतिं लभते या तु बहुपुत्रीयते च या ॥
३. कृषीवलः कृषीवलं जयत्यायुधजीव्यपि ।
जयेप्सुर्व्यवहारे वा सौभाग्यं सार्वभौतिकम् ॥
४. अथापहन्तुं भयमेवमादिकं,
यदाभिलष्येत्फलमुक्तमेव वा ।
तदाङ्गिरस्यं वरमन्त्रसंपदा
स्फुरन्तमुच्चैः शरणं व्रजेद्द्विजम् ॥
५. रात्रौ द्विछायवृक्षं वा कुस्वप्नं वापि रिष्टदम् ।
दिवा ग्रहान्निरीक्षेत भूमिकम्पैवमादिकम् ॥ ५ ॥
६. १. ज्वालाद्भुतान्यथ प्रोक्तानि यानि
उल्कादिभेदा गदितास्तथा ये ।
स्वप्नाद्भुतान्यपिवान्याद्भुतानि
गृहेषु यान्यर्थविदो वदन्ति ॥

६९.६.२. एतेषु शान्तिं कुर्वीत अमृतां वा सदक्षिणाम् ।
रौद्रीं वा वैश्वदेवीं वा अभयां वा पराजिताम् ॥
३. गोभूहिरण्यवस्त्रान्नैस्तिलैर्वा सफलैः शुभैः ।
उपानच्छत्रसंयुक्तां गुर्वाभरणसंयुताम् ॥
४. प्रतिपत्तियथोक्तं वा यः कुर्वीत विधानवित् ।
एतदुत्पातजं सर्वं महाशान्त्या प्रलीयते ॥
५. यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः ।
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥ ६ ॥
७. १. यस्य राज्ञो जनपदे स नास्ति विविधैर्भयैः ।
पीड्यते तस्य तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव मज्जति ॥
२. तस्माद्राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम् ।
दानसंमानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् ॥
३ नित्यं च कारयेच्छान्तिं ग्रहऋक्षाणि पूजयेत् ।
भूमिदोहान्प्रकुर्वीत देवतायतनेषु च ॥
४. चतुष्पथेषु गोष्ठेषु तीर्थेष्वप्सु च कारयेत् ।
गोतर्पणं च विधिवत्सर्वदोषविनाशनम् ॥
५. एवं तु स्थापयन्राजा सर्वकालं जितेन्द्रियः ।
अनन्तं सुखमाप्नोति कृत्स्नां भुङ्क्ते वसुंधराम् ॥७॥
८. १. उपस्थितं मृत्युमपि द्विजोत्तमः शमं नयेत् ।
अधीत्याथर्वाङ्गिरसस्तादृशमाधृतव्रतः ॥
२. द्युतिं प्रभां सदा स्फुरन्मन्त्रपवित्रवान्नरः ।
नृपे धनिनि चान्यत्र शान्त्याप्त्वा दक्षिणां बुधः ॥
३. सीदन्कुटुम्बकः पोषं गृहीत्वान्यत्समुत्सृजेत् ।
त्रिः संहितां हविष्याद्यं जपेत्कृच्छ्रं च शुद्धये ॥
४. सावित्रीलक्षमयुतं सहस्रमथ चोत्तरम् ।
जप्त्वा दशांशको होमः कार्यो दोषानुसारतः ॥

६९.८.५. शरीरनिर्मलो यस्तु नार्चितोऽपि द्विजोत्तमः ।
अमत्सरी नितान्तं यः सोऽत्र शान्ति समारभेत् ॥
६. एवं विधोऽङ्गिरा यत्र यानि साध्यानि साधयेत् ।
न न्यूनं तत्र किंचित्स्यादिति तद्भृगुभाषितम् ॥
७. लघुशान्त्युदकविधिना गायत्र्या वाप्यथर्वकः ।
कुर्यात्सर्वमिदं जानन्नथर्वहृदयं बुधः ॥८॥
९.१. ये न जानन्त्यधीतापि श्रुतिमाङ्गिरसीं द्विजाः ।
अथर्वहृदयं चापि न ते वेदविदः स्मृताः ॥
२. अथर्वहृदयं वेत्ता अथर्वा परमः स्मृतः ।
नाथर्वणेऽप्यिदं देयं गुरोर्विद्वेषयायिनि ॥
३. अन्यशाख्यं द्विजो मोहात्पाठयन्प्रविलीयते ।
अथर्वहृदयं बुद्ध्वा यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् ॥
४. अथर्वा नाद्भुतं तस्य शान्तिरेव सदा भवेत् ।
शान्तिरेव सदा भवेत् ॥ ९ ॥

इत्यथर्वहृदयं समाप्तम् ॥ ६९ ॥

७०. भार्गवीयाणि

१. १–३. परिचय : भृगु ने इसका उद्घाटन किया था।

१. ४–७. अनिष्ट निवारण में सक्षम पुरोहित। ऐसे ही ब्रह्मन् पुरोहित को चुनना चाहिये जो अथर्वन् हो।

१. ७–१०. क्या राजा की दुष्टता किसी कर्म की सफलता में अवरोध उत्पन्न कर सकती है।

१. १०–२. ३. पुरोहितों के शुद्धीकरण से सम्बद्ध प्रारम्भिक कृत्य।

२. ४–३. ५. अतिरिक्त कर्मों सहित महाशान्ति तथा पार्थिव अनिष्टों के लिये निर्धारित दक्षिणा आदि।

४. १–४. अन्तरिक्षीय तथा दिव्य अनिष्टों के लिये परिवर्तित नियम।

४. ५–१०. यतः दिव्य अनिष्टों की दशा में कोटिहोम को सम्मिलित किया जाना भी आवश्यक होता है, अतः इच्छित फलानुसार इस कर्म के लिये आवश्यक द्रव्यों आदि सम्बन्धी नियय।

५. १. कटिबन्ध के स्थान के सम्बन्ध में नियम।

५. २–७. ६. विभिन्न शकुन; किसी कर्म के अन्त में विचारणीय विषय, पुरोहितों को दक्षिणा, ब्राह्मण-भोजन तथा अन्य समापन कर्म तथा इस कर्म की प्रशस्ति। इस अंश के दो भागों ६.५ और ७.३ में पर्याप्त अस्पष्टता है।

८. १–५. संवत्सराख्य पुरुष का उल्लेख।

९. १–६. संवत्सराख्य पुरुष के अनिष्टग्रस्त हो जाने पर महाशान्ति का विधान।

१०. १–५. शकुनों की एक सूची; यह निर्देश है कि सुयोग्य पुरोहित से एक कर्म (जिसका नाम नहीं है) कराना चाहिये।

११. १–१२. ५. शान्तिकर्म को शुद्ध रूप से सम्पन्न करने का महत्व। इसमें व्यवधान नहीं आना चाहिये; कोई कर्मसंकरता नहीं आनी चाहिये; तथा उसका रूप अनिष्ट विशेष के लिये निर्धारित स्वरूप के अनुसार ही होना चाहिये।

भार्गवीयाणि

७०.१.१. ॐ संपूज्य विधिवत्प्राज्ञं विद्वांसो मुनयः पुरा।
अपृच्छन्भृगुमव्यग्रं सर्वसत्त्वहिते रतम्॥

२. लोकत्रयनिविष्टानामुत्पातानामनेकधा।
भिन्नानां शमनं नोक्तं वद त्वसंशयं मुने॥

७०.१.३. प्रत्युवाच भृगुर्विप्राञ्छृणुताहितमानसः ।
उत्पातशमनत्रित्वं कथ्यमानमसंशयम् ॥
४. तत्र विप्रान्प्रवक्ष्यामि दुरिष्टशमनक्षमान् ।
अथर्वाङ्गिरसो वेदे विधिज्ञान्सर्वकर्मणाम् ॥
५. अहिंसा सत्यदाक्षिण्यशौचश्रद्धासमन्विताः ।
श्रुतिस्मृतिसदाचाराः कुलशीलवयोऽन्विताः ॥
६. तेषामेकः प्रधानत्वे यः शान्तो द्विजसत्तमः ।
भृग्वङ्गिरोविदत्यर्थं शुचिः स्यात्साधुसंमतः ॥
७. ब्रह्माणं तं नृपः कुर्याद्धोतारं सर्ववेदिनम् ।
एवमुक्ते भृगुं विप्राः प्रोचुर्विगतकल्मषम् ॥
८. होतारो भूमिभर्तॄणां महाशान्तेः प्रकीर्तिताः ।
ननु क्षीणे नृपे विद्वान्स्वधर्मप्रच्युतेऽपि वा ॥
९. तत्र शान्तौ प्रयुक्तायां कस्य शान्तिफलं भवेत् ।
नृपोऽप्यधार्मिकः कुर्याद्ब्रह्मणस्तर्पणं पुरा ॥
१०. ततः कृता महाशान्ती राजानं पाति सर्वतः ।
स व्रतः पावनं गच्छेद्द्विजानां पावनाय वै ॥
११. द्वादशाहं व्रतं तत्र पयोमूलफलाशनैः ॥ १ ॥
२. १. त्रीणि त्र्यहाणि कुर्वीत पयोमूलफलैः शुभैः ।
अनश्नंश्च त्र्यहं धीरः स पुरश्चरणो भवेत् ॥
२. तथैकोनं शतं नॄणां शुश्रूषूणामकल्मषम् ॥
अनुक्तवच्च त्र्यहं तत्कर्मणः करणे क्षमम् ॥
३. कृच्छ्रं चापि हितं कृत्वा कुर्युः कर्म समाहिताः ।
शुद्धात्मानो जपैर्होमैर्वैदिकैर्वीतमत्सराः ॥
४. ततः परं पुरोधःसु दिव्यं तन्त्रमवाप्नुयात् ।
ग्रहातिथ्यं च संरभ्य दिशां यागं च सर्वतः ॥

७०.२.५. नक्षत्रेषु च सर्वेषु यागं कृत्वा विधानतः ।
ततोऽमृतामहाशान्त्या स्थापयेत्पद्मसंभवन् ॥ २ ॥
३. १. सावित्र्या लक्षहोमं तु भौमे तिष्ठेद्विशारदः ।
कुर्युर्देयं च दानानां विप्रेभ्यो यस्य यत्प्रियम् ॥
२. गोभूमिकाञ्चनाश्वानां रत्नानां धान्यवाससाम् ।
रथानां वारणानां च दानं काममतः परम् ॥
३. तुष्येयुर्येन वा विप्राः संभवो यस्ययस्य हि ।
तत्तत्सर्वमुपादेयमेष दानविधिः स्मृतः ॥
४. दद्याच्च गुरवे ग्रामं धेनुं वासोयुगं तथा ।
अलंकारैश्च संपूज्य प्रीणयेत्प्रीतमानसः ॥
५. अनेन विधिना भौममद्भुतं शमयेद्गुरुः ।
एष एव विधिर्ज्ञेयो वियत्येऽप्यद्भुताश्रये ॥ ३ ॥
४. १. विशेषोऽयं तु सावित्र्या दशलक्षांस्तु होमयेत् ।
होमसमाहितमनाः कुर्याच्च घृतकंबलम् ॥
२. धेनूनां द्वादशं देयं शतनिष्कसमन्वितम् ।
गुरवे दीयमानं तच्छमयत्यम्बराद्भुतम् ॥
३. दिव्याद्भुतेषु कर्तव्यः कोटिहोमसमन्वितैः ।
गोसहस्रं च दातव्यं गुरवे दक्षिणाविधिः ॥
४. एष प्रोक्तो विधिः सम्यग्दिव्यानिष्टविपत्करे ।
सुभिक्षक्षेमसंपत्त्या प्रजानां पुष्टिवर्धनः ॥
५. कोटिहोमेषु सर्वेषु द्रव्यभेदाश्रयं फलम् ।
शान्तिपुष्ट्यभिचारार्थं तन्मे निगदतः शृणु ॥
६. सौम्यवृक्षाश्रयाः कार्याः समिधः शान्तिमिच्छता ।
अर्ककाश्मर्यनिम्बानां समिद्भिः शत्रुशातनम् ॥
७. दुर्नामकण्टकम्बूनां समिद्भिश्च विशेषतः ।
भग्नस्फुटितवृक्षाणां फलं शत्रुनिबर्हणम् ॥

७०.४.८. बिल्वपद्मोत्पलानां तु शुचिदेशप्ररोहिणाम् ।
सर्वदा सर्वकामांस्तु होमैः प्राप्नोति मानवः ॥
९. तिलव्रीहियवादीनां दध्नो मधुघृतस्य च ।
पयोगोधूमशालीनां होता शान्ति समारभेत् ॥
१०. सर्वेषां हविषां चैव घृतं शान्तिरं स्मृतम् ।
सर्वद्रव्ये घृतं तस्माद्धोमे प्रक्षेपमर्हति ॥ ४ ॥
५.१. यज्ञोपवीतिना कार्यं शान्तिकर्म विपश्चिता ।
उपवीतं तु पित्र्येषु सर्वेष्वेव समारभेत् ॥
२. मध्वाज्यदधिदुग्धेषु भक्ष्यमाणे विलेपने ।
यन्त्रवाहनशस्त्रेषु भवनेष्वायुधेषु च ॥
३. दर्पणे भक्तपात्रे च मणिमुक्ताफलेषु च ।
भूषणेषु तथान्येषु शय्यायामासनेषु च ॥
४. काकोलूककपोतानां मधोर्वा दर्शनं भवेत् ।
अन्येषां चाप्रशस्तानामागमो मृगपक्षिणाम् ॥
५. अश्वेतानां च पुष्पानां सरीसृपगणस्य च ।
वसालोहितमांसानामस्थिमज्जाशिरोरुहाम् ॥ ५ ॥
६.१. अकस्माच्चैव संघाते दर्शने नखभस्मनाम् ।
रसान्यत्वे रसानां च दुर्गन्धे वानिमित्तजे ॥
२. पद्मपुष्पाकृतिर्यत्र दृश्यते मधुसर्पिषि ।
क्षरापायसे चैव क्षयस्तस्य धनायुषोः ॥
३. घृते वा मधुदध्नि वा यदा पद्माकृतिर्भवेत् ।
स्वस्तिको वापि दृश्येत तदा मरणमादिशेत् ।
४. विकारो यत्र दृश्येत क्षीरोदनहविःषु वा ।
श्रोत्रियाय तु तद्दद्याद्धावैव शमयेन्नरः ॥
५. यत्रस्थं चाद्भुतं पश्येत्तत्रापि प्रतिपादयेत् ।
कुर्याद्वा वारुणीं शान्ति परमेण समाधिना ॥ ६ ॥

७०.७.१. अन्याकृतिषु वाप्येतद्ये स्थाने शान्तिकारकाः ।
तेषामथाक्षयं विद्यादायुषार्थधनेन वा ॥
२. चलिते ज्वलिते पाते स्फुरित उत्पतिते तथा ।
महाजनगजाश्वानां स्थाने विद्यान्महद्भयम् ॥
३. तत्र युध्यन्ति जातीनां भयं तत्स्यादसंशयम् ।
तत्रापि चार्थनिचयैः पशुभिर्विद्ययापि वा ।
४. उत्पातशमनार्थं तु ये क्रिया न प्रयुञ्जते ।
नराः क्षिप्रं विनश्यन्ते सान्वयाः सपरिच्छदाः ॥
५. विप्राणां भोजनं कार्यं सहस्रस्यायुतस्य वा ।
बलिपुष्पोपहारैश्च देवतानां प्रसादनम् ।
६. कर्तव्यं च यथान्यायं शान्तिकर्म विपश्चिता ।
एवं कृते भयं सर्वं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ७ ॥

८.१. शुभाशुभस्थितं चैव मुनयो भृगुमब्रुवन् ।
स प्रत्युवाच पुरुषे संवत्सरसमाश्रये ॥
२. शीतोष्णवृष्टिकालेषु वीतदोषेषु सर्वदा ।
संवत्सराख्यः पुरुषे निरुपद्रव उच्यते ॥
३. यदिनिर्घातभूकम्प दिग्दाहादि विवर्जितः ।
केतुभिश्चैव युज्येत यदि वादित्यकीलकैः ॥
४. अन्यैर्वा लोकनाशार्थैरद्भुतैर्नाशनाकुलैः ।
तत एष विशुद्धात्मा पुरुषः सुखमेधते ॥
५. अथ चेत्स बहुविधैरद्भुतैः परिसंयुतः ।
संवत्सरं भवेच्छीघ्रं कुर्युस्तच्छमनं बुधाः ॥ ८ ॥

९.१. तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
दिव्यतन्त्रविदाचार्यो यया फलमवाप्नुयात् ॥
२. पूर्वं तावद्विशुद्धात्मा स पुरश्चरणो भवेत् ।
देवतानां ततो यागं यथाश्रुति समाचरेत् ॥

७०.९.३. यागं कृत्वा ग्रहाणां तु नक्षत्राणां ततः परम् ।
ऋतूनथार्तवांश्चैव महादेवगणाधिपान् ॥
४. दिशश्च विदिशश्चैव यमेन्द्रवरुणांस्तथा ।
विश्वेश्वरं च विष्णुं च यजेताद्भुतकर्म च ॥
५. सूर्याचन्द्रमसावग्निं सर्वान्ग्रहगणांस्तथा ॥
वायुं तथाश्विनौ चैव महाशान्ति विधानतः ॥
६. कुर्याद्देवादृतो धीमानेवं दोषः प्रशाम्यति ॥ ९ ॥

१०. १. श्वेतं वा भवति पयो विलोहितं वा
पीतं वा भवति हि कृष्णपिङ्गलं वा ।
उत्पातः फलति यथा चतुःप्रकारस्त-
त्सर्वं शृणुत समासतो मयोक्तम् ॥
२. विप्राणां भवति हि शुक्लमम्बुदोषे
राजानं सपदि निहन्ति लोहितं च ।
पीतं चेद्भवति निहन्ति वैश्यवर्गं
शूद्राणां भवति हि कृष्णपिङ्गदेषे ॥
३. बीजं यत्र प्ररोहेत फलमथ प्रमादतः ।
एतदत्यद्भुतं नाम दम्पत्योस्तु विनाशनम् ॥
४. अपूजनात्तु पूज्यस्य तथापूज्यस्य पूजनात् ॥
अन्तःकरणदोषाच्च हेतोः शान्तिर्न जायते ।
५. तस्माद्वेदार्थशास्त्रज्ञान्वीतरागानमत्सरान् ।
परिचारकमुख्यांश्च कारयेत्कुशलान्द्विजान् ॥ १० ॥

११.१. विचारितं च विद्वद्भिर्निश्चितं सुधिया पुनः ।
देशकालसमायुक्तं कर्म कुर्याद्विचक्षणः ॥
२. चोदिते कर्मण्यन्यस्मिन्नान्यत्कुर्याद्विधानवित् ।
न च प्रारभ्य कर्माणि स्थातव्यं क्वचिदन्तरे ॥

७०.११.३.नापि कुर्वीत मतिमान्कदाचित्कर्मसंकरम् ।
कुर्वंस्तु न तथा कर्म दोषमुत्पादयेद्भृशम् ।
४. अन्यथाकरणे दोषान्समीक्ष्य तु बहूनिह ।
संकल्पवान्न समाप्तिः सावीर्याकृतिकर्मणि ॥
५. दृष्ट्वादृश्रुतं तु कात्स्न्येॅन ततः शान्ति समारभेत् ।
असमीक्ष्य तु कुर्वाणो न शान्ति लभते नरः ॥ ११ ॥
१२.१. वातिकस्य यथा वैद्यः पैत्तिकस्य च निश्चये ।
रोगस्य भैषजे दत्ते कर्मसिद्धिमवाप्नुयात् ॥
२. तस्मात्तावत्परीक्षेत यावन्निष्पन्नमद्भुतम् ।
असदस्यसदस्यानां कर्तुः कारयितुस्तथा ॥
३. विगुणं क्रियमाणं तु कर्म कुर्यादुपद्रवम् ।
विशेषतो निहन्येत कर्तारं स परिच्छदम् ॥
७०.१२.४.हेतुश्रुतं च दृष्टं च तत्मात्साद्गुण्यमाचरेत् ।
सगुणे च कृते तस्मिन्सर्वसंपद्भवेद्ध्रुवम् ॥
५. अशोकपुष्पैर्होमे तु मधुक्षीरसमन्वितैः ।
प्राप्नोति सुकृतैर्विप्रो गन्धर्वपदमुत्तमम् ॥
६. ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्तं यं यं कामं समीहते ।
तत्तत्प्राप्नोत्ययत्नेन सत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥
सत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥

इति भार्गवीयाणि समाप्तानि ॥ ५० ॥

सप्ततिः परिशिष्टानि समाप्तानि ॥

७०ख. गार्ग्याणि

यह शीर्षक परिशिष्ट के समाप्तिलेख, सूचियों और चरणव्यूह (तुकी० ४९.४,९) में मिलता है; और प्रस्तुत परिशिष्ट की गर्गसंहिता के साथ घनिष्ठ अनुरूपता इनके प्रमाण की पुष्टि करती है। अतः यह कुछ आश्चर्यजनक ही है कि परिशिष्ट में कहीं भी गर्ग का उल्लेख नहीं है, यद्यपि अन्तिम खण्ड को, जो परिशिष्ट का ही सार है, गार्ग्य प्रणीत बताया गया है। सम्भवतः परिचयात्मक अंश की पाठभ्रष्टता ही गर्ग के नाम के छूट जाने का कारण है। पाठ में अनेक अन्य गम्भीर भ्रष्टतायें भी हैं ऐसा लम्बे प्रक्षिप्त अंशों से स्पष्ट है (तुक०. ७.४ पर टिप्पणी तथा परिचयात्मक अंश में उल्लिखित १२ खण्डों में से चार को छोड़ देना)। फिर भी इन छूटे अंशों में से दो अगले परिशिष्ट में मिलते हैं।

१. १–५. परिचय : इस परिशिष्ट का ब्रह्मा ने गौतम को उपदेश दिया था।

२. २–४. २. वायव्य-वैकृतम् खंडों के शीर्षक (बृहत्संहिता के पैंतालीसवें अध्याय से लिये गये हैं)।

३. ३–७. १. सस्य-वैकृतम्।

७. २–१०. १. वृक्ष-वैकृतम्।

११. ४–१३. ३. चतुष्पदवैकृतम्।

१३. ४–१७. २. शक्रध्वजेन्द्रकीलादि-वैकृतम्।

१७. २–१९. ४. वृष्टि-वैकृतम्।

१९. ५–२२. ३. अग्नि-वैकृतम्।

२३. १–१४. विषयसार।

गार्ग्याणि

७०ख.१.१.ॐ प्रणम्य विष्टरासीनं ब्रह्माणं कविसत्तमम्।
प्रणम्य शिरसा देवं गौतमः पर्यपृच्छत॥
२. अद्भुतानि सुरश्रेष्ठ प्रजानामहिताय वै।
शमनं च तथा तेषां प्रब्रूहि विनयेन मे॥
३. तस्यतद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
अब्रवीत्परमः प्रीतः सर्वोत्पातप्रतिक्रियाम्॥

७०ख.१.४.शृणु वत्स यथान्यायं द्वादशाध्यायसंग्रहम् ।
प्रोच्यमानमशेषं तं वातवैकृतनोदितम् ॥
५. यस्माच्च वायुर्बलवाञ्छ्रेष्ठः सर्वाद्भुतोद्भवः ।
तस्मात्तमेव प्रथमं प्रवक्ष्यामि यथाविधि ॥ १ ॥
२.१. यान्ति यानान्ययुक्तानि विना वाहैर्नृभिस्तथा ।
युक्तानि वा न गच्छन्ति नरेन्द्राणां महद्भयम् ॥
२. भेर्यो मृदङ्गाः पटहा वाद्यन्ते वाप्यनाहताः ।
आहताश्च न वाद्यन्ते अचलानिचलन्ति वा ॥
३. अरण्ये तूर्यनिर्घोषो यदि श्रूयेत नाभसः ।
शरीरं व्यथते तत्र यदि वा वेश्मनि श्रुतः ॥
४. श्रूयन्ते च महाशब्दा गीतगान्धर्वनिस्वनाः ।
शरीरं बाध्यते तत्र व्याधिर्वा सुमहान्भवेत् ॥
५. कोष्ठे वा पतते यत्र हस्ताद्दर्वी कदाचन ।
पतते मुसलं चापि शूर्पं वा धूयते यदि ॥ २ ॥
३.१. गोलाङ्गलानां संसर्गो विकारश्चन्द्र सूर्ययोः ।
नारीं वा धयते नारी जायते तुमुलं भयम् ॥
२. प्रत्याहरन्ति सर्पन्ति स्तम्भप्रासादपादपाः ।
शयनासनयानानि नियतं नृपतेर्वधः ॥
३. वाति चाकालिको वायुर्घोरः शर्करकर्षणः ।
पातयन्वृक्षवेश्मानि कल्पान्त इव भीषणः ॥
३.४. सप्ताहमथ वा पक्षं निबध्नात्यतिदारुणम् ।
त्र्यहाद्यदि न वर्षेत घोरं शस्त्रभयं भवेत् ॥
५. वायव्येष्वेव नृपतिर्वायुं सप्तभिरर्चयेत् ।
द्वाविमाविति तिस्रो हि जप्तव्याः प्रयतैर्द्विजैः ॥ ३ ॥
४.१. वह्नौ दक्षिणो होमः कर्तव्योऽतिप्रयत्नतः ।
वायव्यामेव शान्तौ च वायोः सवितुरावपेत् ॥

७०ख.४.२.आदावन्ते च मध्ये च तथैवमनुयोजयेत् ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्वायवीशान्तिसिद्धये ॥
३. यमकं जायते पुष्पं फलं वा यमकं यदि ।
कुमुदोत्पलपद्मानि एकनाले बहून्यपि ॥
४. बहुशीर्षा द्विशीर्षा वा तथान्यप्रसवा अपि ।
यवा वा व्रीहयो वापि स्वामिनो मरणाय ते ॥
५. एकेवृक्षे च संपश्येन्नानात्वं फलपुष्पयोः ।
व्यत्यासमन्यथात्वं वा परचक्रागमो भवेत् ॥ ४ ॥
६.१. अनृतु फल पुष्पं वा न यथार्तु फलन्ति वा ।
ओषधीवीरुधो वापि जनमारभयं भवेत् ॥
२. अथ धान्यविपर्यासे अभद्रं चापि शंसति ।
तिला वा समतैलाः स्युः सुरातैला भवन्ति वा ॥
६.३. अग्राम्यं कारयेत्पुष्पं फलं वा विकृतं नृपः ।
धान्यानां वैकृते क्षेत्रं सह सस्येन दापयेत् ॥
४. सौर्यं चरुं पुष्पफले विकृते पशुमेव च ।
क्षैत्रपत्यं च भौमं च निर्वपेत्सस्यवैकृते ॥
५. सौर्या शान्तिः प्रयोक्तव्या सौर्यैर्मन्त्रैर्यथाविधि ।
उद्वा पतन्तमित्यृग्भ्यां गर्भं तु परिकीर्तितम ॥ ६ ॥
७.१. भौमेन चानुवाकेन गर्भयेत्सस्यवैकृते ।
सदक्षिणैर्द्विजैर्भुक्तैः कर्तारं चार्चयेत्ततः ॥
२. पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः ।
रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा बहून्रसान् ॥
३. अरोगा वा निवाते च शाखा मुञ्चन्त्यसंभ्रमे ।
फलं पुष्पं तथा बाला दर्शयन्तीति हासनम् ॥
४. सर्वावस्थां दर्शयन्तः फलपुष्पमनार्तवम् ।
क्षिप्रं तत्र भयं घोरं प्रवर्तेत चतुर्विधम् ॥

७०ख.७.५.सर्पान्मत्स्यान्पक्षिणो वा यत्र देवः प्रवर्षति ।
तत्र सस्योपघातः स्याद्भयं वातिप्रवर्तते ॥
६. सुरासवं तथा क्षौद्रं सर्पिस्तैलं तथा दधि ।
यत्र वर्षति पर्जन्यः क्षुद्रोगस्तत्र जायते ॥
७. उल्काताराश्च धिष्ण्येषु यदाङ्गारांश्च वर्षति ।
तदा व्याधिभयं घोरं तेषु देशेषु निर्दिशेत् ॥
८. नाराचाः शक्तयः खड्गाः प्रदीप्यन्ते यदा मुहुः ।
तदा शस्त्रभयं घोरं तेषु देशेषु निर्दिशेत् ॥
९. पुमानश्वो गजो वापि यदा यत्र प्रदीप्यते ।
नश्यन्ति सेवकास्तत्र प्रधानश्च विनङ्क्ष्यति ॥
१०. यत्र स्रवेच्चैत्यवृक्षः सहसा विविधान्रसान् ।
पृथक्पृथक्समस्तान्वा तत्प्रवक्ष्यामि लक्षणम् ॥
११. घृते मधुनि दुग्धे च घृते दुग्धे तथाम्भसि ।
क्षौद्रे मधुनि पाणीये घृते चैवापरं पयः ॥
१२. यत्रैतच्च महोत्पातं वृक्षेषु स्यात्सुदारुणम् ।
सुरासवे मिथोभेदः शोणिते शस्त्रपातनम् ॥
१३. तैले प्रधाना वध्यन्ते भक्ते क्षुद्भयमादिशेत् ।
अनृतौ चेत्फलं यत्र पुष्पं वा दृश्यते द्रुमे ॥
१४. ध्रुवं स्याद्दशमे मासि राज्ञस्तत्र विपर्ययः ।
पुष्पे पुष्पं भवेद्यत्र फले चैव तथा फलम् ॥
१५. पर्णे पर्णं विजानीयात्तत्र नानाविधं भयम् ।
शुक्लेन वाससा यत्र चैत्यवृक्षः समावृतः ॥
१६. ब्राह्मणानां भयं घोरं तदा तीव्रं विनिर्दिशेत् ।
रक्तवस्त्रावृतैश्चान्यैः क्षत्रियाणां महाभयम् ॥
१७. पीत वस्त्रैस्तु वैश्यानां शूद्राणां कृष्णवाससैः ।
नीलैः सस्योपघाताय मिश्रैस्तु मृगपक्षिणाम् ॥

७०ख.७.१८.विवर्णैर्वायवस्तीव्राः परं स्युर्दशमास्तः ।
दैवतानि प्रलपन्ति यस्य राष्ट्रे हसन्ति वा ॥
१९. उदीक्षन्ते पुरो वापि तत्र विद्यान्महद्भयम् ।
विहसन्ति निमीलन्ति लिङ्गानि विकृतानि च ॥
२०. मासान्तरेण जानीयात्तत्र तत्र महद्भयम् ।
यत्र चित्रमुदीक्षेत गायते चेष्टते मुहुः ॥
२१. एतेष्वष्टसु मासेषु राज्ञो मरणमादिशेत् ।
चित्राणि यत्र लिङ्गानि तथैवायतनानि च ॥
३२. विकारं कुर्युरत्यर्थं तत्र विद्यान्महाभयम् ।
उत्पातनं तडागनां सरसो वा गिरेस्तथा ॥
२३. समुद्देशे प्रदीप्यन्ते विद्यात्तत्र भयं महत् ।
यत्र वृक्षा अकालीनं दर्शनं फलपुष्पयोः ॥
२४. क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं मधु तोयं स्रवान्ति वा ।
शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्कारुहन्ति वा पुनः ॥
२५. उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥ ७ ॥
८.१. हसने देहनाशः स्याद्योधा नश्यन्ति शाखया ।
संभ्रमो देशनाशाय फली शिल्पिक्षयाय च ॥
२. बालानां मरणं कुर्याद्बालानां फलपुष्पता ।
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्तवम् ॥
३. क्षयः क्षीरस्रवे ज्ञेयः स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम् ।
वाहनापचयं मद्ये रक्ते संग्राममादिशेत् ॥
४. मधुस्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्रावे न वर्षति ।
अरोगा यदि शुष्यन्ते विद्याद्दुर्भिक्षलक्षणम् ॥
५. भेदः स्वपतितोत्थाने रुदत्स्वन्नक्षयो भवेत् ।
जल्पने धननाशः स्याद्गुल्मवल्लीलतासु च ॥ ८ ॥

७०ख.९.१.पूजितानां जलस्रुतौ राज्ञो मृत्युं समादिशेत् ।
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् ॥
२. भोजनं चात्र विप्राणां मधुसर्पिः समन्वितम् ।
छत्त्रध्वजं च दातव्यं पर्णहोमस्तथा परं ॥
३. मन्त्रैरौषधसंयुक्तैर्भूप्रदानमतः परम् ।
बलिं चैवोपहारांश्च गीतनृत्यं समन्ततः ॥
४. गन्धमाल्यं च धूपं च दीपं दद्यात्तथैव च ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानं च रुद्रस्योपहरेन्निशि ॥
५. पाकश्च दशमे मासि शुक्रस्य वचनं यथा ।
बृहस्पतिस्तथादित्यो ब्रुवेते यत्तथैव तत् ॥ ९ ॥
१०.१. रौद्री चैवात्र कर्तव्या वृक्षाद्भुतविनाशिनी ।
गुरवे दक्षिणां दद्यान्निष्कं भूमिं च तत्र वै ॥
२. अकाल प्रसुवो नार्यः कालातीताः प्रजास्तथा ।
सम्बद्धयुग्मप्रसवा द्वियुग्मप्रसवा अपि ॥
३. अमानुषाणि रुण्डानि संजायन्ते यदा स्त्रियाम् ।
अत्यङ्गानि अनङ्गानि हीनाङ्गान्यथ वा पुनः ॥
४. चतुष्पत्पक्षिसदृशान्यर्धमानुषवन्ति च ।
विनाशस्तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥
५. अप्राप्तवयसो गर्भो द्विचतुष्पत्स्त्रियोऽपि वा ।
विध्वस्तं विकृतं चापि प्रजायेत भयाय तत् ॥ १० ॥
११.१. तान्याशु परभूमिषु त्यक्तव्यानि शुभार्थिभिः ।
शान्तिश्चात्र प्रकर्तव्या ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥
२. वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ।
विजातं विकृतं वापि षण्मासैर्म्रियते नृपः ॥
३. अपत्यानि च यूथेभ्यस्त्याज्यानि परभूमिषु ।
स्वामिनो नगरं यूथमन्यथा तु विनाशयेत् ॥

७०ख.११.४. तिर्योनिषु यदा यान्ति मिश्रीभावः प्रजास्त्वपि ।
खरोष्ट्रहयमातङ्गाः पक्षिणो वा न साधु तत् ॥
५. अकाले वापि मोद्यन्ते काले वाप्यमदा यदि ।
शिवोष्ट्रहयमातङ्गाः पक्षिणो वा न साधु तत् ॥ ११ ॥
१२.१. अथानड्वाननड्वाहं धेनुर्धेनुं पिबेद्यदि ।
शुनी वा धयते धेनुं शुनीं धेनुरथापि वा ॥
२. तिर्यग्योनौ मानुषी वा परचक्रागमो भवेत् ।
अमानुषा मानुषाणि जल्पन्ते प्राणिनो यदि ॥
३. विचेष्टां वा विरावं वा मासेन म्रियते नृपः ।
चतुष्पत्पक्षिभुजगान्मानुषी जनयेद्यदि ॥
४. तिर्यग्योनौ मानुषं वा परचक्रागमो भवेत् ।
जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाथ जङ्गमम् ॥
५. तस्मिन्योनिविपर्यासे परचक्रागमो भवेत् ।
त्यागो विवासो दानं वा दत्त्वाप्याशु शुभे भवेत् ॥१२॥
१३.१. स्थालीपाकेन यष्टव्यं पशुना वा पुरोहितः ।
प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्ब्रह्मन्दक्षिणाम् ॥
२. याम्या कर्म प्रयोगस्तु प्रथमं तत्र दृश्यते ।
प्राजापत्यां ततः शान्तिं प्राजार्थी कारयेन्नृपः ॥
३. आदावन्ते च मध्ये च शान्तावुक्तस्तु तद्गणः ।
आरोग्यं च शिवं चैव देशे तस्मिन्नृपे भवेत् ॥
४. यत्राद्भुतानि दृश्यन्ते विचित्राणि समन्ततः ।
सुसमृद्धोऽपि देशः स क्षिप्रमेव विनश्यति ॥
५. राजवेश्मसु वैकृत्ये प्रासादध्वजतोरणे ।
औत्पातिकानि दृश्यन्ते राज्ञस्तत्र महद्भयम् ॥ १३ ॥
१४.१. प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्रासादवेश्मनाम् ।
अकस्मात्पतनं तेषां राजमृत्युकरं स्मृतम् ॥

७०ख.१४.२. देवराजध्वजानां च पतनं भङ्ग एव वा ।
निषेवणं वा क्रव्यादैः..................
..............प्रभ्रष्टैर्वीतरश्मिकैः ॥ १४ ॥

१५.१. प्रभ्रष्टग्रहनक्षत्रैर्दिशः सर्वाः समाकुलाः ।
संध्या चोभयथा दीप्ता तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥

२. यदि वा दीर्यतेऽकस्माद्भूमिश्छिद्री भवेद्यदि ।
प्रकम्पतेऽतिमात्रं वा सर्वेषु च भयाय तत् ॥

३. रक्षः पतंगैः पन्थानो न वहन्ति भयान्विताः ।
रक्षोरूपाणि दृश्यन्ते न च रक्षा गृहेष्वपि ॥

४. संप्रविष्टैः पिशाचैर्वा रक्षोभिर्वापि तन्निभैः ।
अचिरान्नगरं तत्र जनमारेण मार्यते ॥

५. ऋतवस्तु विपर्यस्ता ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ।
नक्षत्राणि वियोगीनि भयमीदृक्प्रदर्शनम् ॥ १५ ॥

१६.१. अपूज्या यत्र पूज्यन्ते न पूज्यन्ते च पूजिताः ।
पूज्येष्वदाननिष्ठा च भयमीदृक्प्रदर्शनम् ॥

२. नाधीयन्ते न पूज्यन्ते ब्राह्मणा बलिभिः सुराः ।
नचैवात्मीयधर्मेषु रतिं कुर्वन्त्यधर्मतः ॥

३. भिन्नाः कौटिल्यबहुला गजाः पुरुषवाजिनः ।
कलहे स्युर्निरुत्साहाः ससत्याः सत्यवर्जिताः ॥

४. शीलाचारविहीनाश्च मद्यमांसानृत प्रियाः ।
नग्नपाषण्डभूयिष्ठा विनाशे पर्युपस्थिते ॥

५. महाबलिं महाशान्ति भोज्यानि सुमहान्ति च ।
प्राजापत्यं महेन्द्रं च महादेवमथापि वा ॥ १६ ॥

१७.१. ऐन्द्रस्थाने तु माहेन्द्रीं रौद्रे रौद्रीं प्रयोजयेत् ॥
गवामष्टशतं दद्याद्विप्रेभ्यो मनुजाधिपः ॥

७०ख.१७.२. गुरवे तु शतं निष्कं प्रजास्वेवं शिवं भवेत् ।
अनावृष्ट्यातिवृष्ट्या वा दुर्भिक्षेण भयं भवेत् ॥
३. अकालवर्षो रोगाय अतिवृष्टिर्भयाय च ।
अनभ्रं वर्षतेऽकस्माद्वैद्युतं गर्जितं तथा ॥
४. अनभ्रे वापि निर्घातः पतितो राजमृत्यवे ।
तीक्ष्णं च वर्षत्यनृतौ ऋतुष्वेव न वर्षति ॥
५. यदा चोष्णे भवेच्छीतं शीते चोष्णं तथैव च ।
दृष्टो भावस्तु विकृतो न यथर्तु स्वरूपकः ॥
६. अनारोग्यं भवेच्चैव प्रजानामिति निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

१८.१. सप्तरात्रं यदा वर्षेत्प्रबद्धं पाकशासनः ।
अनृतौ तस्य देशस्य प्रधानस्य वधो ध्रुवम् ॥
२. शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत् ।
मज्जास्थिस्नेहमांसं वा जनमारीभयं भवेत् ॥
३. अङ्गारपांसुवृष्टेस्तु नगरं तद्विनश्यति ।
फलं पुष्पं शमीधान्यं हिरण्यं वा भयाय तत् ॥
४. जन्तवो दीन विकृताः फलालोऽपि विनाशनः ।
छिद्रावर्ताः प्लवङ्गाश्च सस्यानामतिवर्धनम् ॥
५. अनभ्रेवा दिवारात्रौ श्वेतमिन्द्रायुधं भवेत् ।
पूर्वपश्चादुत्तरे वा दक्षिणे वापि दृश्यते ॥
६. सुसमृद्धमपि स्थानं दुर्भिक्षेण विनश्यति ॥ १८ ॥

१९.१. यद्यनभ्रेऽपि विमले सूर्यछाया न दृश्यते ।
न निरभ्रे प्रतीपा वा तत्र देशभयं भवेत् ॥
२. सूर्येन्द्रवायुपर्जन्या यष्टव्या वर्षवैकृते ।
अन्नानि सहिरण्यानि धान्यं गावश्च दक्षिणाः ॥
३. वैश्वदेवी च कर्तव्या सर्वाद्भुतविनाशिनी ।
गुरवे च हयः श्वेतः सर्वलक्षणलक्षितः ॥

७०ख.१९.४. शतं निष्कं सुवर्णस्य दातव्यं वा गवां शतम् ।
५. अथातोऽग्निवैकृतमध्यायं व्याख्यास्यामो यथोवाच भगवाञ्छुक्रः ॥
६. अनिन्धनोऽग्निर्दीप्येत यत्र तूर्णमघस्वनः ।
न दीप्यते सेन्धनो वा सराष्ट्रं पीडयेन्नृपम् ॥
७. प्रज्वलेद्दधि मांसं वा तथा दूर्वापि किंचन ।
अग्नि विना यदा शुष्कं नियतं नृपतेर्वधः ॥ १९ ॥
२०.१. प्रासादं तोरणं द्वारं प्राकारं काश्यपं गृहम् ।
शयनासनयानं च ध्वजं छत्रं सचामरम् ॥
२. अनग्निना यदि दहेद्विद्युता वापि निर्दहेत् ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तत्र नियतं नृपतेर्वधः ॥
३. अनिशायां तमांसि स्युर्यदि वा पांसवो रजः ।
धूमाश्चानग्निजा यत्र तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥
४. रात्रौ दिवा चानभ्रे वा यदि ज्वाला प्रदृश्यते ।
गर्हितं ज्योतिषां चैव दर्शनं वा भवेन्निशि ॥
५. पुराणं चैव पतनं ज्वलतां च मुहुर्मुहुः ।
दृश्यतेऽन्यच्च सहसा तत्राप्यग्निभयं वदेत् ॥ २० ॥
२१.१. प्रासादादिषु चैत्येषु यदि धूमो विनाग्निना ।
भवत्यग्निरधूमो वा तथैवातिभयावहः ॥
२. ज्वलन्ति यदि शस्त्राणि विनमन्त्युन्नमन्ति वा ।
कोशेभ्यो वापि निर्यान्ति संग्रामस्तुमुलो भवेत् ॥
३. प्रदीप्यन्ते च सहसा चतुष्पत्पक्षिमानुषाः ।
वृक्षावा पर्वता वापि तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥
४. शयनासनयानेषु केशप्रावरणेषु च ।
दृश्यतेऽतीव सहसा तत्राप्यग्निभयं भवेत् ॥

७०ख.२१.५. गर्जन्त्यायुधशस्त्राणि विनमन्त्युन्नमन्ति वा ।
धनुना सह वा बाणाः संग्रामस्तुमुलो भवेत् ॥ २१ ॥
२२.१. समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैस्तु घृतेन च ।
होतव्योऽग्निः स्वकर्मन्त्रैः सुवर्णं चात्र दक्षिणा ॥
२. पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजातीन्भोजयेत्ततः ।
तेभ्य एव यथाशक्त्या दक्षिणां दापयेन्नृपः ॥
३. अग्निर्भूम्यामिति त्रिभिराग्नेयं तत्र कारयेत् ।
गुरवो दक्षिणां दद्यान्निष्कमश्वं च सुन्दरम् ॥ २२ ॥
२३.१. गार्ग्येणोक्तं प्रवक्ष्यामि कृत्स्नमुत्पातलक्षणम् ।
भूमिकम्पो भवेद्यत्र देवताप्रतिमा हसेत् ॥
२. देवता भ्रमते यत्र मृत्युस्तत्र विनिर्दिशेत् ।
गर्जनं वापि कूपानामुपसर्गस्तु जायते ॥
३. प्रतिस्रोतवहा नद्यो भवन्ति च कथं चन ।
षड्भिर्मासैर्विजानीयात्परचक्राभिमर्शनम् ।
४. अकालजं फलं पुष्पं शीतोष्णत्वमकालजम् ।
अन्यं स्वामिनमिच्छन्ति नद्यश्चाकालसंभवाः ।
५. अचलं च चलं यत्र चलं वाप्यचलं भवेत् ।
राजा विनश्यते तत्र देशो वापि विनश्यति ॥
६. दिवा तारा यत्र पश्येच्छ्वेतः पक्ष्यथ वा भवेत् ।
रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्देशभंगं विनिर्दिशेत् ॥
७. शशकं जम्बुकं वापि सूकरं हरिणं तथा ।
स्थानमध्ये यदा पश्येच्छून्यं भवति निश्चयम् ॥
८. अरण्यमृगजातीयाः स्वयं यान्ति नृपालयम् ।
तत्स्थानं तु भवेच्छून्यं भग्नप्राकारतोरणम् ॥
९. प्राकारवेश्मभित्तीषु तोरणे गोकुलेऽपिवा ।
मधूनि यत्र दृश्यन्ते तत्र वै कस्य किं फलम् ॥

... ...

७०ख.२३.१०.कालनष्टपथं सीमां तृणवल्लीसमाकुलम् ।
स देशो मानुषैर्मुक्तो मृगाणां गोचरो भवेत् ॥
११. प्रत्यादित्यं यदा पश्येत्पुरे देवकुलेऽपि वा ।
अपि शक्रसमो राजा अब्दमध्ये विनश्यति ॥
१२. वापीकूपतडागेषु नद्यां वा तरते शिला ।
राजभङ्गं भवेच्चैव चौरव्याधिभयं तथा ॥
१३. राजगामिषुपुष्पेषु वस्त्रेष्वाभरणेषु च ।
अनग्निना यदि दहेत्परिघं तत्र वै ध्रुवम ॥
१४. तत्पातपरित्यक्त कदाचिदपि बुधस्योदयं भवति ।
दहनं पवनजल मरणरोगरक्षक्षयाय बुद्धिवाकरोति बुधः ॥
१५. तत्र कुर्यान्महाशान्तिममृतां विश्वभेजीम् ॥ छ ॥
इति गार्ग्याणि समाप्तानि ॥ छ ॥

७०ग. बार्हस्पत्यानि

यद्यपि पाण्डुलिपिकार ने इसे एक ही इकाई माना है, तथापि इसके वस्तुतः तीन स्पष्ट भाग हैं। प्रथमतः, २२.१–२६. ३, अग्निवर्ण लक्षणम्, एक स्वतंत्र अंश है और इस कारण इसे २१ वीं और २२ वीं परिशिष्ट का ही अंश मानना चाहिये। यहाँ सम्भवतः इसे इसलिये सम्मिलित कर लिया गया है क्योंकि इसमें बृहस्पति और गौतम का संवाद है। द्वितीयतः, यह गार्ग्याणि का ही लुप्त पाठ है :—

२६. ४–२९. २. मृगपक्ष्यादि वैकृतम्।

२९ ३–३१. ७. लिङ्गवैकृतम्।

तृतीयतः, ३२. १–३६ वास्तविक बार्हस्पत्यानि है, जिसे गार्ग्याणि के बारह खण्डों का सार माना गया है।

बार्हस्पत्यानि

७०ग.२२.१. ॐ आसीनं तु हिमवति बृहस्पतिं सुखावहम्।
गौतमः परिपृच्छति त्रिनयात्संशितव्रतः
२. कथमग्निः परीक्ष्योऽयं मन्त्रकर्मणि शोभनः।
स्वरूपं ज्ञापय त्वं हि शुभाशुभनिबोधने ॥ २२ ॥

२३.१. बृहस्पतिः प्रत्याहतं गौतमम् ॥
श्वेतः सुगन्धिः पद्माभो नर्धूमो दुन्दुभिस्वनः।
असक्तोऽमुटितशिखः स्निग्धोत्थायी प्रदक्षिणः ॥
२. हूयमानः प्रदीप्तः स्याद्दीप्ततेजाः सुखप्रदः।
शान्तिकर्मणि यत्राग्निर्नियतं सिद्धिलक्षणम् ॥
३. स्वस्तिकावर्धमाना च श्रीवत्सा च प्रदक्षिणा।
ज्वालारूपेण दृश्येत सा वै श्रीः सर्वतोमुखी ॥
४. यदाहोत्रा प्रसन्नेन हूयमानो यथा शिखी।
घोषमुत्पादयन्स्निग्धं कल्याणं तद्विनिर्दिशेत् ॥
५. दीप्तश्च रत्नसंकाशः क्षेमो दुन्दुभिवद्धनः।
धूमः प्रशस्तो भवति स्वार्थसिद्धिकरो नृणाम् ॥ २३ ॥

७०ग.२४.१. स्निग्धघोषोऽल्पधूमश्च गौरवर्णो महान्भवेत ।
पिण्डितार्चिर्वपुष्मान्वा पावकः सिद्धिकारकः ॥

२. यदात्वग्निः सर्वदिक्षु ज्वालाग्रैः स्पृशते हविः ।
तदास्य नृपतिः शीघ्रं परराष्ट्रं च मर्दति ॥

३. तिष्ठन्तं स्थावरं स्निग्धं श्रूयते यत्र गीतकम् ।
वाचः प्रसन्ना होमेषु मङ्गल्याश्चैव सिद्धये ॥

४. कोकिलस्य मयूरस्य भासस्य कुरलस्य च ।
होमेषु श्रवणं चैव प्रादक्षिण्यं च शस्यते ॥

५. शतपत्रा रुदन्ती च चाषस्य नन्दनं तथा ।
रम्भणं चैव धेनूनां हवनेषु प्रशस्यते ॥ २४ ॥

२५.१. पद्मवैडूर्यनिकाशा वादित्राणां च निस्वनाः ।
गावः सवर्णवत्साश्च दृष्टा होमे प्रशस्यते ॥

२. विकासिपद्मसदृशः प्रसन्नार्चिर्हुताशनः ।
सुसमानाभिरर्चाभिः स्निग्धाभिरनुपूर्वशः ॥

३. गम्भीरं नर्दते यत्र तदग्र्यं सिद्धिलक्षम् ।
अक्षतान्फलपुष्पाणि वर्धमानमपां घटम् ॥

४. दृष्ट्वा वा यदि वा श्रुत्वा कर्मसिद्धिं समादिशेत् ।
पीठछत्रध्वजनिभा ज्वाला वारणसंनिभाः ॥

५. प्रशस्ता उज्ज्वलाश्चैव वज्रकुण्डल संनिभाः ।
प्रदक्षिणगतिः श्रीमानग्निः कर्तुर्मनोहरः ।
यस्य स्याद्विजयं कुर्यात्क्षिप्रं नरपतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥

२६.१. भूम्यां मेघाभिवृष्टानां मधुपायससर्पिषाम् ।
कृष्णवर्त्मा सुगन्धिः स्याज्जयं क्षितिपतेर्वदेत् ॥

२. शङ्खस्वस्तिकरूपाणि चक्ररूपं तथा गदा ।
शिरो माला च दृश्येत तद्वै विजयलक्षणम् ॥

७०ग.२६.३. घृतवर्ण निभस्त्वग्निः स्निग्धघोषो महास्वनः ।
चित्रभानुः प्रसन्नो वा नियतं सिद्धिलक्षणम् ॥
४. मृगपक्षिण आरण्याः प्रविशन्ति यदा पुरम् ।
ग्राम्या वा त्यक्त्वा नगरमरण्यं यान्ति निर्भयाः ॥
५. दिवा रात्रिचरा वापि रात्रौ वापि दिवाचराः ।
दिवा वा पुरमध्यस्था घोरं वाश्यन्ति निर्भयाः ॥ २६ ॥
२७.१. राजद्वारे पुरद्वारे शिवा वाप्यशुभं वदेत् ।
त्यक्त्वारण्यं च तिष्ठन्ति नगरं मृगपक्षिणः ॥
२. आषाढे श्रवणे वापि शून्यं भवति तत्पुरम् ।
त्यक्त्वा सिंहाः स हरिणा मूषिकं सूकरं रुरुम् ॥
३. दृष्ट्वा प्रविष्टान्नगग शून्यं भवति तत्पुरम् ।
अभिराचं वदन्ते च पशव्या मृगपक्षिणः ॥
४. श्येना गृध्रा बकाः काकाः सर्वे मण्डलचारिणः ।
वाशन्ते भैरवं तदप्याशु विनश्यति ॥
५. निशायां बहवः श्वानो रोरुवन्ति यदा तु ते ।
हन्यमाना न गच्छन्ति तत्र वासो न रोचते ॥
६. प्रासादध्वजशालासु प्राकारद्वारतोरणैः ।
गर्दभऋश्यभासानां पिण्डान्दृष्ट्वा पुरं त्यजेत् ॥
७. पूर्वमुखश्च संध्यायामप्रशान्तस्वरो मृगः ।
ग्रामीणघातं शंशेत्स ग्रामण्यप्रतिचारतः ॥
८. ग्रामद्वारे च वाश्येत वनादागत्य जम्बुकः ।
तीक्ष्णस्वरेण महता दिष्टो ग्रामवधो हि सः ॥
९. यद्याति वेश्म कपोतः प्रविशेत विशेषतः ।
राजवेश्मन्युलूको वा तत्त्याज्यमचिराद्गृहम् ॥
१०. अकस्माद्वेश्मप्राकारे प्रासादे तोरणे ध्वजे ।
पतन्ति बहवो गृध्राः काकोलूका बकैः सह ॥ २७ ॥

७०ग.२८.१. अथाप्येतेषु स्थानेषु मधु संजायते यदा ।
नलिनी चैव वल्मीकः षण्मासैर्म्रियते नृपः ॥
२. मृगः पशुर्वा पक्षी वा सूकरो वापि वाश्यते ।
यदि चोत्थाय शृणुते स मनुष्यो विनश्यति ॥
३. काकमूषिकमार्जाराञ्छ्वपतंगान्भयावहान् ।
अतीव बहुशो दृष्ट्वा दुर्भिक्षेण क्षयं वदेत् ॥
४. श्वानः शिवाभिर्वाश्यन्तो भ्रमन्तः पुरमध्यतः ।
अस्थीनि वा मृतादीनां जनमारभयंकराः ॥
५. काष्ठं वा यदि वा शृङ्गं गृहीत्वा शुनकः स्वयम् ।
ग्राममध्येन धावन्स्यात्तथैवाहुर्महद्भयम् ॥ २८ ॥

२९.१. पुरोहितस्तु कुर्वीत कापोतीं शान्तिमुत्तमाम् ।
देवाः कपोत इति च सूक्तं तत्र समादिशेत् ॥
२. आवापे व्यतिषङ्गे च उपरिष्टाच्च हूयते ।
कामिकां दक्षिणां दद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति ॥
३. देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति दीप्यन्ति प्रज्वलन्ति वा ।
उद्विजन्ति रुदन्ते वा प्रस्विद्यन्ते हसन्ति वा ॥
४. उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति पिबन्ति वा ॥
एजन्ति विक्षिपन्ते वा गात्रप्रहरणध्वजान् ॥
५. अवाङ्मुखा वदन्ते वा स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ।
वपन्ते वाग्निमुदकं स्नेहं रक्तं पयो वसाम् ॥ २९ ॥

३०.१. जल्पन्ति वा निश्वसन्ति विचेष्टन्ते रुदन्ति वा ।
चित्रं संवीक्ष्यते यत्र गात्रैर्वापि विचेष्टितैः ॥
२. यत्रैते संप्रदृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः ।
लिङ्गायतनचैत्येषु तत्र वासो न रोचते ॥
३. राज्ञो वा व्यसनं तत्र स वा देशः प्रलीयते ।
क्षुच्छस्त्रमरणैर्वापि किंचित्तत्राभिशस्यते ॥

७०ग.३०.४. देवतायतनैर्वापि प्रयाताः सुमहोत्सवैः ।
जपहोमश्च कल्पन्ता सीदतां च समे पथि ॥

५. समे पातमकस्माच्च उदासीनां तथैव च ।
दृश्यते तद्विनाशाय राज्ञो जनपदस्य वा ॥ ३० ॥

३१.१. यत्र प्रस्थानि भूतानि लिङ्गस्यायतनानि च ।
तत्र शाम्यन्ति घोराणि जपहोमश्च कल्पते ॥

२. प्रासादः पुण्डरीकं वा विशीर्येत पतेत वा ।
वातवज्रहतो वापि पुरमुख्ये भयं भवेत् ॥

३. पितामहस्य धर्मेषु यन्निमित्तं द्विजेषु तत् ।
अश्वक्रान्ताग्नियानेषु तानि पुरोहिते ॥

४. पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ।
ज्ञेयं माण्डलिकानां च यत्तत्स्कन्दविशाखयोः ॥

५. लौकिकं वैष्णवं ज्ञेयं वैश्वदेवं च सर्वदा ।
सेनापतौ गणेशानां गान्धर्वं सचिवेषु च ॥

६. देवप्रेष्यं नृपप्रेष्ये देवस्त्रीणां नृपस्त्रियाम् ।
काश्यपं यन्त्रप्रासादे वास्तोष्पत्यं पुरे स्थितम् ॥

७. कुमारीषु कुमारीजं कुमारेषु कुमारजम् ।
यक्षराक्षसनागैश्च यथोक्तैः पानकर्म च
यथोक्तैः पानकर्म चेति ॥ ३१ ॥

३२.१. अथातः सर्वसर्वसमुच्चयः एकमध्यायं व्याख्यास्यामो
यथोवाच भगवान्बृहस्पतिः ॥

२. यद्द्वादशभिरध्यायैर्व्याख्यानं परिकीर्तितम् ।
तत्समासेन भूयोऽपि शृणु पर्यायमागतम् ॥

३. पराजितो राहुनिपीडितमण्डलो
विवर्णः संध्याविकृतो निःप्रभो यदा ।

अस्तमनं याति दिवाकरः
तदाशु विद्यात्सुब्रह्मजनक्षयम् ॥

७०ग.३२.४. गृहीतो राहुणा सार्धमुत्तिष्ठति दिवाकरः ।
तदा धर्मफलं क्षीणं कलिमाविशते प्रजा ॥

५. अमुक्तो राहुणा सार्धमुत्तिष्ठति यदा शशी ।
तदा धर्मफलं क्षीणं कलिमाविशते प्रजा ॥

६. अमुक्तो राहुणा सार्धमस्तं गच्छति चन्द्रमाः ।
तदा ततो भयं विद्यान्मृत्युमाविशते प्रजा ॥

७. अवाद्यमानाः पटहाः प्रवदन्ति मुहुर्मुहुः ।
शस्त्राणि वाहनानि च ज्वलन्त्यशुभदारुणम् ॥

८. वातप्रकोपो रजसानुविद्धा
दिशश्च संध्या च घनानुयाता ।
द्रक्षन्ति संध्या यदि पञ्चवर्णा
भयानि राज्ञः प्रतिवेदयन्ति ॥

९. अनभ्रे स्तनते यत्र नभोगुल्म गुल्मायते ।
क्षिप्रं विद्रवते राष्ट्रं दशवर्षाणि पञ्च च ॥

१०. अनभ्रे पतते विद्युद्दर्शयेद्वाघनोत्थिताम् ।
अनभ्रे वापि निर्घातिः पतितोराजमृत्यवे ॥

११. यद्यह्नि वातेषु महेन्द्र रेखा
महेन्द्रचापः समुदेति रात्रौ ।
तदा भयं पार्थिवमण्डलानां
वदन्ति शास्त्रार्थविदो द्विजेन्द्राः ॥

१२. निकल्कयुक्तो निशि सेन्द्रचापो
विवर्धमानः समुदेति रात्रौ ।
विशीर्यमाणा पतते तथोल्का
तदा भयं पार्थिव मण्डलानाम् ॥

७०ग.३२.१३.मुञ्चन्ति नागा रुधिरं करैश्च
लोमानि दीप्यन्ति तुरंगमाणाम् ।
दीप्यन्ति खड्गानि च खेचराणि
चिह्नानि राज्ञः प्रतिवेदयन्ति ॥
१४. गिरिवरपतनं स्वभूमिचालः
प्रतिभयता च तथैव मानुषाणाम् ।
विकृतजननमुक्तिमुग्रवाचा
महति भये मृगपक्षिणो वदन्ति ॥
१५. छत्रे गृहे वासरथे ध्वजे च
धूमः समुत्तिष्ठति यस्य चाग्निः ।
स पार्थिवः क्षीणमनुष्यकोशः
प्राप्नोति नाशं च जनक्षयं च ॥
१६. महोर्मिभिः स्वैर्विततैर्जलौघैर्नद्यः
स्वकुलाच्च हरन्ति वृक्षान् ।
यदि प्रतिस्रोतवहास्तदा स्युर्वि-
नाशना देशपरा नृपस्य ॥
१७. यदा तु घाते च दिवाकरप्रभाः
स्वरेणुभिर्वापि विधूमसंभ्रमाः ।
न तस्य वासं विषये वदन्ति
आहुर्गणानां च विवृद्धिनाशः ॥
१८. हुताशनस्य ज्वलनं निरेधं
तथा न चैव चैव ज्वलते च सेध्मा ।
... ...
भयानि राज्ञः प्रतिवेदयन्ति ॥
१९. शिलोच्चयानां च शिलानिपातः
पुरद्रुमाणां च विषाणपातः ।

चैत्यद्रुमाणां च तथैव पातो
भयानि राज्ञः प्रतिवेदयन्ति ॥
७०ग.३२.२०. अचाल्यवत्साः पुरगोपुरेषु
भ्रमन्ति गावः कृतरौद्रशब्दाः ।
मृणालबद्धाश्च गजा भवन्ति
भयानि राज्ञः प्रतिवेदयन्ति ॥
२१. प्रासादगोपुरमुखाश्च पतन्ति यत्र
इन्द्रध्वजोत्थितवनस्पतिवाजिनां च ।
तेषां वदन्ति पचनानि सुखावहानि
सौम्यादि संभ्रमयता च तथादिशन्ति ॥
२२. ऊर्ध्वं विलोक्य नगरं प्रतिसंनिविष्टाः
सूर्योदये खलु रुदन्ति शिवातिरौद्रम् ।
गृध्राश्च मण्डलसमुत्पतिता भ्रमन्ति
प्राप्तं भयं जनपदस्य समादिशन्ति ॥
२३. दण्डाशनिः पतति यत्र सविस्फुलिङ्गा
भूः कम्पते दिनकरस्य भवेत्प्रशान्तिः ।
चन्द्रे च यत्र विकृतं च भवेदशान्तं
मासात्समुद्भवति तत्र भयोऽतिघोरः ॥
२४. चैत्यद्रुमाणां रुधिरप्रकोपाः
कबन्धयानानि भवन्ति यत्र ।
संध्यासुरक्षोऽधिपतेर्जनानां
प्रभूति राज्ञोऽतिभये भवन्ति ॥
२५. वृष्टिर्यदा वर्षति रेनुवर्षैस्त-
तोपरिष्टाद्धरितालवर्षम् ।
ततः परं वर्षति शैलवर्षं
तदा बलं नश्यति पार्थिवस्य ॥

७०ग.३२.२६.आरण्यो ग्रामवासी मृगशकुनिगणो ग्रामवासी वनान्ते
गृध्राणां संनिपातो नरपतिभवने गोपुरे वा पुरे वा ।
यत्र स्यान्मानुषीणां खरकरभमुखानेकरूपा प्रसूतिस्त-
त्स्थाने जीवितार्थी स्थितिमति कुरुते नैव पातैः प्रदुष्टे ॥

२७. प्रयान्ति देवाः सहसायतस्था
वनानि वा यत्र पतन्ति भूमौ ।
स्थानानि मुच्यन्ति नदन्ति केचित्
तथा परं शोणितजग्धगात्राः ॥

२८. उत्पात संघैरत्युग्रैः क्षात्रहानिः प्रजायते ।
लोकानां पीडनं चैव रोगचौराग्निसंभवम् ॥

२९. अग्नीनां संप्रदोषाः प्रतिभयजनना दीप्यमाना दिशश्च
मध्याह्ने चान्तरिक्षे ग्रहगणखचिता गृध्रसंघैः प्रकीर्णाः ।
निर्घातैः पांसुवर्षैः सततमलिनता भूप्रचालश्च घोरो
देवानां चाश्रुपातो नृपतिभयकरा राष्ट्रनाशाय चैते ॥

३०. शिवोदये यत्र दिवाकरस्य
ज्वालाविमुच्य ऊर्ध्वमुखी प्ररोदिति ।
समावृता वायसगृध्रसंघैस्तदा
भयं वेदविदो वदन्ति ॥

३१. रुदन्ति नागास्तु विमुक्तहस्ता
विमुक्तदन्तास्तुरगा रुदन्ति ।
रुदन्ति नार्यश्च समागमे च
तदा भयं स्याच्छ्रुतिलिङ्गमूलम् ॥

३२. यदा तु वस्त्राणि वरद्रुमाणां
प्रकाश वृष्ट्या निपतन्ति मूर्ध्नि ।
समीक्ष्य पातं च यथार्थदृष्टं
भयाय राष्ट्रस्य नृपस्य विद्यात् ॥

७०ग.३२.३३.शकटाद्यानि यानानि यदायुक्तानि संचलेत् ।
तदा जनपदे विद्यान्महाभयमुपस्थितम् ॥
३४. यथैव नित्यं दृश्यन्ते तथैव समुदाहरेत ।
न तस्यातिक्रमः कश्चिदकृते शान्तिकर्मणि ॥
३५. क्षयो जनपदस्त्रीणां विद्याद्गजपुरोहिते ।
जपं होमं च शान्तिं च उत्पातेषु प्रयोजयेत् ॥
३६. विशेषेणामृतां कुर्याद्बृहस्पतिवचो यथा ।
होमं लक्षमितं कुर्याज्जपेद्वा वेदसंहितां ॥
दानानि तु हिरण्यानि शान्तिकर्मणि योजयेत् ॥
शान्तिकर्मणि योजयेदिति ॥ ३२ ॥
बार्हस्पत्याद्भुतानि समाप्तानि ॥

७१. औशनसाद्भुतानि

१. १–२. ४. परिचय : उशना ने इसका नारद को उपदेश दिया था।
२. ५–३. ४. ऋतु-विपर्यास।
३. ५–४. १. जब पशु मनुष्यों की भाँति बोलने लगते हैं।
४. २–५. जब स्थावर भी जङ्गम हो जाते या बोलने लगते हैं।
५. १–८. १. योनिव्यतिकरः।
८. ३–९. ३. असामान्य वर्षा।
८. २; ९. ४–५. अनग्निज्वलनम्।
१०. १–११. ५. वृक्ष-लक्षण—विशेषतः चैत्यवृक्ष के।
१२. १–४. देवकार्यों के लिये शकुन-विचार।
१२. ५–१४. ३. विभिन्न प्रकार के जलाशयों से सम्बद्ध शकुन। यहाँ १३.१–४. श्लोक स्पष्टतः अप्रासंगिक हैं।
१४. ४–५. आयुधों से शकुन विचार।
१५. १–२. बिना ऋतु के पुष्पित और फलित होने वाले वृक्षों से शकुन विचार।
१५.३. जब देवालय, प्रासाद और दुर्ग में अग्निकाण्ड या विस्फोट होता है।
१५. ४–८. संगीत लक्षण।
१५. ९–१७ विविध लक्षण।
१६. १–१८. ३. विभिन्न वर्गों या व्यक्तियों को शकुनों से प्रभावित मानने के सम्बन्ध में विभिन्न नियम। यहाँ १६.३–४ श्लोक अप्रासंगिक हैं।
१८. ४–१९. ५. विविध शकुन।
१९. ६–७. शकुन विचार सम्बन्धी नियम।
१९. ८–९. शान्ति कर्म।

औशनसाद्भुतानि

७१.१.१. पप्रच्छोशनसं काव्यं नारदः पर्यवस्थितः।
दिव्यांश्चैवान्तरिक्षांश्च उत्पातान्पार्थिवांस्तथा॥
२. ऋतूनां च विपर्यासे तथैव मृगपक्षिणाम्।
अमानुषाणां व्याहारे स्थावराणां व्यतिक्रमे॥
३. योनिव्यतिकरे चैव मांसशोणितवर्षणे।
अनग्निज्वलने चैव तथा यानानुसर्पणे॥

७१.१.४. शस्त्रप्रज्वलने चैव चैत्यशुष्कविरोहणे ।
लिङ्गायतन चित्राणां रोदने गर्जने तथा ॥
५. उदपानतडागानां ज्वलने गर्जनेऽपि वा ।
मत्स्यसर्पद्विजातीनां रसानां च प्रवर्षणे ॥ १ ॥
२.१. आयुधानां प्रज्वलने गर्जने च विशेषतः ।
पुष्पे फले च वृक्षाणामकाले च विरोहणे ॥
२. प्रासादाद्रि विमानानां प्राकाराणां च कम्पने ।
गीतवादित्रशब्दाश्च यत्र स्युरनिमित्ततः ॥
३. ये चान्ये केचिदुत्पाता जायन्ते विकृतात्मकाः ॥
तेषां फलं च कालं च तत्त्वेनाचक्ष्व भार्गव ॥
४. स तस्मै पृच्छते सम्यङ्नारदायोशनाः कविः ।
त्रिविधानप्यथोत्पातान्व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥
५. यदा शीते भवत्युष्णमुष्णे शीतमतीव च ।
नवमासात्परं विद्यात्तेषु देशेषु वै भयम् ॥ २ ॥
३.१. यत्रानृतौ प्रबद्धेन त्र्यहादूर्ध्वं प्रवर्षति ।
तस्मिन्देशे प्रधानस्य पुरुषस्य वधो भवेत् ॥
२. कोकिलाश्च मयूरा श्चअकाले मदभागिनः ।
संसर्गं वापि गच्छेयुर्विद्याज्ञानपदं भयम् ॥
३. रुरवश्चैव रौद्राश्च पृषता हरिणास्तथा ।
येषु देशेषु दृश्यन्ते तानरण्याय निर्दिशेत् ॥
४. प्रधानाश्चैव वध्यन्ते पक्षे सप्तदशे तथा ।
तस्मिञ्जनपदे चैव महदुत्पद्यते भयम् ॥
५. गावोऽश्वाः कुञ्जराः श्वानः खरोष्ट्रा वानरोरगाः ।
नकुलाः पक्षिणो व्यालाः सूकरा महिषा मृगाः ॥ ३ ॥
४.१. सत्त्वान्येतानि जल्पन्ति येषु देशेषु मानुषम् ।
तेषु देशेषु राजा तु षष्ठे मासि विनश्यति ॥

७१.४.२. उत्पाता विकृतात्मानो दृश्यन्ते यत्र तत्र वै ।
देशे भवति शीघ्रं हि षण्मासाद्भयमुत्तमम् ॥
३. आसनं शयनं यानं यदा यत्र प्रसर्पति ।
विपक्षात्तत्र तत्स्वामी भयं प्राप्नोति दारुणम् ॥
४. धान्यकोष्ठायुधागाराः पाषाणः कूपपर्वताः ।
एतानि यत्र सर्पन्ति विकृतानि वदन्ति च ॥
५. बहु वा जायते तीव्रं तस्मिन्देशे भयं महत् ।
त्रीन्मासान्परकाले तु शेषे सौम्यातिकं फलम् ॥ ४ ॥
५.१. देशे वा यदि वा ग्रामे योनिव्यतिकरो भवेत् ।
तत्र संवत्सरादूर्ध्वं महदुत्पद्यते भयम् ॥
२. गौरश्वं वडवा वापि यस्मिन्देशे प्रसूयते ।
अभ्यन्तरेण तद्वर्षाद्राज्ञो मरणमादिशेत् ॥
३. मानुषी जनयेद्यत्र तृणादान्विधान्पशून् ।
षण्मासोत्थं भयं तीव्रं तत्र तूत्पद्यते महत् ॥
४. परचक्रागमं चैव निर्दिशेदिह शास्त्रवित् ।
संग्रामाश्चात्र विपुला जायन्ते विकृतात्मकाः ॥
५. सर्पं वा पक्षिणं वापि जनयेद्यत्र मानुषी ।
प्रचलस्तस्य देशस्य षण्मासात्तु परं भवेत् ॥ ५ ॥
६.१. उष्ट्रं वा या प्रसूयेत वानरं वापि मानुषी ।
अन्यद्वा जङ्गमं किंचित्स्थावरं वापि किंचन ॥
२. रोगेण शस्त्रपातेन दुर्भिक्षेण च पीडितः ।
स देशो व्यथते शीघ्रं राजा तत्र विनश्यति ॥
३. अमानुषी मानुषं वा मानुषी वाप्यमानुषम् ।
प्रसूयते तु जानीयात्परचक्रागमं ध्रुवम् ॥
४. चतुरक्षं द्विशीर्षं वा गात्रैर्न्यूनाधिकैस्तथा ।
व्यञ्जनैश्चोपसंपन्नं मानुषी या प्रसूयते ॥

७१.६.५. द्विसंवत्सरपर्यन्ताद्राजा तत्र विनश्यति ।
उष्ट्रो वृषो वाप्यश्वो वा गजो वा यत्र जायते ॥
६. पक्षान्मासाच्च भवति राज्ञस्तत्र भयं महत् ।
परचक्रसमुत्थं वा स देशो भयमृच्छति ॥ ६ ॥
७.१. योनिव्यतिकरं यत्र कुर्युरेवंविधं स्त्रियः ।
गौर्वा सूयेत्तथान्यानि तत्र राज्यं विनश्यति ॥
२. वसन्ति येषु देशेषु तेषु विद्यान्महद्भयम् ।
तस्मादेतानि सर्वाणि राजा क्षिप्रं प्रवासयेत् ॥
३. अश्वा किशोरं जनयेच्छृङ्गिणं यत्र तत्र तु ।
आदिशेन्मरणं राज्ञो वर्षाभ्यन्तर एव हि ॥
४. माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥
इति शास्त्रसमुच्चयात् ॥
५. नारी खरवृषोष्ट्राश्वाञ्छुनः सूकरगर्दभान् ।
राक्षसान्वा पिशाचान्वा यदाप्येवं प्रसूयते ॥
६. व्यापद्यन्तेऽत्र धान्यानि सस्यानि च धनानि च ।
चतुर्विधं भयं घोरं क्षिप्रं तत्र प्रवर्तते ॥ ७ ॥
८.१. वध्यन्ते हि प्रधानास्तु सार्धमासाष्टमे तथा ।
व्याधींश्च तेषु देशेषु त्रीणि वर्षाणिनिर्दिशेत् ॥
२. अनग्निर्ज्वलते यत्र देशे तूर्णमनिन्धनः ।
यो राजा तस्य देशस्य स देशः स विनश्यति ॥
३. मांसवर्षेण मघवा यत्र देशे प्रवर्षति ।
अस्थीनि रुधिरं मज्जां वसां चैतेषु वै ध्रुवम् ॥
४. परचक्रागमः शीघ्रं विज्ञेयस्तु महद्भयम् ।
आहवाश्चात्र जायन्ते विपुला विकृतात्मकाः ॥

७१.८.५. अङ्गारवालुका धान्यं यत्र देवः प्रवर्षति ।
क्षिप्रं तत्र भयं घोरं प्रवर्तेत चतुर्विधम् ॥ ८ ॥

९.१. सर्पान्मत्स्यान्पक्षिणो वा यत्र देवः प्रवर्षति ।
तत्र सस्योपघातः स्याद्भयं चातिप्रवर्तते ॥

२. सुरासवं तथा क्षौद्रं सर्पिस्तैलं पयोदधि ।
यत्र वर्षति पर्जन्यः क्षुद्रोगस्तत्र जायते ॥

३. उल्काताराश्च धिष्ण्येषु यदाङ्गारांश्च वर्षति ।
तदा व्याधिभयं घोरं तेषु देशेषु निर्दिशेत् ॥

४. पुमानश्वो गजो वापि यदा यत्र प्रदीप्यते ।
दशमासात्परं तत्र जानीयाद्राष्ट्रसंप्लवम् ॥

५. नाराचाः शक्त्यः खड्गाः प्रदीप्यन्ते यदा मुहुः ।
तदा शस्त्रभयं घोरं तेषु देशेषु निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

१०.१. चैत्यवृक्षाः प्रभज्यन्ते विस्वरं विनदन्ति च ।
प्रहसन्ति प्रसर्पन्ति गायन्ति च रुदन्ति च ॥

२. आगमः परचक्रस्य तेषु चापद्यते त्वरम् ।
सचक्रा वापि नश्यन्ति प्रधानश्चात्र वध्यते ॥

३. यत्र स्रवेच्चैत्यवृक्षः सहसा विविधान्रसान् ।
पृथक्पृथक्समस्तान्वा तत्प्रवक्ष्यामि लक्षणम् ॥

४. घृते मधुनि दुग्धे च घृते दुग्धे तथाम्भसि ।
क्षौद्रे मधुनितैले वा व्याधयः स्युः सुदारुणाः ॥

५. सुरासवे मिथोभेदः शोणिते शस्त्रपातनम् ।
तैले प्रधाना वध्यन्ते भक्षे क्षुद्भयमादिशेत् ॥ १० ॥

११.१. अनृतौ चेत्फलं यत्र पुष्पं वा सूयते द्रुमः ।
विद्याद्द्वादशमे मासि राज्ञस्तत्र विपर्ययम् ॥

२. पुष्पे पुष्पं भवेद्यत्र फले वा स्यात्तथा फलम् ।
पर्णे वर्णे विजानीयात्तत्र जानपदं भयं ॥

७१.११.३. शुक्लेन वाससा यत्र चैत्यवृक्षः समावृतः ।
ब्राह्मणानां भयं घोरमाशु तीव्रं विनिर्दिशेत् ॥
४. रक्तवस्त्रावृतैश्चान्यैः क्षत्रियाणां महद्भयम् ।
पीतवस्त्रैस्तु वैश्यानां शूद्राणां कृष्णवाससैः ॥
५. नीचैः सस्योपघातः स्याच्चित्रैस्तु मृगपक्षिणाम् ।
विवर्णैर्व्याधयस्तीव्राः परं स्युर्दशमासतः ॥ ११ ॥
१२.१. दैवतानि प्रसर्पन्ति यत्र राष्ट्रे हसन्ति वा ।
उदीक्षन्तेऽथ रोधांसि तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥
२. विहसन्ति निमीलन्ति गायन्ति विकृतानि च ।
मांसशोणितगन्धानि यत्र तत्र महद्भयम् ॥
३. यत्रचित्रमुदीक्षेत गायते चेष्टते मुहुः ।
एतेष्वष्टसु मासेषु राज्ञो मरणमादिशेत् ॥
४. चित्राणि यत्र लिङ्गानि तथैवायतनानि च ।
विकारं कुर्युरत्यर्थं तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥
५. उदपानं तडागं वा सरः पर्वत एव वा ।
समुद्देशेषु दीप्यन्ते विद्याद्भयमुपस्थितम् ॥ १२ ॥
१३.१. प्रहसेयुः स्तनेयुर्वा श्वा वा मार्जारवद्वदेत् ।
तस्य देशस्य राजा तु पीडामाप्नोति दारुणाम् ॥
२. शङ्खवैणवतूर्याणां दुन्दुभीनां च निस्वनः ।
देशे यत्र भृशं तत्र राजदण्डो निपात्यते ॥
३. यस्य राज्ञो जनपदे नित्योद्विग्नाः प्रजा क्षयम् ।
गच्छन्ति न चिरात्तत्र विनाशमपि निर्दिशेत् ॥
४. यस्य राज्ञो जनपदे नित्यमेव गवां क्षयः ।
भयं तत्र विजानीयादचिरात्समुपस्थितम् ॥
५. यस्य राज्ञो जनपदे नदी वहति कर्दमम् ।
काष्ठं तृणं चोपलं वा मृतमत्स्यान्ग्रहांस्तथा ॥ १३ ॥

७१.१४.१. मद्यं क्षौद्रं च मांसं च सर्पिस्तैलं पयो दधि ।
अन्यराजागमभयं तत्र देशे समादिशेत् ॥
२. यस्य राज्ञो जनपदे प्रतिस्रोतो नदी वहेत् ।
मासाष्टकाज्ञानपदं भयं स्याच्छस्त्रपाणिनः ॥
३. कूपो वा गर्जते यत्र यदा वाप्यवदीर्यते ।
लोहितं वाथ पूयं वा भयं तत्र विनिर्दिशेत् ॥
४. आयुधानि प्रधावन्ति तीव्रं प्रत्याहरन्ति च ।
तूणीरात्सहसा बाणा उद्गिरन्ति नदन्ति च ॥
५. स्वभावतश्च पूर्यन्ते धनूंषि प्रज्वलन्ति च ।
संग्रामो दारुणस्तत्र देशे भवति निश्चितः ॥ १४ ॥

१५.१. अकाले पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च पादपाः ।
दृश्यन्ते यस्य राष्ट्रेषु तस्य नाशो विभाव्यते ॥
२. वृक्षा वल्ल्यश्च तरुणा यत्र स्युः फलपुष्पदाः ।
अकाले चापि दृश्येयुस्तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥
२. प्रासादानि विमानानि प्रज्वलन्ति तु यत्र वै ।
दृढानि च विशीर्यन्ते यस्य स म्रियतेऽचिरात् ॥
४. वदन्त्यरण्ये तूर्याणि श्रूयन्ते व्योम्नि नित्यशः ।
निवसेत तदा राजा समागम्य दिशो दश ॥
५. यस्य वेश्मनि श्रूयन्ते गीतवादित्रनिस्वनाः ।
अकस्मान्म्रियते सम्यग्धनं चास्य विलुप्यते ॥
६. शङ्खवेणवीणाश्च भेरीमुरजगोमुखाः ।
वाद्यमानाः प्रदृश्यन्ते देशे यत्राप्यघट्टिताः ॥
७. संभृत्यैव ततो भारमन्यं जनपदं व्रजेत् ।
मृगवांस्तु स देशो हि वायुश्चात्रोपजायते ॥
८. अनाहता दुन्दुभयो वादित्राणि वदन्ति च ।
छिद्राणि च गृहे यस्य स शीघ्रं भयमृच्छति ॥

७१.१५.९. देवराजध्वजानां च पतनं भङ्ग एव वा ।
क्रव्यादानां प्रवेशं च राज्ञः पीडाकरं भवेत् ॥

१०. वाजिवारणमुख्यानामकस्मान्मरणं भवेत् ।
इतरक्ष्मापतेस्तत्र विज्ञेया सत्वरागतिः ॥ १५ ॥

१६.१. अश्वत्थे पुष्पिते क्षत्रं ब्राह्मणं चाप्युदुम्बरे ।
प्लक्षे वैश्यास्तु पीड्यन्ते न्यग्रोधे दस्यवस्तथा ॥

२. श्वेतमिन्द्रायुधं विप्रान्रक्तं क्षत्रियनाशनम् ।
वैश्यानां पीतकं रात्रौ कृष्णं शूद्रविनाशनम् ॥

३. निर्घाते भूमिकम्पे च चैत्यशुष्कविरोहणे ।
देशपीडां विजानीयात्प्रधानश्चात्र वध्यते ॥

४. इन्द्रयष्टिर्भज्यते वा विशस्तो वा पशुर्व्रजेत् ।
यदा तदा विजानीयाद्राज्ञः पीडां उपस्थिताम् ॥

५. पितामहे वासुदेवे सोमधर्मार्यमेष्वपि ।
निमित्तमशुभं यत्र ब्राह्मणानां भयावहम् ॥ १६ ॥

१७.१. बृहस्पतौ वा शुक्रे वा पावके पाकशासने ।
यानि रूपाणि दृश्यन्ते विद्यात्तानि पुरोहिते ॥

२. महादेवे कुबेरे च तथा स्कन्दविशाखयोः ।
निमित्तं तत्पार्थिवेषु विज्ञेयं संप्रवर्तितम् ।
अकस्माद्दृश्यते यत्तु निमित्तं संप्रकीर्तितम् ॥

३. देवानां पार्थिवानां च रथो यत्र निमज्जति ।
भयं तत्र विजानीयात्पार्थिवस्याशुरद्भुतम् ।

४. सोमे च वासुदेवे च वरुणे पाकशासने ।
यद्भयं दृश्यते तद्धि ज्ञेयं भाण्डाधिके जने ॥

५. वाते प्रजापतौ चैव विश्वकर्मणि चैव हि ।
प्रवर्तते यन्निमित्तं तज्जानपदिकं भवेत् ॥

७१.१७.६.कुमारीषु कुमारीणां कुमाराणां कुमारजम् ।
तथा प्रेष्येषु सर्वेषु कल्पयेच्छास्त्रतः फलम् ।
७. इन्द्राणी वरुणानी च भद्रकाली महाबला ।
वीरमाता च यद्ब्रूयुस्तद्राजमहिषीभयम् ॥
८. एकैवासां तथा चान्या याश्चान्या देवताः स्त्रियः ।
कुर्युर्निमित्तं तत्स्त्रीणां प्रधानानां च निर्दिशेत् ॥
९. गन्धर्वेषु निमित्तं यत्तदन्येषु प्रदृश्यते ।
सेनापतीनां भयकृत्सचिवानां भयाय च ॥
१०. रक्षपन्नगयक्षेषु लिङ्गस्यायतनेषु च ।
यथारूपं यथाकर्म पुरुषेषु व्यवस्थितम् ॥ १७ ॥
१८.१. दक्षिणेषु शरीरेषु देवतानां च वेश्मसु ।
सर्वेश्वङ्गेषु नारीणां तुल्यं स्यादुभयोर्भयम् ॥
२. स्वशरीरे यथोत्पाता विहिता दैवचिन्तकैः ।
तथैव परिसंख्येयं सर्वत्रैव शुभाशुभम् ॥
३. माणिभद्रादयो यक्षा गन्धर्वाश्च चित्रसेनयः ।
तद्भयं तु प्रधानानाममात्यानां विभावयेत् ॥
४. येषु देशेषु दृश्येत दैवतेषु शुभाशुभम् ।
ते च देशा विनश्यन्ति राजा वाथ विनश्यति ॥
५. ब्राह्मणा यत्र वध्यन्ते ग्रामे राष्ट्रेऽथवा पुरे ।
राजधानीषु वा यत्र तदभावस्य लक्षणम् ॥ १८ ॥
१९.१ यत्राबलं वध्यमानं राजा नैवाभिरक्षति ।
तत्र दैवकृतो दण्डो निपतत्याशु राजनि ॥
२. छत्रध्वजपताकासु देवस्थाने गृहेषु च ।
द्वाराट्टालकहर्म्येषु कारयेद्धोमवाचनम् ॥
३. यत्र प्रकृतिभूतानि लिङ्गानि विकृतानि च ।
देवताश्चापि नद्यश्च क्षरक्षाममहीरुहाः ॥

७१.१८.४. सेना चैव न दृश्येत हस्त्यश्वैश्च पदातिभिः ।
हीनाङ्गा विकृताङ्गा वा प्रलयं तत्र निर्दिशेत् ॥
५. स्तम्भवृक्षा ध्वजा यत्र स्रवेयू रुधिराम्बु च ।
धूमयेयुर्ज्वलेयुर्वा मन्त्रिणां तत्र वै वधः ॥
६. जगत्स्वामिनि जानीयाद्यदि चेद्दिवि जायते ।
अन्तरिक्षं तु देशे स्याद्भौमं तस्योपतिष्ठति ॥
७. भार्यायां वाहने पुत्रे कोशे सेनापतौ पुरे ।
पुरोहिते नरेन्द्रे वा पतते दैवभष्टधा ॥
१९.८. माहेन्द्रीममृतां रौद्रीं वैश्वदेवीमथापि वा ।
उत्पातेषु महाशान्तिं कारयेद्बहुदक्षिणाम् ॥
९. शाम्यन्ति येन घोराणि योगक्षेमं च जायते ।
राजानो मुदितास्तत्र पालयन्ति वसुंधराम् ॥
पालयन्ति वसुंधरामिति ॥ १९ ॥
इत्यौशनसाद्भुतानि समाप्तानि ॥ ७१ ॥

७२. महाद्भुतानि

१. १–३. ऐसे लक्षण जिनके बाद महाशान्ति के 'अमृता' प्रकार को सम्पन्न करना चाहिये।

१. ४–३.१. विभिन्न शकुन-विचार—इनके बाद इनकी शान्ति से सम्बद्ध कर्मो का एक भ्रष्ट रूप आता है।

३. २–१६. विभिन्न शकुन-विचार जिनके बाद महाशान्ति का 'अमृता' स्वरूप सम्पन्न करना आवश्यक होता है।

४. १–३. कर्मसंकरः।

४. ४–७. देवप्रतिमाओं से सम्बद्ध शकुन-विचार तथा उनकी शान्ति के उपाय।

५. १–२. अनग्निज्वलनम् सम्बन्धी शकुन-विचार जिनके बाद महाशान्ति का 'ब्राह्मी' प्रकार सम्पन्न करना चाहिये।

५. ३–५. शकुन-विचार का प्रारम्भिक परिचय देने वाले श्लोक।

६. १–६. विकृताङ्गत्व।

महाद्भुतानि

७२.१.१. अथ महाद्भुतानि व्याख्यास्यामः ॥

२. क्षिप्रविपाकीन्यमोघानि घोराणि ग्रहोपहतमुल्काभिहतं ग्रस्तं निरस्तमुपधूपितं वा यदा स्याज्जन्मनक्षत्रं कर्मनक्षत्रमभिषेचनीयजनपदनक्षत्रम् ॥

३. एतेषु क्षिप्रमेव महाशान्तिममृतां कारयेद्राजाष्टमे च चन्द्रमसः स्थाने वज्रे च देवोपसृष्टे स्कम्भे वा

४. अथवा नानावर्णे बहुरूपे शृङ्गिणि चादित्ये कीलवति चाद्भुतान्युल्काभिहते

५. कबन्ध एव निश्वसति हसति भ्रमति

६. हासे भासे नादे शब्दे वासने च वैश्वानरेऽप्रज्वलितेऽन्तरिक्षे भस्मास्थ्यश्माङ्गारा वीथी चेन्द्रधनुषि रात्रौ वीध्र एव तु ॥१॥

२.१. चन्द्रार्कौ यस्य राष्ट्रे परिविष्येयातां तान्विपक्षान्परलोकसंस्थाञ्जनपदांस्—

२. तथैव काककपोतकङ्कगृध्रयक्षराक्षसपिशाचश्वापदेषु नक्तं वदत्स्वभिवदत्सु गायत्सु रायत्सु वा चक्रध्वजवेश्यावसथप्रासादाग्रे

७२.२.३. वापीकूप उदपाने चोद्गिरति नदति विद्योतति वा
४. रथ यन्त्रवारणप्रवहणवादित्रादिषूल्कादयोऽङ्गारा धूमोऽर्चिर्वा प्रादुर्भावे
५. लिङ्गं विलिङ्गे राज्ञः,
६. काकोलूककङ्कलासश्येननिपातिते राजछत्रे भग्ने ध्वजे चक्रस्य राज्ञो दण्डे राज्ञश्चदन्ते
७. हस्तिन्यां च मत्तायां ग्रामे च प्रसूतायां
८. राजरथश्च राजाधिरूढो भग्नाक्षः सप्तरात्राद्राज्ञो हन्ति पुरोहितममात्यं सेनापतिं जायां हस्तिनं महिषीं कुमारं राजानमेव वा ऋध्नुयाद्य एवं वेद
९. द्वादशं शतं गवां धेनूनां कंसवसनं हिरण्यं निष्कोऽश्व एताश्च दक्षिणाः ॥ २ ॥

३.१. नानुत्पन्नेषु दैवेषु राज्ञां शान्तिर्विधीयते ।
अस्थानेषु कृता शान्तिर्निमित्तायोपपद्यते ॥
तस्मात्स्थानं समुद्दिश्य कारयेच्छान्तिमात्मनः ॥
२. सर्पं समितौ वायुसंभ्रमे उदकप्रादुर्भावगमनेषु
३. धनुःसंध्योल्कापरिवेषविद्युद्दण्डाशनिपरिघपरिधि निर्घाते
४. रजोवर्षमुपलवर्षं दधिमधुघृतक्षीरवर्षं मज्जारुधिर (वर्षं) वर्षति
५. हीनगभस्ती द्वे मार्गे वीथ्यौ वित्तक्षये सोमस्य क्षयेऽपूर्णपूर्णे क्षयस्यावभासाः सद्योऽपररात्राद्दिग्दाहोपधूपनं
६. ग्रहवैषम्यमारोहणमाक्रमणं गन्धर्वनगरं मारुतप्रकोपस्तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रग्रहादीनां सोमवियोगः
७. प्रतिस्रोतोगामिन्यो नद्यः प्रासादतोरणध्वजेषु वायससमवाया वृकशकटारोहणं वृषदंशातिमार्जनमुलूकप्रतिगर्जनं श्येनगृध्रादीनां ध्वजाभिलपनं

७२.३.८. विकृताश्च मानुषामानुषप्रभवाः स्त्रीबालवृद्धप्रलापाः प्रदीप्तेन्द्रयष्टिपादभग्नेऽद्रव्येष्वेकवृक्षे द्विछाये प्रतिछाये परिवृत्तम्

९. अत ऊर्ध्वं छायोऽकस्माच्चैत्यवृक्षस्तम्भपतने विरोहत्स्वविरोहेष्वच्छिन्नपर्णप्रपाताच्छुष्कशाखिनो द्रुमा धूमरजउदकप्रादुर्भावगमनेषु वनस्पतिषु

१०. बहुशस्त्रभङ्ग इन्द्रकीलगोपुराट्टालकध्वजादीनां भङ्ग उचितानां व्युच्छेदनेऽनुचितानां प्रवर्धने दृढभङ्गेषु

११. शुष्क विरोहे गृहे वल्मीके शयनदेशे दर्भस्तम्बोत्पत्तौ मित्रविरोधेऽमित्रप्रीतौ च देवतार्चयोरथछेदने

१२. यत्र राजा प्रसादमुखः पौरेषु च भृत्यादिषु भवति भवन्ति चात्र श्लोकाः

१३. यदा तु प्रतिपत्सोमो विकृत्या विकृतो भवेत् ।
अनुद्भिन्नो विलूनो वा राज्ञो मरणमादिशेत् ॥

१४. आयुधाकार रूपाणि श्वेतवर्णाकृतीनि च ।
पञ्चवर्णानि चाभ्राणि तथा दण्डनिभानि च ॥

१५. यदा चन्द्रार्कयोर्मध्ये कृष्णं भवति मण्डलम् ।
स शङ्कुरिति विज्ञेयो ग्रहः परमदारुणः ॥

१६. तत्र राज्ञो वधं विद्यात्सर्वभूतभयावहम् ।
तत्र कुर्यान्महाशान्तिममृतां विश्वभेषजीमिति ॥ ३ ॥

४.१. अथ यस्मिन्नेव जनपदे गोब्राह्मणसूतसांवत्सरवैद्यानां परिव्राजकचारणवानप्रस्थ ब्रह्मचारिणां वापि संकरः प्रवर्तते तदद्भुतं विद्यात्

२. कर्मसंकरं यज्ञसंकरं व्यवहारसंकरं च यत्र च धर्मोऽधर्मेण पीड्यते तदद्भुतं विद्यात्

३. तेषामज्ञातप्रायश्चित्तं यदज्ञातमनाम्नातामिति मध्ये जुहुयात्पुरुष सूक्तं च तेष्वकृतप्रायश्चित्तेषु महाद्भुतानि प्रादुर्भवन्ति ॥

७२.४.४. दिव्यानीत्याचक्षते देवगृहेष्वथ हसन्ति गायन्ति रुदन्ति क्रोशन्ति प्रस्विद्यन्ति प्रधूमायन्ति प्रज्वलन्ति प्रकम्पन्त्युन्मीलयन्ति निमीलयन्ति लोहितं स्रवन्ति परिवर्तयन्ति वा,

५. तेषां प्रादुर्भावगमनेष्वन्यराजागमनं वा विद्यादुदग्रं वाङ्गेगमवृष्टिशस्त्रभयं बुभुक्षामारं जानपदममात्यानां राज्ञोविनाशम्

६. तेषु सर्वेषु भृग्वङ्गिरोविदमित्युक्तं स चतुष्पथ ईशानां प्रपद्येते ॥ ॐ प्रपद्ये भूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये जनत्प्रपद्य इति प्रपद्येत

७. कपिलानामष्टशतस्य क्षीरेण पायसं श्रपयित्वा कपिलास्वलभ्यमानासु दोग्ध्रीणां शतस्य क्षीरेण पायसं श्रपयित्वा प्राश्वमिध्ममुपसमाधाय परिस्तीर्य बर्हीं रौद्रेणगणेन शान्ता जुहुयात् ॥ सर्पिर्जुहुयात्पायसं जुहुयाच्छुक्लाः सुमनस उपहरेद्ब्रह्मणान्भक्तेनोपेप्सन्तिता एव गा दद्याद्राज्यं वा परिमित कालं तस्य परितुष्टये गोसहस्रं कर्त्रे दद्याद्ग्रामवरं च ॥ ४ ॥

५.१. अथ यत्रैतच्छयने वाथ वस्त्रे वा जायते यद्धुताशनः ।
एतदत्यद्भुतं नाम सर्वक्षयकरं नृणाम् ॥

२. अत्र ब्राह्मीं महाशान्ति कारयेद्बहु दक्षिणाम् ।
बह्न्नां बहुसंभारामनूचानसुदक्षिणाम् ।
राज्यकामोऽर्थकामो वा पूजयेतु बृहस्पतिम् ॥

३. सृजन्ति देवा दिव्याद्भुतानि
प्रागुपसर्गात्प्रतिबोधनार्थम् ।
कार्याणि, विघ्नानि तथा जनानां
कर्माकुले वर्णसमाकुले च ॥

४. दैव्योपसृष्टेन बलेन कार्यं
कार्या च शान्तिः प्रणिपत्य देवान् ।
ततोपसर्गाद्विघ्नात्प्रमुच्यते
दिवि चेदनिष्टं न पुनः स कुर्यात् ॥

७२.५.५. पृथिव्यामन्तरिक्षे च दिवि चाप्युपलक्षयेत् ।
चेष्टितं सर्वभूतानां रुतं च मृगपक्षिणाम् ॥ ५ ॥

६.१. ग्रामे कुले वा यदि वापि देशे
राजन्यमात्येषु तथा द्विजेषु ।
भावः पशूनांः विकृतो विरूपस्तद्
अद्भुतं तस्य देशस्य विद्यात् ॥

२. अमात्यभेदो विविधैकशीर्षे
एकद्विशीर्षे भवति द्विराज्यम् ।
अपादहस्ते म्रियते ह्यमात्यो
जाते कबन्धे नृपतिर्विनश्येत् ॥

३. यदाधिकाङ्गो यदि वाङ्गहीनो
भवेत्पशूनां विकृतो विरूपः ।
स्त्रीणां तथैव विकृतो विरूपस्तद्
अद्भुतं तस्य देशस्य विद्यात् ॥

४. अनास्यं वाप्यनोष्ठं वा जायते चैद्विदूलकम् ।
अरूपमसरूपं वा जायते चेद्विदूलकम् ॥

५. अधरादीन्नचक्षुर्वा जायते चेद्विदूलकम् ।
एतदत्यद्भुतं नाम राष्ट्रे राज्यक्षयंकरम् ॥

६. तमद्भिः स्नातं सुरभिं सुगन्धिं
गतासुमग्नौ जुहुयाद्घृताक्तम् ।
गणेन रौद्रेण घृतं च हुत्वा ।
तथा महात्मा शिवमस्य कुर्यात् ॥
तथा महात्मा शिवमस्य कुर्यादिति ॥ ६ ॥

इति महाद्भुतानि समाप्तानि ॥ ७२ ॥

सूची–१

अथर्ववेद के सायणभाष्य तथा हेमाद्रि के चतुर्वर्ग-चिन्तामणि में मिलने वाले अथर्ववेद परिशिष्ट के उद्धरण

परिशिष्ट	सायण	हेमाद्रि
४.१.१, ४-५	१.३५	
१.४	२.१३	
१.९-१०	३.२२	
१.२३-२४		व्रतखण्ड २,६२६
३.१	१९.१७, ३८, ४७, ४९.	
४.१-२	१९.४७, ४९	
४.५-१०	१९.१७	
४.६	२.१३	
४.६-७	१९.३८	
५.१	१९.९, १०, १६.	
५.४, ६-७	१९.४७, ४९	
५.१२-१३	१९.१६	
५.१२-१४	१९.९	
५.१४	१९.१०	
५.१४	१९.१०	
५.२.२-४	१.६	
२.४	१.३३	
३.२-४.१		व्रतखण्ड २.६२३
३.३-४	१.१	
३.५	१.२, ९, ३०; ३.८; १९.१५	
४.१	१.२, ९, ३०	
४.२-३		व्रतखण्ड २.६१८
४.४.५.७		व्रतखण्ड २.६२६ और बाद
६.१.४-५,८	३.१०	
१.९-१०	५.३०	
१.११	८.५	
१.१५	१९.१३	
२.६	१९.९	

परिशिष्ट	सायण	हेमाद्रि
७.१.४-५	२.६	व्रतखण्ड
८.		
१.४	१.४	दानखण्ड २९९
१०.		
१.१, ६-८	१९.६, ५२	दानखण्ड १८२, १८५
११.१.३-१३		
१.४-५	१९.१०	
१.५	४.१	
१.६	१९.२६	दानखण्ड
२.१		
१२.१.१, २, ५, ६	१७.१	दानखण्ड २२२
१३.		
१.१	८.२	
१.७	वही; १.३५	
१४.१.१, ९	११.८	दानखण्ड १९
१.८		
१५.१.१, ५-६	८.२	दानखण्ड २५५
१६.		
१७.२.९	५.३	व्रतखण्ड २-२२६
१८.		तुकी. व्रतखण्ड २.८९१
१८ (ख).१		
२० ख.२.५	११.६	
२.७-८	१९.५७	
३१.६.२-४	१७.१.	
३३.१.२;७.३	५.३	
३७.४.१-२ १४.१, ४	१९.४०	
१४.१.४	वही;	
४२.२, ८		परिशेषखण्ड १.२२३, १२६८, १२२९, १२७१, १३७९, तुकी० ६०५; तुकी० १३९९, १४४२, १४४६, १४७० १५०१
६४.८.९-९.१०		व्रतखण्ड २.१०७६
७० ख.		तुकी० व्रतखण्ड २०१०७८

सूची–२

शब्दानुक्रमणिका